VALMIKI RAMAYAN

A STUDY IN HISTORICAL GEOGRAPHY

A Thesis Submitted to the
University of Allahabad
for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY
in Geography

Under the Supervision of
Dr. R. C. Tiwari
Reader in Geography

By

Sudhaker Tripathi
DEPARTMENT OF GEOGRAPHY
UNIVERSITY OF ALLAHABAD

1985

आभार

सर्वप्रथम, मैं गुरुप्रवर डॉ0 राम चन्द्र तिवारी, रीडर (भूगोल) इलाहाबाद विश्वविद्यालय का हृदय से आभारी हूँ जिनके विद्वतापूर्ण निर्देशन में यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका है। मैं प्रोफेसर राम नाथ तिवारी, अध्यक्ष भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति, आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने विभागीय शोध छात्रवृत्ति प्रदान कर शोध प्रबन्ध के शीघ्र समापन में सहायता की। मैं डॉ0 सविन्द्र सिंह, रीडर, डॉ0 रामनगीना सिंह, रीडर, डॉ0 ब्रह्मानन्द सिंह प्रवक्ता, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं श्री अयोध्या प्रसाद जायसवाल, अवकाश प्राप्त निरीक्षक, आबकारी विभाग का आभारी हूँ जिन्होंने शोध अवधि में मेरा उत्साह वर्धन किया है।

मैं श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय, एडवोकेट एवं सदस्य, कार्यकारिणी समिति, इलाहाबाद तथा बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय और उनके परिवार के सदस्यों का ऋणी हूँ जिन्होंने हर कठिनाई में मेरी सहायता की है। मैं अपने गुरुजनों श्री राम सॉवर त्रिपाठी प्रवक्ता (भूगोल), श्री श्याम सुन्दर गुप्त प्रवक्ता (अर्थशास्त्र) एवं श्री राम शंकर मौर्य अध्यापक (विज्ञान), सुन्दर प्रसाद इण्टर कालेज, बरमदवा, पिपरा, गोरखपुर, के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे, शैक्षणिक जीवन के प्रारम्भिक काल में, उत्तम कार्यों के लिए प्रोत्साहित किया है। अपने पिता श्री देवेश त्रिपाठी, मामा श्री विश्व नाथ त्रिपाठी का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने शोध अवधि में मुझे पारिवारिक उलझनों से मुक्त रखा। पितातुल्य श्री केशरी प्रसाद शुक्ल जी तथा उनके परिवार के सदस्यों का मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने आवासीय सुविधा देकर, शोधकार्य में मेरी सहायता की

की है। अपने मित्रों श्री शेष नारायण त्रिपाठी, श्री अमिय मिश्र, श्री आलोक पाण्डेय, श्री उमा कान्त त्रिपाठी, श्री शशि नाथ कृष्ण त्रिपाठी; श्री राजेश मिश्र, श्री चन्द्र मणि पाण्डेय को धन्यवाद देना चाहूँगा जिन्होंने पाण्डुलिपि के लेखन एवं टंकण आदि में मेरी सहायता की। मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, उत्तर प्रदेश राजकीय पुस्तकालय इलाहाबाद, केन्द्रीय राज्य पुस्तकालय इलाहाबाद, गंगा नाथ झा संस्कृत शोध संस्थान इलाहाबाद एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय पुस्तकालय के कर्मचारियों को, उनकी सहायता हेतु धन्यवाद देता हूँ। शोध प्रबन्ध के शीघ्र एवं त्रुटि रहित टंकण के लिए छन्ना ब्रदर्स, श्री शशि कान्त श्रीवास्तव एवं मार्गनिर्देशन के लिए श्री रवीन्द्र चन्द्र श्रीवास्तव भी धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में मैं शोध कार्य में सहभागी अपनी धर्मपत्नी श्रीमती आशा त्रिपाठी के प्रति हार्दिक स्नेह एवं उन सभी लोगों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनके लेखों एवं पुस्तकों से मैं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से लाभान्वित हुआ हूँ।

बुधवार, 27 नवम्बर, 1985
(कार्तिक पूर्णिमा)

सुधाकर त्रिपाठी
सुधाकर त्रिपाठी

LIST OF ILLUSTRATIONS

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

1.1 ऐतिहासिक भूगोल अर्थ एवं विषय क्षेत्र

भूगोल विज्ञानों के मूलभूत वर्गीकरण- क्रमबद्ध, समय-प्रधान एवं स्थानिक में से स्थानिक वर्ग के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है क्योंकि वह पृथ्वी नामक "स्थान" से सम्बद्ध है।[1] जिस प्रकार इतिहास काल के संदर्भ में वस्तु का समाकलन करता है उसी प्रकार भूगोल क्षेत्र के संदर्भ में समाकलन करता है ।[2] इस प्रकार भूगोल तथा इतिहास में घनिष्ठ सम्बन्ध है परन्तु दोनों के कार्य भिन्न है।[3]

भूगोल मूलतः घटनाओं के परिवर्तनों अथवा विकास से सम्बन्धित है अतः उसके अध्ययन में काल सम्बन्ध बहुत महत्वपूर्ण होते हैं ।[4] हेटनर के अनुसार भूगोल वह क्षेत्र है जिसमें काल पृष्ठभूमि है।[5] तार्किक आधार पर काल चार रूपों में भौगोलिक अध्ययनों में अन्तर्निहित है ।[6]

1- वर्तमान भौगोलिक तथ्यों में हम केवल स्थैतिक भू-विशेषताओं का ही अध्ययन नहीं करते अपितु गतिशील तथ्यों का भी निरूपण करते हैं।

2- वर्तमान घटनाओं में संचयी परिवर्तन होते हैं।

3- चालू प्रक्रियाएं वर्तमान सम्बन्धों की व्याख्या नहीं करती अतः भूतकाल में इनके सम्बन्धों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

4- किसी क्षेत्र के वर्तमान भूगोल की एकाकी विशेषताओं के आनुवंशिक अध्ययन में काल-संदर्भ अनिवार्य है।

ऐतिहासिक भूगोल, भूगोल और इतिहास का मिलन विन्दु (Cross-section) है[7]। अत: ऐतिहासिक भूगोल न तो मानव भूगोल एवं राजनैतिक भूगोल की भाँति भूगोल की एक शाखा है और न ही यह इतिहास का भूगोल है यह भूगोल का इतिहास भी नहीं है[9]। हेटनर[10] के अनुसार "सैद्धान्तिक दृष्टि से किसी क्षेत्र के प्रत्येक काल का एक ऐतिहासिक भूगोल हो सकता है: एक नहीं अपितु अनेक ऐतिहासिक भूगोल हैं। ऐतिहासिक भूगोल स्वयं एक सम्पूर्ण भूगोल है। भूगोलवेत्ता इस बात पर लगभग सहमत हैं कि किसी पूर्वकाल का भूगोल मूलत: भूगोल का ही प्रकार है[11] अत: यह निर्विवाद सिद्ध है कि ऐतिहासिक भूगोल भूतकालीन भूगोल है परन्तु ऐतिहासिक भूगोल को उसी अतीत काल तक सीमित रखा गया है जिसमें मानव सम्मिलित है क्योंकि मानव, भूगोल के अध्ययन का केन्द्रविन्दु है[12]। वास्तव में भूगोल सम्बन्धों के सम्बन्ध का अध्ययन है जिसमें मानव के लिए मानव का अध्ययन किया जाता है। मानव रहित अध्ययन ऐसा अध्ययन होगा जिसमें एक महत्वपूर्ण तत्व का अभाव होगा।

हम भूतकाल के विभिन्न भूगोलों का अध्ययन इसी दृष्टि से करते हैं कि उनके मध्य के अन्तर मानव चिन्तन योजना तथा क्रिया के परिणाम है। मानव के अध्ययन का व्यावहारिक कारण भी है। किसी पूर्वकाल के भूगोल का मौलिक वर्णन तभी सम्भव है, जब हमें प्रत्यक्षदर्शी गवाहों का अभिलेख उपलब्ध हो। इसके अभाव में हम बाध्य होकर वर्तमान

परिस्थितियों के संदर्भ में पूर्वकालीन भूगोल का निर्माण करेंगे[14]।

अतः परिभाषित रूप में ऐतिहासिक भूगोल किसी क्षेत्र के पूर्वकालीन भूगोल के सभी आयामों [x] का अध्ययन करता है।

(1) ऐतिहासिक भूगोल का विषय क्षेत्र

ऐतिहासिक भूगोल की परिभाषा और तथ्य वही है जो भूगोल का है। इसके अतिरिक्त इसमें समय तत्व की प्रधानता पायी जाती है। भूगोल Alexander Van Humboldt से लेकर Alexander Aslanekashvile तक सदैव सम्बन्धों के सम्बन्ध का ही अध्ययन रहा है।[15] भले ही प्रधानता किसी भी तत्व की रही हो।सोवियत भूगोलवेत्ता Alexander Aslaneskashvele (1983) के अनुसार भूगोल समूचे भूतंत्र (ecosystem) का अध्ययन है जो वायुमंडल, स्थलमंडल, जलमंडल, जीवमंडल, Noonosphere, उर्जा, पदार्थ एवं समय आदि तत्वों से परिपूर्ण है। इन तत्वों में परस्पर सम्बन्ध भी होता है जिसकी योजक उर्जा है एवं जो स्वयं में परिवर्तनशील है।

मानव का इतिहास अति प्राचीन है। आज का मानव आदि मानव से बहुत भिन्न है। आज उसका वातावरण भी आदि मानव से बहुत

---

x आयाम से तात्पर्य भूगोल के विभिन्न शाखाओं, जैसे, आर्थिक, सांस्कृतिक, नगरीय, ग्रामीण, राजनैतिक, मानव, शैक्षिक आदि से है।

SCOPE OF HISTORICAL GEOGRAPHY
TIME
2000
BRITISH
MUGAL
MAURYAN
PURANIC
EPIC
VEDIC
PREVEDIC
H I S T O R I C A L
SCOPE OF
HISTORICAL
GEOGRAPHY
ATMOSPHERE
LITHOSPHERE
HYDROSPHERE
BIOSPHERE
NOONOSPHERE
ENERGY
ENERGY
SPACE (REGION)
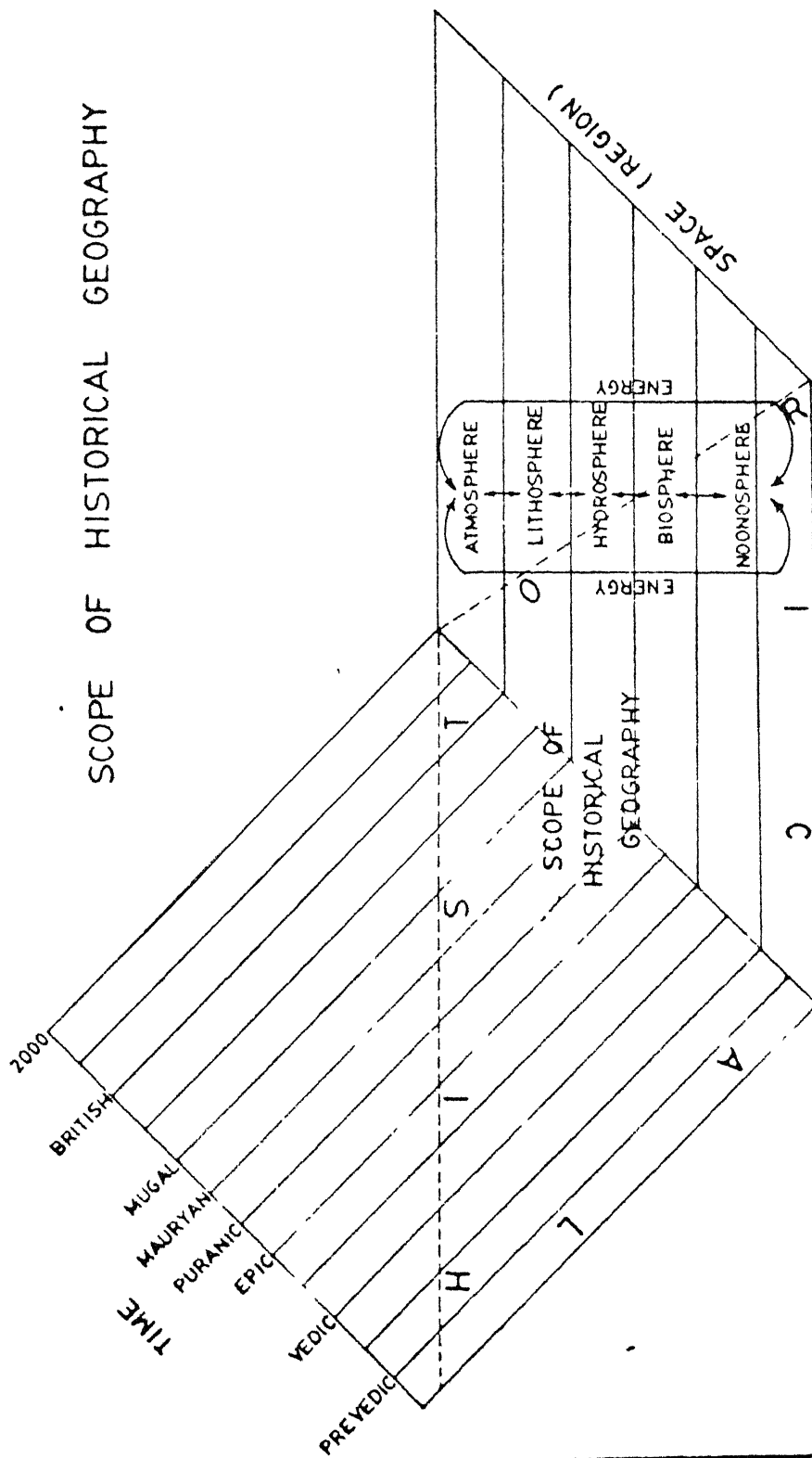
FIG 11

कुछ बदला हुआ है। जहाँ पाषाणकालीन मानव प्रकृति पूजक था आज वह प्रकृति शोषक है। मानव के विकास में क्रमबद्धता पायी गयी है, अतः इतिहासकारों ने ‹किसी तत्व के› अध्ययन के लिए काल को कई खण्डों में बाँटा है। जब स्थान का अध्ययन इन कालिक खण्डों के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है, तो स्थान ‹space› के सारे तत्व स्वयमेव ऐतिहासिक भूगोल के तत्व हो जाते हैं। ‹चित्र सं01›

1.2 ऐतिहासिक भूगोल के अध्ययन के स्रोत-

ऐतिहासिक भूगोलवेत्ता की सबसे बड़ी समस्या स्रोत वस्तुओं के अभाव से जुड़ी हुई है ऐसा इसलिये भी सम्भव है क्योंकि भूतकाल के सभी कालिक खण्डों के मानचित्र नहीं मिलते हैं। भारत के संदर्भ में यह उक्ति और भी चरितार्थ लगती है, जहाँ अतीत में वर्तमान पद्धति पर इतिहास एवं भूगोल लिखने की परम्परा का अभाव पाया जाता है। कतिपय प्रमुख स्रोतों का विवरण निम्न प्रकार है :-

‹1› शिलालेख एवं सिक्के -

शिलालेख एवं सिक्के ऐतिहासिक भूगोलवेत्ताओं के लिए उतने आवश्यक नहीं हैं, जितने कि इतिहासकारों के लिए फिर भी ये महाकाव्यों, धार्मिक ग्रन्थों एवं अन्य स्रोतों से प्राप्त भौगोलिक ज्ञान को प्रमाणित करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

(2) वेद एवं उपनिषद-

वैदिक कालीन आर्यों के भौगोलिक ज्ञान की पुष्टि ऋग्वेद आदि वैदिक ग्रन्थों से होती है। ऋग्वेद के दश(म)मण्डल में भौगोलिक तथ्यों का विस्तृत वर्णन है।[16] ऋग्वेद संहिता में पर्वतों एवं विभिन्न प्रजातियों के बारे में विवरण मिलता है।[17] साथ ही ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड उत्पत्ति की भी कल्पना की गयी है। इसी प्रकार अन्य वेदों में भी भूतल के प्राकृतिक स्वरूप खनिज सम्पदा,वनस्पति कृषि कार्य, निवासियों आदि का विशद विवरण प्राप्त होता है।[18] वेदोत्तर काल में रचित ब्राह्मण ग्रन्थों में भी भौगोलिक तथ्यों का सम्यक विवेचन पाया जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण में तो भारत के ऐतिहासिक भूगोल का सविस्तार वर्णन मिलता है।[19] ईश,मुण्डक,कठ ,छन्दोग्य,ऐतरेय,तैतरीय,श्वेताम्बर, बृहदारण्यक आदि ग्रन्थ भी भौगोलिक तथ्यों से परिपूर्ण हैं।

(3) महाकाव्य,पुराण एवं साहित्य -

आर्ष महाकाव्यों- रामायण एवं महाभारत- में भौगोलिक सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यदि रामायण में पहाड़ों,नदियों और प्रसिद्ध स्थलों का चित्रण है तो महाभारत विश्वकोश की तरह है।[20] पुराण साहित्य [21] भौगोलिक तथ्यों से भरे पड़े हैं। विशेषकर वायुपुराण (अध्याय 34,35,36,37,38,39,40,41,42·····44 तक) मत्स्यपुराण (113-123 तक)एवं भागवतपुराण(अध्याय- 1-20 21-26 तक)[22]भौगोलिक तथ्यों का विस्तृत विवरण मिलता है। पुराणों के भुवनकोश इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं।[23]

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब, आश्वलायन, बोधायन, कात्यायन (पाणिनी की) (अष्टाध्यायी), (कौटिल्य का) अर्थशास्त्र, बौद्धग्रन्थ, जैनग्रन्थ (पतंजलि का) (महाभाष्य) आर्यभट्ट एवं वाराह मिहिर आदि के (गणित और ज्योतिषग्रन्थ, (महाकवि कालिदास का (मेघदूत, एवं रघुवंश (भवभूति का) उत्तररामचरितम् दण्डी का (दशकुमार चरित) आदि ग्रन्थों में ऐतिहासिक भूगोल के अध्ययन के तथ्य विद्यमान है।[24]

(4) यात्राएं एवं खोज विवरण-

भूगोल में यात्रा का विशेष महत्व है। यही कारण है कि यात्राओं एवं खोजों से सम्बन्धित ग्रन्थ ऐतिहासिक भूगोल वेत्ताओं के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि वे यात्रियों द्वारा देखे गये तथ्यों का यथावत विवरण प्रदान करते हैं। जिससे अतीत के भौतिक विशेषताओं, सामाजिक- आर्थिक परिस्थितियों आदि के आकलन में पर्याप्त सहायता मिलती है। भारत की यात्रा पर आने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग, फाह्यान, सुंगयुंग, अरब यात्री अलबरूनी, इब्नबतूता, यूरोपीय यात्री वास्कोडिगामा आदि के यात्रा विवरण इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं। अन्य यूरोपीय यात्रियों में टेरीडेला, वोले, टावर्नीर, थेवेनॉट, फ्राइयर, हैमिल्टन आदि का उल्लेख किया जा सकता है [25] जिनके यात्रा विवरणों में तत्कालीन भौगोलिक परिवेश का सजीव चित्रण किया गया है।

§5§ प्राचीन भौगोलिक ग्रन्थ -

प्राचीन यूनानी तथा मध्यकालीन अरब लेखकों के भौगोलिक ग्रन्थ ऐतिहासिक भूगोलवेत्ताओं के लिए उत्तम स्त्रोत है। इनमें तत्कालीन भौगोलिक तथ्यों के बारे में संकेत मिलता है। यूनानियों में हिक्वोहोरिस, हेरोडोटस, मेगास्थनीज, आरियान, स्ट्रैबो, क्वीनट्स, सिलुकस, जूसटीन, प्लूटर्च, फ्रान्टिनस, नोचरचस , प्लीनी, टालमी आदि का विशेष उल्लेख किया जा सकता है[26] जबकि अरब लेखकों में खुर्दईबीह, इबनहौगल, अलमसौदी, अलमसदीसी, अल्बरूनी, अलइदरीसी, अब्दुलफिदा और इबनमजीदा आदि प्रमुख हैं[27] जिन्होंने मध्यकालीन भौगोलिक तथ्यों पर प्रकाश डाला है।

§6§शास्त्रीय इतिहास-

कल्हण की राजतंरगिणी, बाबरनामा, तबगत,-इ-नसीरी, मुन्ताखबत उत तवारिख, तारीख-इ-फिरोज शाही, तारीख-इ-रशीदी, अकबरनामा और मीरातई-अहमदी भी ऐतिहासिक भूगोल के मुख्य स्त्रोत हैं।[28]

§7§राजवंशों के पुरा अभिलेखागार एवं वृतांत-

ऐतिहासिक भूगोल के कुछ स्त्रोत प्राचीन पत्रों. डायरियों, कोर्टहिस्ट्री, कथावृतान्त, आत्मकथा, पत्राचारों, वंशावली रोल और

राज आज्ञाओं में भी पाये जाते हैं। बाबर नामा, तबकती इ अकबरी और तुजुक-ई -जहाँगीरी तथा अकबरनामा आदि ग्रन्थ तो मध्यकालीन ऐतिहासिक भूगोल के मुख्य स्त्रोत हैं।[29]

§8§ मालगुजारी सम्बन्धी आँकड़े-

मुगल एवं ब्रिटिश कालीन भूमि सम्बन्धी आकड़ों एवं भूराजस्व सम्बन्धी तथ्यों द्वारा भी तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों के बारे में जानकारी मिलती है।

§9§ सैनिक अभियान-

विदेशी आक्रमणकारियों जैसे सिकन्दर §चतुर्थ शताब्दी ई0पू0§ तैमूर, बाबर, अकबर आदि के सैनिक अभियानों के विवरणों से भी ऐतिहासिक भूगोल के तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

§10§ मन्दिरों के अभिलेख-

सांस्कृतिक चेतना का धनी, भारत ऐसे देश के प्राचीन मन्दिरों के कागजातों से अतीत के भौगोलिक तथ्यों के बारे में जानकारी मिलती है।

§11§ प्राचीन मानचित्र-

ऐतिहासिक भूगोल के अध्ययन में प्राचीन मानचित्रों का विशेष उपयोग किया जा सकता है। यद्यपि वर्तमान मानचित्र निर्माणकला हमें ग्रीक

एवं अरब देशों से प्राप्त हुई है परन्तु कतिपय प्राचीन ग्रन्थों में भी रेखाचित्रों आदि के माध्यम से भौगोलिक विवरणों को अंकित करने का प्रयास किया गया है।

1.3 भारत में ऐतिहासिक भूगोल का विकास -

भारत में ऐतिहासिक भूगोल के विकास का प्रारम्भिक चरण इतिहासकारों के हाथ में रहा। इसका अध्ययन ब्रिटिश शासन के भारत में स्थापना से जुड़ा हुआ है। ब्रिटिश इतिहासकारों ने मानव वातावरण सम्बन्धों का अध्ययन भारतीय इतिहास के परिवेश में किया जिससे भारतीय इतिहासकारों को भी प्रेरणा मिली। संक्षेप में देश में ऐतिहासिक भूगोल की प्रगति के इतिहास को निम्न तीन प्रमुख चरणों में विभाजित कर सकते हैं।

(1) प्रारम्भिक चरण - 1800 - 1931

(2) द्वितीय चरण - 1932 - 1968

(3) तृतीय चरण - 1969 - अब तक

(1) प्रारम्भिक चरण -

इस चरण में ऐतिहासिक भूगोल के विकास में एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल का विशेष योगदान रहा। इस सोसायटी की स्थापना भारत के इतिहास भाषा एवं प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन के लिए किया गया था। 1900 तक इसके सौजन्य से अनेक लेख प्रकाशित हुए जो

मुख्यत: अंग्रेजों द्वारा लिखे गये थे, जिसमें ऐतिहासिक भूगोल के अध्ययन के प्रारम्भिक स्रोत हैं। इन लेखों के माध्यम से जहां एक ओर रामायण, महाभारत आदि धर्मग्रन्थों में वर्णित भौगोलिक स्थलों के अध्ययन में रुचि दिखायी गयी, वहीं भौतिक भूगोल के विभिन्न तत्वों विशेषकर नदियों आदि की अपवाह प्रणालियों के उदभव एवं विकास आदि पर प्रकाश डाला गया। वर्ष 1800 से 1932 के मध्य जिन अन्य संस्थाओं ने ऐतिहासिक भूगोल के विकास में योगदान दिया उनमें Indian Antiquary American Oriental Society तथा लंदन, कलकत्ता एवं मद्रास की कुछ संस्थाओं की उपलब्धियां विशेष महत्वपूर्ण रहीं। चूंकि इनमें से अधिकांश लेख इतिहासकारों द्वारा लिखे गये थे अतएव इनमें ऐतिहासिक तत्वों की प्रधानता थी, जबकि भौगोलिक विश्लेषण का अभाव पाया जाता था।

§2§ द्वितीय चरण § 1932- 1968§ -

1930 के लगभग Journal of the Madras Geographical Association का प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हुआ। तदुपरान्त Calcutta Geographical Review, The ~~Geographic~~, Geographical Review of India, National Geographical Journal of India, Bombay Geographical Magazine, Indian Geographer भौगोलिक पत्रिकाओं में ऐतिहासिक भूगोल सम्बन्धी लेखों का प्रकाशन होने लगा तथा Asiatic Society का वर्चस्व लगभग समाप्त हो गया।

इस काल में ऐतिहासिक भूगोल के विभिन्न पक्षों पर अनेक लेख लिखे गये जिनमें B.C.Law, T.K.Raychqudhari, S.P.Raychaudhari, S.P. Raza, A.B. Mukerjee, H.L. Chhibber, T.D.K. Dere, V.R.R.Diksh tar और B.G.Tamaskar आदि के प्रयास उल्लेखनीय हैं जिन्होंने अपने शोधपूर्ण निबन्धों से भारतीय धर्मग्रन्थों में निहित भौगोलिक सामग्री पर पर्याप्त प्रकाश डाला। साथ ही साथ अतीत के जलवायु परिवर्तनों, नदी प्रवाह में परिवर्तनों, भारत आने वाले पुराने विदेशी यात्रियों के यात्रा विवरणों, प्राचीन नगरों एवं सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तनोंआदि विषयों का भी समुचित अध्ययन किया गया। इस काल में ऐतिहासिक भूगोल पर कुछ उच्चकोटि के ग्रन्थ भी प्रकाशितहुए जिनमें P.L. Bhargav का India in the Vedic Age(1956), The Geography of Rigvedic India (1964) एस०एम० अली की Arab Geography (1960) The Geography ofthe puranas(66) एस०बी० चौधरी की Ethnicsettlement-Ancient India(1955) बेचन दूबे की Geographical concept in Ancient India (1967) मायाप्रसाद् त्रिपाठी की Development of Geographical knowledge in Anct.India एवं बी०सी० ला की Al Berune's knowledge of India Geography (1957) Geographical Aspect of Kalidas' Works (1954), Historical Geography of Ancient India एम०एस०जेड

अल्वनी का Arab Geography-9th and 10th centuries(1965)
~~एस0एम0 अहमद का India in the ...Century(1954~~) आदि
का उल्लेख किया जा सकता है।

तृतीय चरण-{1969 से अब तक}

21 वें अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक कांग्रेस {1968} के अधिवेशन के दिल्ली में आयोजित होने से ऐतिहासिक भूगोल के विकास को और भी प्रोत्साहन मिला। इस कांग्रेस में विश्व के विभिन्न अंचलों से आए हुए मूर्धन्य विद्वानों ने भाग लिया जिनके शोधपूर्ण अभिलेखों एवं व्याख्यानों से न केवल भारतीय विद्वानों की ऐतिहासिक भूगोल में अभिरूचि बढ़ी बल्कि विषय में नये आयामों एवं अध्ययन विधियों का सूत्रपात हुआ जिससे इसके अध्ययन में काफी वैज्ञानिकता आ गयी। इस काल के ऐतिहासिक भूगोल के विकास में भी इतिहासकारों का योगदान रहा। चूँकि आधुनिक भारत के सामाजिक ,आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन पर मुगल एवं ब्रिटिशकालीन ,सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक चिन्तनों का विशेष प्रभाव रहा है। अतः ऐतिहासिक भूगोलवेत्ता का ध्यान इस काल की ओर विशेष रूप से पड़ा। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कृतियां भी प्रकाश में आयीं जो प्राचीन भारत के संस्कृत,पालि आदि ग्रन्थों पर आधारित है। इन लेखों का एक समालोचनात्मक विवरण प्रो0 मुनीसरजा एवं प्रो0 ऐजाजुद्दीन अहमद द्वारा लिखे गये ऐतिहासिक भूगोल के प्रगति

विवरणों (Histrorical Geography: A Trend Report) एवं भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान (I.C.S.S.R.) द्वारा प्रकाशित I.C.S.S.R. Journal of Abstract and Reviews in Geography सेप्राप्त होता है। इन लेखों की विषय वस्तु के अवलोकन से यह तथ्य सुस्पष्ट होता है कि अधिकांश लेख केवल ऐतिहासिक विवरण मात्र है जिनमें भौगोलिक व्याख्या दृष्टिकोण का नितान्त अभाव पाया जाता है। ऐसे विरले ही प्रयास किये गये हैं जिनमें भूगोल को ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या हेतु एक सशक्त उपकरण हेतु प्रयोग किया गया हो अथवा नूतन विधियों का अवलंबन कर अतीत के भूदृश्यों के सामाजिक/आर्थिक परिस्थितियों की पुनर्रचना (reconstruction) की जा सके। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इन कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया है।

1.4 वर्तमान अध्ययन की वस्तुनिष्ठता-

वर्तमान अध्ययन शोधकर्ता के वाल्मीकि रामायण की कथा के प्रति जिज्ञासा का प्रतिफल है। भूतल के प्रथम लौकिक महाकाव्य होने के नाते वाल्मीकि रामायण (अब केवल रामायण शब्द का प्रयोग किया जायेगा) न केवल एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है वरन् यह मानव सभ्यता के विकास, ज्ञान विज्ञान आदि क्षेत्रों में उसकी उपलब्धियों अनन्तकाल से घटित होने वाले सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों आदि के बारे में जानकारी देने वाला एक मात्र ग्रन्थ है। परन्तु अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रामायण में वर्णित भौगोलिक ज्ञान

का दिग्दर्शन कराना है। यह शोध प्रबन्ध जहाँ एक तरफ पृथ्वी और ब्रह्माण्ड के बारे में रामायणकालीन परिकल्पना (अध्याय 2 और 3) एवं रामायण में वर्णित भूमण्डल (अध्याय 4) के बारे में जानकारी प्रस्तुत करता है वहीं भारत के भौतिक (अध्याय 5) आर्थिक (अध्याय 6) राजनीतिक (अध्याय 7) सांस्कृतिक (अध्याय 8) स्वरूपों के बारे में विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

उपर्युक्त दृष्टि से सम्पूर्ण अध्ययन को 8 अध्यायों में बांटा गया है।

1- प्रस्तावना
2- वाल्मीकि रामायण में ब्रह्माण्ड एवं सौरमण्डल की परिकल्पना
3- वाल्मीकि रामायण में भूतल की संकल्पना
4- रामायणकालीन संसार
5- वाल्मीकि रामायण में भारत : प्राकृतिक तंत्र
6- वाल्मीकि रामायण में भारत: आर्थिक तंत्र
7- वाल्मीकि रामायण में भारत: राजनीतिक तंत्र
8- वाल्मीकि रामायण में भारत: सामाजिक एवं सांस्कृतिक तंत्र

शोध प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य निम्न संकल्पनाओं का परीक्षण करना है।

§1§ रामायण कालीन लोग खगोलीय भूगोल का ज्ञान रखते थे तथा उन्हें ब्रह्माण्ड एवं पृथ्वी की उत्पत्ति, ग्रह, उपग्रह तथा उनके सम्बन्ध चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण आदि के बारे में समुचित जानकारी थी।

§2§ रामायणकालीन लोग पृथ्वी के ठोस, वायव्य एवं तरल तीनों ही भागों के बारे में ज्ञान रखते थे। जैसे भूपटल की रचना, वायुमण्डल का स्तरीकरण, वर्षा के कारण, ऋतु बादल, वायु, समुद्र एवं उसकी गतियाँ, खनिज सम्पदा आदि।

§3§ रामायणकालीन लोगों को न केवलभारत के विभिन्नभागों के बारे में ज्ञान था। वरन् उन्हें तत्कालीन संसार के बारे में पूर्ण जिज्ञासा थी/उन्हें वर्तमान विश्व के अधिकांश भागों के बारे में जानकारी थी।

§4§ भारतीय भूगोल के प्राकृतिक तंत्र के बारे में रामायण में पर्याप्त सामग्री निहित है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि रामायण काल में लोग यात्राओं में रुचिरखते थें एवं भारत के विभिन्न अंचलों के बीच आर्थिक एवं सामाजिक सम्बन्ध थे।

§5§ रामायणकालीन भारत मुख्यतया 3 प्रमुख संस्कृतियों से प्रभावित था जिसमें परस्पर तीव्र स्पर्धा थी।

§6§ भारत के समूचे क्षेत्र पर विभिन्न जातियाँ पायी जाती थी जिनके खानपान, रीतिरिवाज इत्यादि भिन्न-भिन्न थे। इन जनजातियों में प्राय: संघर्ष हुआ करते थे।

§7§ तत्कालीन भारत विभिन्न जनपदों में विभक्त था।

§8§ मुख्य रूप से जहाँ विन्ध्यपर्वत के उत्तर का समूचा क्षेत्र आर्य संस्कृति के प्रभाव में था वहीं विन्ध्य के दक्षिण अनार्य संस्कृति अपने उत्कर्ष पर थी।

§9§ रामायणकालीन लोग शिकारी§राक्षस§ कृषि एवं पशुपालन §आर्य§ तथा संग्रहीकरण§किन्नर§ व्यवसायों में बटें हुए थे।

§10§ देश में अनेक छोटे बड़े नगर, प्रशासनिक केन्द्र एवं राजधानी एवं सुरक्षित दुर्ग थे जो परस्पर जल एवं स्थल मार्गों से सम्बद्ध थे। भारत के समूचे दक्षिणी भाग पर घने वनों का आवरण था। उत्तर के मैदानी भागों में भी वन उगे हुए थे तथा जनसंख्या विरल थी।

§11§ रामायणकालीन नगर एवं ग्राम प्रायः नदियों एवं जलाशयों के किनारे सघन बस्तियों के रूप में बसे हुए थे।

§12§ रामायणकालीन समाज विभिन्न वर्णों एवं सम्प्रदायों में बँटा हुआ था। यद्यपि समस्त सामाजिक व्यवस्था, न्याय एवं प्रशासन ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के अधीन था। परन्तु शूद्रों को भी अच्छी दृष्टि से देखा जाता था। यद्यपि देश की आर्थिक स्थिति ठीक थी परन्तु कुछ सामाजिक कुरीतियों ने अपना स्थान बनाना शुरू कर दिया था।

1·5 अध्ययन विधि -

आँकड़ों का एकत्रीकरण-

प्रस्तुत अध्ययन के आँकड़े एवं विवरण मुख्यतः निम्न स्रोतों से

प्राप्त किये गये हैं।

1· लिखित प्रमाण-

प्राचीन कालीन संस्कृत के वैदिक,लौकिक एवं पालिग्रन्थ वर्तमान शोध प्रबन्ध से सम्बन्धित भौगोलिक तथ्यों के प्रमुख स्त्रोत हैं, जिनमें आर्यों के भौगोलिक ज्ञान क्रमशः विस्तार को प्राप्त हुए हैं इसके अतिरिक्त विभिन्न अन्य ग्रन्थों को भी इस हेतु देखा गया है,जिसमें अतीत के भौगोलिक विवरणों पर प्रकाश पड़ता है।

2· उत्खनन के प्रमाण-

भरद्वाज आश्रम एवं विभिन्न रामायण स्थलों के उत्खनन से उपलब्ध प्रमाणों को भी अध्ययन हेतु सम्मिलित किया गया है। खनन में प्राप्त अवशेषों से रामायणकालीन स्थलों की प्राचीनता तथा उत्तर रामायणकालीन धार्मिक,आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के समझने में विशेष सहायता मिली है।

3· रामायणमात्र एककाव्य न होकर भारतीय जनता का एक प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ है यही कारण है कि राम के जीवन से सम्बन्धित अनेक किस्से कहानियां एवं किवदन्तियां आज भी ग्रामीण अंचलों में सुरक्षित है। लेखक को इनके अध्ययन से बहुत सी गुत्थियों को सुलझाने में पर्याप्त सहायता मिली है।

4· क्षेत्रीय सर्वेक्षण -

बहुत से रामायण कालीन स्थान जो आज विद्यमान हैं(अयोध्या,

श्रृंगवेरपुर, जनकपुर, प्रयाग, चित्रकूट नासिक एवं रामेश्वरम । आदि) के भ्रमण एवं वहां के लोगों से सम्पर्क कर एकत्रित तथ्यों के आधार पर भी रामायण में वर्णित पुराने मार्गों के स्थानों आदि के पता लगाने में सहायता मिली है।

5· अध्ययन हेतु विभिन्न प्रकाशित मानचित्रों का भी उपयोग किया गया है जिससे स्थानों, देशों एवं प्राकृतिक स्थलों के ज्ञान में पर्याप्त सहायतामिली है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या -

आंकड़ों एवं तथ्यों के विश्लेषण एवं व्याख्या हेतु आगमनिक एवं निगमनिक दोनों ही उपागमों का आश्रय लिखा गया है। रामायण काल के अनेक स्थल आज भी सुरक्षित हैं, जिनके आधार पर रामायणकालीन सांस्कृतिक भूदृश्य का अनुमान लगाया जा सकता है। चूंकि "वर्तमान को अतीत की कुंजी " कहा जाता है अतएव वर्तमान के आधार पर रामायण कालीन अतीत की सामाजिक, आर्थिक, परिस्थितियों का आकलन का प्रयास किया गया है। निष्कर्षों को सही सिद्ध करने के लिए "अतीत से वर्तमान की ओर" की पद्धति का अवलम्बन कर परीक्षण किया गया है यद्यपि उपर्युक्त सभी व्याख्या विवरण प्रधान है परन्तु यत्र तत्र आवश्यकता-नुसार नवीन विधियों का भी आश्रय लिया गया है। रामायण के विवरण

बहुआयामी है जिनमें से शोध प्रबन्ध की विषय वस्तु को देखते हुए केवल उन्हीं तथ्यों को वर्तमान ग्रन्थ में सम्मिलित किया गया है जो भौगोलिक हो अथवा जिनके रामायणकालीन भूगोल के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकती हो। मुख्य शीर्षकों, चित्रों, सारणियों आदि के नामांकन में अध्याय की संख्या भी साथ मेंजोड़ी गयी है जबकि संदर्भ ग्रन्थों की सूची क्रमानुसार फुटनोट के रूप में दी गयी है।

1·6 आदि कवि वाल्मीकि एवं उनका रामायण : समय एवं विभिन्न संस्करण-

रामायण के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि आदि कवि माने जाते हैं। उनका "आदि काव्य" "श्री मद्वाल्मीकीय रामायण" भूतल का प्रथम काव्य है[30] वाल्मीकि राम के समकालीन थे। व्यास आदिसभी परवर्ती कवियों ने इसी का अध्ययन कर महाभारत एवं पुराण आदि ग्रन्थों की रचना की[31]। महर्षि वाल्मीकि को कुछ लोग निम्न जाति का बतलाते हैं पर वाल्मीकि रामायण [32] तथा अध्यात्म रामायण[33] में वाल्मीकि ने अपने को प्रचेता[34] पुत्र बताया है। मनुस्मृति[35] में प्रचेता को वशिष्ठ नारद, पुलस्त्य (कुलीन व्यक्तियों) का भाई माना गया है। स्कन्दपुराण के वैशाख महात्म्य में इन्हे व्याध बतलाया गया है। व्याध जन्म से पहले ये स्तम्भ नाम के श्री वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। व्याध जन्म में शंखन ऋषि के सत्संग में आने पर रामनाम के जप से यह दूसरे जन्म में अग्निशर्मा (मतान्तर से रत्नाकर) नाम से उत्पन्न हुए । वहां भी व्याधों के संग से ये पुनः व्याध कर्म में लग

गये बाद में सप्तर्षियों के उपदेश से मरा-मरा जपकर ये ऋषि बन गये। समाधिस्थ होने पर "वाल्मीकि" अर्थात "दीमक" के ढेर से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम वाल्मीकि पड़ा। एक दिन गंगा तट पर टहलते हुए रति क्रीड़ारत क्रौन्च पक्षी के जोड़े से नरपक्षी के व्याध द्वारा मारे जाने पर इनके अंतस्तल से स्वमेव अनुष्टप् छन्द (एक श्लोक) फूट पड़ा। बाद में ब्रह्मा ने (एक आध्यात्मिक शक्ति) प्रकट होकर इन्हें दिव्य ज्ञान एवं दिव्य दृष्टि प्रदान की एवं रामायण लिखने का आग्रह किया और रामायण की रचना की।[36]

1·6·2 वाल्मीकि रामायण का रचनाकाल-

वाल्मीकि रामायण में 24000श्लोक 500 सर्ग एवं 7 काण्ड हैं[37]। यह एक उपाख्यान है, जिसमें अयोध्या के सूर्यवंशी राजा राम की कथा का वर्णन है।

रामायण के समय निर्धारण में कुछ मौलिक कठिनाइयां हैं

1- रामायण में रचनाकाल का अनिर्देश ।

2- विद्वानों द्वारा राम की ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिन्ह ।

3- पुष्ट अन्तरंग एवं बहिरंग प्रमाणों का अभाव।

4- रामायण वैदिक काल की रचना है, परन्तु वैदिक काल स्वयं अनिर्धारित होने के कारण इसके काल निर्धारण में कठिनाई होती है।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने रामायण के समय निर्धारण में पर्याप्त विचार विनिमय के बाद निम्न तथ्य प्रस्तुत किये हैं।

§अ§ बरदाचार्य[38]-

राम त्रेतायुग में हुए थे जो ईशा से 8 लाख 67 हजार । सौ वर्ष पूर्व समाप्त हुआ था। बाल्मीकि राम के समकालीन थे। अतः रामायण की रचना का समय पूर्वोक्त है।

§ब§ गोरेसियो[39] - 1200 ई0पू0 ।

§स§ श्लेग्ल [40] - 1100 ई0 पू0 ।

§द§ याकोबी[41] - 800 से 500 ई0पू0

§य§ कामिल बुल्के[42]- 600 ई0पू0।

§र§ मैकडोनेल [43] - 500 ई0पू0 संशोधन 200 ई0पू0 ।

§ल§ जायसवाल [44] - 500 ई0पू0 संशोधन 200 ई0पू0 ।

§व§ जयचन्द्र विद्यालंकार - 500 ई0पू0 संशोधन 200 ई0पू0 ।

§श§ विन्टरनित्स - 300 ई0पू0 ।

उपर्युक्त विवेचन निम्न बातों पर विशेष ध्यान देकर किया गया है।

§अ§ रामायण में बुद्ध के उल्लेख का न होना तथा बौद्ध धर्म के प्रभाव का अभाव ।

§ब§ वैदिक काल का परवर्ती होना।

§स§ कोशल की राजधानी अयोध्या बताना न किसाकेत ।

§द§ पाटलिपुत्र का उल्लेख न होना।

§य§ श्रावस्ती का राजधानी न होना।

§र§ विशाला तथामिथिला का स्वतंत्र राज्य के रूप में उल्लेख ।

§ल§ यूनानी प्रभाव का अभाव।

§व§ मूल रामायण में राम को अवतार न मानना ।

§श§ 500 ई0पू0 की संस्कृति एवं सभ्यता से साम्य ।

§अ§ रामायण में बुद्ध का उल्लेख नहीं मिलता ,केवल एक ही स्थान पर बुद्ध का नाम आता है[47] जो प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। अत: रामायण की रचना बुद्ध के पूर्व की जान पड़ती है। बुद्ध का जन्म 563 ई0पू0 निर्वाण 483 ई0पू0·है।

§ब§ रामायण लौकिक साहित्य का प्रथम महाकाव्य है अत: इसकी पूर्व सीमा वैदिक-काल की समाप्ति है।

§स§ रामायण में कोशल राज्य की राजधानी अयोध्या बतायी गयी है[48] बौद्ध और जैनग्रन्थों में अयोध्या का नाम साकेत बताया गया है अत: रामायण का रचनाकाल महावीर और बुद्ध से पूर्ववर्ती प्रतीत होता है।

§द§ रामायण [49] में उल्लेख है कि राम गंगा एवं सोन के संगम के पास से जाते है,परन्तु संगम पर स्थित वर्तमान पाटलिपुत्र का वर्णन नहीं मिलता जिसे बिम्बसार के पुत्र अजात शत्रु §ई0पू0 491 से 459 तक§ ने

पाटील नामक ग्राम के चारों ओर सुरक्षार्थ एक प्राचीन बनवाकर स्थापित किया था। अतः रामायण की रचना 500 ई0पू0 से पहले मानी जानी चाहिए।

(य) राम के पुत्र लव ने अपनी राजधानी श्रावस्ती में बनायी थी [50]। बुद्धकालीन राजा प्रसेनजित की राजधानी श्रावस्ती थी। रामायण में कोशल की राजधानी अयोध्या ही है। अतः रामायण का बुद्ध से पूर्ववर्ती होना सिद्ध होता है।

(र) डॉ0 वेबर ने रामायण में यवन [51] शब्द के प्रयोग के आधार पर यूनानी सभ्यता के प्रभाव को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है परन्तु डॉ0 याकोबी और डॉ0 विण्टरनित्स ने उपर्युक्त दोनों स्थलों को प्रक्षिप्त माना है और रामायण पर यूनानी प्रभाव का खण्डन किया है। अतः रामायण का समय यूनानियों के भारत आगमन से पूर्व का प्रमाणित होता है।

(ल) रामायण का अधिकांश चित्रण 5वीं शताब्दी ई0पू0 भारतीय समाज के आर्थिक राजनीतिक और धार्मिक जीवन से मेल खाता है। [52]

(य) विण्टरनित्स ने यह सिद्ध किया है कि वर्तमान परिवर्धित रामायण प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में अपने वर्तमान रूप में आ चुकी थी।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूल रामायण 600 ई0 पू0 के बाद की रचना नहीं है। वास्तव में वर्तमान

24000 श्लोकों वाली रामायण प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में निश्चित रूप से अपने सुविकसित रूप में आ चुकी थी।

1·6·3 वाल्मीकि रामायण के अनेक संस्करण पाये जाते हैं जिनमें परस्पर पर्याप्त पाठभेद मिलता है चार मुख्य संस्करण इस प्रकार हैं।

§अ§ बम्बई संस्करण §देवनागरी संस्करण§- इसका प्रकाशन बम्बई के निर्णय सागर प्रेस से 1902 में §सम्पादक के0पी0 परब§ हुआ है। इसकी सबसे प्रसिद्ध टीका तिलक है। जिसे प्रसिद्ध वैयाकरण नागेश भट्ट ने अपने आश्रयदाता राजा राम के नाम से की है।

§ब§ बंगला संस्करण -

यह संस्करण जी0 गोरेसियों ने 1843- 1867 ई0 में प्रकाशित किया था। यूरोप में सर्वप्रथम यही संस्करण छपा था। इसे गौड़ीय संस्करण भी कहते हैं।

§स§ पश्चिमोत्तर संस्करण§काश्मीरी संस्करण§- यह संस्करण रिसर्च विभाग डी0ए0वी0 कालेज लाहौरसे 1813 में प्रकाशित हुआ था इसके टीकाकार कानाम "कटक" है।

§द§ दक्षिणात्य संस्करण- यह कुम्भकोणम् §मद्रास§ से 1929 ई0 में प्रकाशित हुआ था। बम्बई संस्करण से इसमें बहुत कम पाठभेद हैं।

1·6·4 वाल्मीकि रामायण के मौलिक अंश -

कुछ विद्वान [53] अयोध्या काण्ड सेयुद्ध काण्ड तक के ही भाग

को वाल्मीकि की मूल रचना मानते हैं। डॉ0 विण्टरनित्स ने अपने पूर्ववर्ती प्रो0 वेबर (Weber) तथा याकोबी आदि आलोचकों के मतों का संग्रह करते हुए रामायण के मौलिक एवं प्रक्षिप्त अंशों की सारपूर्ण विवेचना की है।[54] उन्होंने यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि मूल रामायण में केवल अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक के ही भाग सम्मिलित थे। काण्ड 1 और काण्ड 7 परकालीन मिश्रण है। इसके लिए इन्होंने निम्न तर्क दिये हैं।

(अ) भाषा और शैली की दृष्टि से काण्ड 1 और काण्ड 7 समकक्ष लगते हैं परन्तु मूलग्रन्थ से इनकी भाषा आदि निम्नकोटि की है।

(ब) मूलकथा काण्ड 2 से प्रारम्भ होकर काण्ड 6 पर समाप्त हो जाती है। काण्ड 1 और 7 की कथा मूलकथा से सम्बन्धित ही है।

(स) काण्ड 1 और 7 की कथाएँ मूल ग्रन्थ की कथा से भिन्न है।

(द) काण्ड 2 से 6 तक राम मार्यादापुरुषोत्तम और आदर्श पुरुष माने गये हैं। जबकि 1 और 7 में इन्हे विष्णु काअवतार बतलाया गया है।

(य) काण्ड 1 और 7 में पुनरुक्ति दोष तथा मूलग्रन्थ से विरोधी घटनाएं वर्णित की गयी हैं।

श्री वी0 वरदाचार्य ने मूलग्रन्थ और प्रक्षिप्त अंश के पर्याप्त विश्लेषण के बाद यह विचार प्रस्तुत किया है कि रामायण के सातों काण्ड

मौलिक हैं। प्राय: सभी कथाएँ उचित स्थान पर हैं। कांड 1 और 7 में कुछ अंश अवश्य प्रक्षिप्त है जिनकी टीकाकारों ने टीकाएं नहीं की हैं।

1.7 वाल्मीकि रामायण का कथानक और उसमें भौगोलिक तथ्यों का विवेचन-

रामायण की कथा वस्तु मर्यादापुरूषोत्तम राम के जीवन से सम्बन्धित है काण्ड के अनुसार इस कथा का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है -

§1§ बालकाण्ड - इस काण्ड में वाल्मीकि जी के रामायण रचना के पूर्व क्रौन्च पक्षी का व्याध द्वारा मारा जाना एवं कवि का करूणा से पूर्ण श्लोक[55] के प्रकट होने से लेकर रामायण की रचना, राम का जन्म, विश्वामित्र के साथ मिथिला गमन एवं सीता से विवाह और परशुराम संवाद वर्णित है। छिटपुट भौगोलिक सामग्री के अतिरिक्त इसमें भौगोलिक सामग्री के मुख्य स्थल निम्न है-

सर्ग 5- 6 अयोध्या नगरी का वर्णन ।

सर्ग 22-23 विश्वामित्र के साथ श्री राम और लक्ष्मण की यात्राओं का विवरण ,गंगा एवं सरयू के संगम का विवरण ,मलद करूष एवं ताटका वन का परिचयन देना।

सर्ग 29- सिद्धाश्रम का वर्णन ।

सर्ग 31-32 - सिद्धाश्रम से मिथिला तक के मार्ग का वर्णन ।शोण भद्र तटवर्ती भूमि का विस्तृत परिचयदेना ।

सर्ग 35- 36 - गंगा जी की उत्पत्ति का वर्णन एवं पृथ्वी के विभिन्न रूपों {धरातल के विभिन्न उच्चावच} की उत्पत्ति की व्याख्या।

सर्ग 39-41 -सगरपुत्रों द्वारा पृथ्वी का भेदन {सम्पूर्ण पृथ्वी की छान बीन} कपिलमुनि के वासस्थान रसातल में जाना}

सर्ग 43- गंगा का विन्दु सरोवर से उत्पन्न होकर सप्त धाराओं में विभक्त होना।

2- अयोध्या काण्ड - राम के राज्याभिषेक की तैयारी राजा दशरथ की रानी कैकेयी द्वारा दो वरमांगकर राम को वनवास भिजवाना। राम और लक्ष्मण का सीता के साथ वन गमन, भरत का उनको मनाने के लिए चित्रकूट जाना और लौटकर पुनः नन्दिग्राम में निवास करना।

प्रस्तुत काण्ड के भौगोलिक तथ्य -

सर्ग 1- भारत के विभिन्न जनपदों का वर्णन ।

सर्ग 49-50 -कोशल जनपद ,वेदश्रुति,गोमती एवं स्यन्दिका नदियों का वर्णन ,श्रृंगवेरपुर तक के बीच के मार्ग का वर्णन ।

सर्ग 52- वत्सदेश का चित्रण ।

सर्ग 54-56 -गंगा यमुना का संगम, भरद्वाज आश्रम चित्रकूट पर्वत का वर्णन, प्रयाग से चित्रकूट के बीच के मार्ग का विवरण यमुना जी का वर्णन, बाल्मीकि आश्रम एवं पर्णशाला का निर्माण ।

सर्ग 68- कोशल से केकय के बीच के मार्ग का वर्णन ।

सर्ग- 71-कैकय से अयोध्या के बीच के मार्ग के विभिन्न भूदृश्यों का वर्णन।

सर्ग 80- अयोध्या से गंगा तट तक रम्य शिविर एवं कूप आदि से युक्त सुखद राजमार्ग के निर्माण का वर्णन ।

सर्ग 83- भरत की वनयात्रा का वर्णन ।

सर्ग 89- कोशल से गंगा तट पर स्थित भरद्वाज आश्रम का विवरण ।

सर्ग 92-95 - भरद्वाज आश्रम से चित्रकूट यात्रा,चित्रकूट मन्दाकिनी आदि की शोभा का वर्णन ।

सर्ग 114- अयोध्या नगरी की दुरवस्था का वर्णन ।

3- अरण्यकाण्ड-

श्री राम चन्द्र जी का भाई लक्ष्मण एवं सीता के साथ चित्रकूट से दण्डकारण्य एवं पंचवटी के लिए प्रस्थान, दण्डकारण्य के राक्षसों के साथ श्री राम का संघर्ष, शूर्पणखा का विरूपीकरण एवं सीता का रावण द्वारा हरण। शबरी की मंत्रणा से राम और लक्ष्मण का किष्किन्धा पर्वत की ओर गमन आदि प्रकरण इस काण्ड में वर्णित हैं।

भौगोलिक तथ्य -

सर्ग 1- तापसों के आश्रम का वर्णन।

सर्ग 11- पन्चाप्सर तीर्थ, सुतीक्ष्ण आश्रम,अगस्त्य के भाई एवं अगस्त्य आश्रम का वर्णन।

सर्ग 13- पञ्चवटी, अगस्त्य आश्रम से पंचवटी का मार्ग पंचवटी के वन प्रान्त

तथा हेमन्त ऋतु आदि का वर्णन।

सर्ग 22- जनस्थान एवं पंचवटी के बीच के मार्ग का वर्णन।

सर्ग 23- समुद्र तटवर्ती प्रान्त की शोभा का वर्णन।

सर्ग 54- किष्किन्धा एवं जनस्थान का वर्णन।

सर्ग 74-75- पम्पासर तट, मतंगवन, शबरीकेआश्रम का वर्णन।

4- किष्किन्धा काण्ड-

श्री राम और लक्ष्मण का सीता की खोज करते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर जाना वहां वानरराज सुग्रीव के साथ मित्रता एवं सुग्रीव के सचिव हनुमान से परिचय। सुग्रीव के भाई बालि का बध। सुग्रीव का राज्याभिषेक। सीता की खोज के लिए सुग्रीव द्वारा वानर सेनाओं को चारो दिशाओं का परिचय देते हुए भेजना। हनुमान जी का अंगद के नेतृत्व में सीता की खोज में वानर सैनिकों के साथ दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान।

सर्ग 1- पम्पासर की शोभा, ऋष्यमूक पर्वत।

सर्ग 11- मतंगमुनिका बालि को शाप देना।

सर्ग 13- ऋष्यमूक पर्वत से किष्किन्धा के बीच के वृक्षों, जन्तुओं, जलाशयों तथा मतंगमुनि आश्रम आदि को देखते हुए किष्किन्धापुरी में पहुँचना।

सर्ग 27- वर्षाऋतु एवं शरद ऋतु का वर्णन।

सर्ग 28-30- प्रस्त्रवण गिरि का वर्णन ।

सर्ग 37-39- वानरों के निवास स्थानों एवं उनकी जातियों का वर्णन ।

सर्ग 40- पूर्व दिशा में स्थित देशों नगरों आदि का वर्णन ।

सर्ग 41- दक्षिण दिशा के स्थानों का परिचय।

सर्ग 42- पश्चिम दिशा के स्थानों का परिचय।

सर्ग 43- उत्तर दिशा के स्थानों का परिचय।

सर्ग 44- हनुमान का दक्षिण की ओर प्रस्थान।

सर्ग 46- सुग्रीव का श्री राम चन्द्र जी को अपने भूमण्डल भ्रमण का वृतान्त बताना।

सर्ग 48-49- दक्षिण दिशा में सीता की खोज एवं गुफा, दिव्य सरोवर, दिव्य भवन आदि का वर्णन।

सर्ग 57- गृध्र जाति के सम्पाति के निवास का वर्णन।

सर्ग 67- महेन्द्र पर्वत का वर्णन।

5- सुन्दरकाण्ड -

हनुमान जी द्वारा समुद्र लांघकर लंकापुरी में प्रवेश। लंकापुरी का दर्शन एवं अशोकवाटिका में हनुमान का जाना। फिर राक्षसों से युद्ध करते हुए पकड़े जाकर रावण के दरबार में जाकर, लंका दहन एवं सीता से चूड़ामणि लेकर श्री राम के पास लौटना।

भौगोलिक तथ्य -

सर्ग 1- मैनाक पर्वत एवं समुद्र लंघन का वर्णन ।

सर्ग 2-3-लंकापुरी का वर्णन।

सर्ग 4।- प्रमदावन का वर्णन।

सर्ग 6।- मधुवन का वर्णन।

6. युद्धकाण्ड-

इस काण्ड में राम लक्ष्मण, सुग्रीव सहित वानर सेना का लंकापुरी में स्वनिर्मित पुल से होकर पार होना। मेघनाद, कुम्भकर्ण आदि राक्षसों का संहार एवं रावण के भाई विभीषण का राज्याभिषेक। राम का सीता एवं लक्ष्मण के साथ अयोध्या आगमन। श्री राम का राज्याभिषेक एवं अयोध्या का वर्णन।

भौगोलिक तथ्य-

सर्ग 3- लंकापुरी का एक दुर्ग के रूप में वर्णन।

सर्ग 22-नल (वानर) द्वारा सागर के आरपार सौ योजन लम्बे पुल का निर्माण।

सर्ग 24- लंका की शोभा का वर्णन।

सर्ग 36-39- नगर की रक्षा के लिए बनाये गये विभिन्न द्वार एवं सुबेल पर्वत का वर्णन।

सर्ग 119- इन्द्रलोक।

सर्ग 123- लंका से अयोध्या की यात्रा करते समय श्री राम का सीता को मार्ग बताना।

सर्ग 126- श्री राम लक्ष्मण एवं सीता के सम्पूर्ण वनवास का वर्णन।

7· उत्तरकाण्ड-

श्री राम का अपने प्रजा एवं राज्य की समृद्धि के लिए प्रयत्न, प्रजा के लिए सीता का त्याग सीता का वाल्मीकि मुनि के आश्रम में निवास, शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का वध, राम द्वारा शम्बूक का वध एवं राम का उत्तराधिकारियों को राज्य सौंप कर ब्रह्मलोक गमन आदि प्रकरण इस काण्ड की विषय वस्तुत है ।

भौगोलिक तथ्य -

सर्ग 9- गोकर्ण आश्रम का वर्णन।

सर्ग 11- लंका एवं कैलाश का वर्णन।

सर्ग 14- यक्षजाति का वर्णन।

सर्ग 20-22- यमलोक का वर्णन।

सर्ग 27- इन्द्रलोक का वर्णन।

सर्ग 31- 32- नर्मदा नदी एवं माहिष्मतीपुरी का वर्णन।

सर्ग 46- सीता को वन में गंगा के तट पर छोड़ना।

सर्ग 70-72- मधुपुरी एवं अयोध्या का वर्णन। वाल्मीकि आश्रम, अयोध्यापुरी मधुपुरी के बीच के स्थलों का वर्णन ।

सर्ग 102- कारूपथ देश के विभिन्न राज्यों का वर्णन।

सर्ग 108- राम के परमधाम गमन का वर्णन ।

1. श्रीवास्तव, मिथिलेश (1983): अभिनव भूगोल-एक समीक्षा, भूसंगम, इलाहाबाद ज्याग्राफिकल सोसाइटी, इलाहाबाद, अंक 1, सं0 1, पृ0 1

2. Finch, V.C. (————): Geographical Science and Social Philosophy, P. 6

3. Huntington, E. (1937): Geography and History, Canadian Journal of Economics and Political Science, Vol 3, P 565.

4. Singh, L.R. (1984): Bhoogol Ki Prakriti, U.P. Hindi Sansthan (Lucknow P.99.

5. Hartshorn, R: (1939): The Nature of Geography, A.A.A.G.P. 185

6. Op.cit., Fn. 4, P. 100.

7. Op.cit., Fn .5, P. 184

8. Ibid, P 184.

9. Mitchel, J.B. (1960): Historical Geography, The English University press Limited London P.

10. Op.cit., Fn 5., P. 151

11. Hartshorne (1960): Perspective on the Nature of Geography Chicago & London P. 101.

12. Op.cit., fn 4, P. 122-123.

13. Singh, J (1985): The sprit of Geography, Abstract Autumn Institute in Geography, Allahabad University P.1

14. Op.cit.,fn.4, P. 122-123

15. Op.cit.,fn.13, P.1

16. Rigved 10. 129 6-7, 10.72.3-4 ,10.81.2-4

17. Ali,S.M. (1966): The Geography of Puranas,People Publishing House, New Delhi P.15.

18. Singh, J:(1982) Bhaougolik Chintan Ke Muladhar ,Vasundhara . Prakashan ,Gorakhpur,P 27.

19. Ibid P.27

20. Dubey B (1967) :Geographical concepts in Ancient India, N.G.S.I.,Varanasi Foreword By R.L. Singh

21· पुराणों की संख्या 18 है:-- ...विष्णुपुराण (3·6)---ब्रह्म, पद्म ,वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय मारकण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, कूर्म, गरुण, वामन, मत्स्य, ब्रह्माण्ड।

22. Op.cit.,fn.17,P.3,4,7,8

23. Op.cit.,fn.18 ,P.27

24· कौशिक, एस०डी०:(1972) : भौगोलिक विचारधाराएं एवं विधि तंत्र, रस्तोगी पब्लिकेशन ,मेरठ पृ० 98

25. Raza M :(1972): A Trend Report in Geography, I.C.S.S.R, Popular Prakashan ,Bombay ,P.149.

26. Ibid P. 150

27. Ali, S.M. (1960): Arab Geographer, Aligarh Muslim University

28. Op.cit., fn. 25, P 151.

29. Ibid P. 151.

30 श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, प्रथम भाग, गीता प्रेस, गोरखपुर वैन पृ०।

31. Ibid P.

32. Op.cit., fn. 30, .2........7.96.18, 5.93.16

33. श्री अध्यात्म रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर 7.7.31

34. प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन:

35. मनुस्मृति, 1.35

36. कल्याण स्कन्दपुराणांक

37. Op.cit., fn. 30......1.4.2

38. वरदाचार्य, वी: संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनुभाग) पृ० 66-67

39. Gorresio: Introduction, Ramayan Vol 10.

40. Schlegel: Jerman Oriental Journal, Vol 3, P.379

41. Yokobe: Dus Ramayan P.101

42. Bulke, K (1950): Ram Katha P. 101

43. Macdonell: History of Sanskrit Litrature P 306-309

44. Jayswal, K.P.: J.B.O.R.S. Vol 4. P 262.

45. विद्यालंकार, जयचन्द्र: भारतीय इतिहास की रूप रेखा भाग 1 पृ० 432-433

46. Vinter Nits: History of Indian Litrature, Part I P 501-517.

47. Op.cit.,fn. 30, - ...2.109.34

48. Ibid : 5,6 Canto.

49. Ibid :.......1.31

50. Ibid . 104.8

51. Ibid.

52. Op.cit.,fn. 45- ---- #432 -433

53. Op.cit.,fn. 17, P 21.

54. Venter nitse: (1927) Indian Litrature Vol I ,P 495-500

55. Op.cit.,fn. 30.....1.2.15

द्वितीय अध्याय

वाल्मीकि रामायण में ब्रह्माण्ड एवं सौरमण्डल की परिकल्पना

मानव प्राचीनकाल से ही न केवल अपने आस पास के भूदृश्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करता रहा है वरन् उसमें पृथ्वी एवं अन्य खगोलीय पिंडों में अन्तर्निहित रहस्यों को जानने की सदैव तीव्र लालसा रही है। यही कारण है कि वैज्ञानिक प्रगति के अभाव एवं सीमित साधनों के बावजूद वह पृथ्वी, सूर्य एवं उसके परिवार के अन्य ग्रहों, उपग्रहों तारा-मण्डलों आदि की उत्पत्ति की व्याख्या में कभी पीछे नहीं रहा है। रामायण चूँकि भारतीयों का सर्वप्रथम लिपिबद्ध ग्रन्थ है अतः उसमें ऋषियों एवं मनीषियों की,पृथ्वी एवं अन्य खगोलीय पिंडों की उत्पत्ति आदि सम्बन्धी अनेक धारणाएं ,विभिन्न आख्यानों के माध्यम से वर्णित की गयी हैं।

२·१ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति -

वाल्मीकि रामायण एक लौकिक आदि महाकाव्य है। इसमें आर्यों के वैदिकोत्तर मानसिक चिन्तन का स्वरूप परिलक्षित होता है। यद्यपि रामायण में सांस्कृतिक तत्वों की प्रधानता है ,फिर भी इसमें नक्षत्रशास्त्र एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान की परिचर्चा का नितान्त अभाव नहीं है। इस सम्बन्ध में कवि ने द्वितीय एवं सप्तम काण्डों में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

रामायण वैदिकोत्तर रचना है अतः रामायण काल के ब्रह्माण्ड उत्पत्ति की परिकल्पना का स्रोत वैदिक साहित्य ही है जिनमें वेद, उपनिषद एवं आरण्यक आदि ग्रन्थ हैं। रामायण के पूर्ववर्ती (वेद, उपनिषद) एवं परवर्ती (पुराण ग्रन्थों) में सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो बातें मुख्य रूप से बतायी गयी हैं।

1- सृष्टि की रचना किसी ऐसे स्थिर व शान्त पदार्थ से हुई जो पहले से ब्रह्माण्ड में स्थित था।

अथवा

2- उसकी रचना पदार्थ विहीन दशा से पदार्थ की दशा प्राप्त होने से हुई।

सृष्टि की उत्पत्ति एवं सम्पूर्ण (Whole) व्यवस्था तथा भूमण्डल का निर्माण एवं विकास आदि का क्रमबद्ध वर्णन वेदों एवं उपनिषदों से मिलता है।

(अभीद्धात् तपसो) परमतेजमय परमेश्वर से (ऋतं) ज्ञान एवं (सत्य) प्रकृति की उत्पत्ति हुई। इसी से परमाणुओं से व्याप्त आकाश की उत्पत्ति हुई। परमाणुओं से परिपूर्ण आकाश में क्षोभ (Motion) होने के बाद नक्षत्रों (Stars) सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि की उत्पत्ति हुई।[2] परमेश्वर एवं प्रकृति से आत्मा और उससे आकाश (Space) उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि अग्नि से जल तत्व और जल तत्व से पृथ्वी की उत्पत्ति

हुई। पृथ्वी से औषधियों की और वनस्पतियों से अन्य जीवों का विकास हुआ।[3]

संक्षिप्त रूप में हम वैदिक काल से पुराण काल तक के ब्रह्माण्ड के निर्माण से सम्बन्धित संकल्पनाओं को निम्न चार वर्गों में बाँट सकते हैं।[4]

(अ) कलात्मक विधि

(ब) यान्त्रिक विधि

(स) दार्शनिक विधि।

(द) उपकरण विधि

(अ) कलात्मक विधि :-

परमात्मा महान शिल्पी है। विभिन्न देवता परमेश्वर के ही रूप हैं।[5] परमेश्वर ने विभिन्न देवताओं के सहयोग से ब्रह्माण्ड का निर्माण किया। विश्वकर्मा मुख्य वास्तुकला विद थे।[6] विष्णु,वरुण ,इन्द्र आदि ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नापा और निरीक्षण किया।[7] यह ब्रह्माण्ड एक गृह के समान है जिसके निर्माण के सम्बन्ध में ऋग्वेद ने विभिन्न अवस्थाओं को बताया है।[8] विश्व धूलि ब्रह्माण्ड निर्माण का आद्य पदार्थ रही है।[9] इस प्रकार विश्वकर्मा द्वारा जिसे विष्णु भी कहा है- पृथ्वी अन्तरिक्ष और ~~द्युवलोक~~ द्युलोक ,नक्षत्र, सूर्य चन्द्र आदि का तथा देवताओं,असुरों, मनुष्यों और सभी जीव जन्तुओं एवं निर्जीव पदार्थों का निर्माण हुआ।[10]

(ब) यान्त्रिक विधि -

सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति आदि पुरूष से हुई। आदि पुरूष के सहस्त्रों सिर, सहस्त्र आँखें और सहस्त्रों पैर थे।[11] वह विराट पुरूष ही समस्त विश्व की परम् आत्मा है। जो कि भूत एवं भविष्य में व्याप्त रहा है।[12] इस विराट पुरूष का 3पाद (3/4 भाग) स्वर्ग में अमृत रूप में विद्यमान है और एक पाद से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई।[13] आदि विराट पुरूष जो विश्व का केन्द्रक (Nucleus) है के विभाजन से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। मानस से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि ,उसकी स्वाँस से वायु की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार पैरों से पृथ्वी, नाभि से अन्तरिक्ष सिर से द्युलोक और कानों से दिशाएँ उत्पन्न हुई।[14]

(स) दार्शनिक विधि -

ऋग्वेद[15] में वर्णन किया गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में न सत् था और न असत् न आकाश था न वायु मण्डल एवं न दिन था न रात्रि थी। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (Universe) खाली था। केवल एक ब्रह्म की ही सत्ता थी जो स्वयंभू एवं शाश्वत था। इस ब्रह्म ने सृष्टि निर्माण का संकल्प किया जिससे जाज्वल्यमान[16] महाज्योति (परमतत्व) से ऋतम् * (ज्ञान) और सत्यम् (प्रकृति) की उत्पत्ति हुई।[17] तत्पश्चात आकाश बना जिसमें परमाणुओं की सृष्टि हुई। इन परमाणुओं के केन्द्र को (नाभिकों) से जो उर्जा

(शक्ति) उत्पन्न हुई उसी के स्थूल होने पर पदार्थ की रचना हुई। उपनिषद में यही बात किसी और ढंग से कही गयी है। प्रारम्भ में काल सब कुछ नष्ट कर दिया था। काल की पूजा से [18] जल की उत्पत्ति हुई जिससे यह पृथ्वी बनी। जल के दाग के कठोर होने से अधः स्तर की रचना हुई। जिस पर काल ने कठोर परिश्रम किया और अग्नि एवं प्रकाश उत्पन्न किया। आदित्य एवं वायु काल के शरीर से उत्पन्न हुए। छान्दोग्य उपनिषद[19] के अनुसार प्रारम्भ में कुछ नहीं था। तत्पश्चात वः अस्तित्व (परमतत्व) में आया एवं एक अण्डे के रूप में परिवर्तित हुआ। यह अंडा दो भागों में बँटा एक भाग चाँदी और दूसरा भाग स्वर्ण में परिणत हो गया। चाँदी के भाग से पृथ्वी एवं स्वर्ण के भाग से आकाश बना। अंडे की मोटी एवं पतली झिल्लियों से क्रमशः पर्वत एवं बादल बने। छोटी नसों से नदियों एवं द्रव पदार्थ से समुद्रों का आविर्भाव हुआ।

(द) उपकरण विधि-

शाश्वत स्वयं भू परमात्मा[20] ने ब्रह्माण्ड की रचना हेतु सर्वप्रथम प्रजापति को उत्पन्न किया। ऋग्वेद में प्रजापति को हिरण्यगर्भ के रूप में बताया गया है। [21] सर्वत्र व्याप्त प्रजापति के तेज से द्युः (Heaven) तथा पृथ्वी की रचना हुई।[22] द्युः लोक में आदित्य (Sun) की उत्पत्ति हुई और पृथ्वी लोक में अग्नि,वायु,सोम जल आदि की सृष्टि हुई।[23]

उपर्युक्त सभी ब्रह्माण्ड विषयक परिकल्पनाओं के केन्द्र में दो बातें मुख्य हैं:

1- सृष्टि के प्रारम्भ में केवल जल की ही सत्ता थी।

2- प्रजापति[24] ही ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति का नाभिक (Nucleus) था।

3- इस नाभिक को हिरण्यगर्भ आदि नामों से व्यवहृत किया गया तथा यह कल्पना की गयी कि सृष्टि के आदि में रूप में प्रशान्त उर्जा रही होगी जिसे कि आद्य पदार्थ की संज्ञा दी जा सकती है। इसी सुप्त उर्जामय स्वरूप को ब्रह्माण्ड रचना का आदि कारण माना गया। इसी पदार्थ से ही नक्षत्रों, निहारिकाओं एवं सौरमण्डल आदि की रचना हुई।

ऋग्वेद के ब्रह्माण्ड विज्ञान की परिकल्पना आध्यात्मिक (Prychic) योग सिद्ध से अन्तःप्रज्ञा (Intution) के आधार पर स्थित है जो आज के भौतिक प्राविधिक (physico-technological) विविध यंत्रों और उपकरणों की सहायता से वेधशालाओं (Laboratoris) और परीक्षणशालाओं (Observateries) से परे है। परन्तु आज भी यह विश्वसनीय न होते हुए भी विचारणीय तो है ही।

2·1·1 बाल्मीकि रामायणिक संकल्पना-

बाल्मीकि रामायण में ब्रहमाण्ड के उत्पत्ति से सम्बन्धी विचार अयोध्याकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड में वर्णित है। अयोध्याकाण्ड में महर्षि वशिष्ठ

ने रामचन्द्र जी से "इमां लोक समुत्पत्ति लोकनाथ निबोध मे" [2·110·2] द्वारा लोक की उत्पत्ति की व्याख्या की है।[25]

सर्वं सलिलमेवासीत् पृथ्वी तत्र निर्मिता

ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयं भू वर्दैवतैः सह।।3।।

स वराह स्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम।

असृजच्च जगत् सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः।।4।।

[सृष्टि के आदि में सब कुछ जल ही था। उसी में से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई और फिर देवताओं के साथ स्वयंभू ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उसके बाद विष्णु स्वरूप ब्रह्म ने ही वराहरूप से प्रकट होकर जल के भीतर से इस पृथ्वी को निकाला और अपने कृतात्मा पुत्रों के साथ सम्पूर्ण जगत की सृष्टि की। उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि

1- वैदिक कालीन संकल्पना की ही तरह जल से सृष्टि की उत्पत्ति मानी गयी है।

2- जीवों में सर्वप्रथम वराह अथवा सूकर की उत्पत्ति हुई जो परोक्ष रूप से डार्विन के "विकास वादी सिद्धान्त की ओर स्पष्ट संकेत है।

3- सृष्टि की उत्पत्ति सत् और असत्* [शून्य या आकाश] से हुई।

उत्तरकाण्ड के 104 वे सर्ग में सृष्टि की उत्पत्ति को इस प्रकार समझाया गया है।

प्रारम्भ में अर्थात् हिरण्यगर्भ[26] की उत्पत्ति के समय माया द्वारा आप से ही उत्पन्न मुझे सर्वसंहारकारी काल कहते हैं।" वह काल राम से कहता है कि प्रजापति ब्रह्मा ने बताया है कि "पुराणकाल में समस्त लोकों को माया द्वारा अपने में लीन करके आपने (परमेश्वर) महासमुद्र के जल में शयन किया था। फिर इस सृष्टि से प्रारम्भ में मुझे उत्पन्न किया। इसके बाद विशाल फण और शरीर से युक्त एवं जल में शयन करने वाले "अनन्त" संज्ञक नाग को प्रकट करके आपने मधु एवं कैटभ नामक दो महाबली जीवों को जन्म दिया। इन्हीं के अस्थि समूहों से भरी हुई यह पर्वतों सहित पृथ्वी प्रकट हुई, जो मेदिनी कहलाई।[27] आपकी नाभि से सूर्य तुल्य तेजस्वी दिव्य कमल प्रकट हुआ जिसमें आपने मुझको भी उत्पन्न किया और सृष्टि रचने का सारा कार्य भार मुझे सौंप दिया।[28] तब मैंने (ब्रह्मा ने) आप जगदीश्वर (परमतेजमय स्वरूप) की उपासना करके आपसे प्रार्थना की "प्रभो" आप सम्पूर्ण भूतों में रहकर उनकी रक्षा कीजिए। क्योंकि आप ही मुझे तेज (ज्ञान और क्रिया शक्ति) प्रदान करने वाले हैं।[29] तब आप मेरा अनुरोध स्वीकार करके प्राणियों की रक्षा के लिए अपरिमेय सनातन पुरुष (जगत्पालक विष्णु) रूप में प्रकट हुए।[30]

उपर्युक्त विवरण से निम्न बातें ज्ञात होती हैं।

1- सृष्टि का निर्माण और विकास क्रमिक है।

2- सृष्टि के आदि में जल ही जल था।

3- सृष्टि का आदि स्त्रोत ब्रह्मा है जिससे सम्पूर्ण लोकों की उत्पत्ति हुई।

4- जल में शयन करने वाले "अनन्त" फण वाले शेष नाग की उत्पत्ति ब्रह्माण्ड के अनन्त लोकों की उत्पत्ति की ओर संकेत करता है।

5- पृथ्वी का निर्माण कठोर पदार्थ (मधु और कैटभ के अस्थि समूह) से हुआ है।

6- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परम तेजमय पदार्थ से परिव्याप्त है।

जल से अभिप्राय यहाँ सामान्य जल से नहीं है बल्कि उस आद्य पदार्थ से है जो शून्य में विद्यमान था एवं जिसके छोटे-छोटे अणुओं से सृष्टि की उत्पत्ति हुई।[31] इस आद्य पदार्थ के भीतर एक तेजपुंज (Energy) था जिससे ब्रह्मा की* (जिसे वेदों में हिरण्यगर्भ कहा गया है) उत्पत्ति हुई जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का स्त्रोत है एवं जो आज भी ऊर्जा के रूप में प्रवाहित हो रहा है।

अनन्त फनवाले शेष नाग के सम्बन्ध में पण्डित जगन्नाथ भारद्वाज ने अपनी पुस्तक"भारतीय खगोल विज्ञान" के पृष्ठ 71 और पृष्ठ 72 में बताया है कि सूर्य और मण्डल सहित अभिजित नक्षत्र की ओर बढ़ रहा है। उसका मार्ग सीधा न होकर टेढ़ा मेढ़ा है जिसकी तुलना शेष नाग के शरीर से की जा सकती है। सौरमण्डल शेष नाग का फण है* ग्रहों की संख्या एक से अधिक होने के कारण शेष नाग को अनन्त बताया गया है। वैज्ञानिक पक्ष

में दो पिण्डों के परस्पर आकर्षण को संयुक्त आकर्षण या संकर्षण (म्युचुअल ग्रेविटेशन) कहते हैं।[32]

भगवान केयोगनिद्रा के वशीभूत हो शयन करते समय मधु नाम का महान असुर उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् उसी के साथ रजोगुण से युक्त कैटभ भी उत्पन्न हुआ। उसकी छाती मोटी और भुजाएं लम्बी थीं, उनका शरीर विशाल पर्वतके समान था। दोनों रजोगुण एवं तमोगुण से युक्त थे।[33] इससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म (तेजपुंज) के शरीर के मैल से मधु कैटभ (ठोसपदार्थ) की उत्पत्ति हुई जिससे पृथ्वी प्रभृति ग्रह अस्तित्व में आये आज के वैज्ञानिक भी सूर्य की उत्पत्ति तप्त निहारिका से मानते हैं एवं सूर्य से निकले फिलामेण्ट से ग्रहों एवं उपग्रहों की उत्पत्ति बताते हैं।

2·2 ब्रह्माण्ड का आकार-

ब्रह्माण्ड में जल की विभिन्न धाराएँ हैं[34] इसमें पक्षी, गान विद्या के आचार्य तुम्बरु आदि गन्धर्वों के विचरण का स्थान है।[35] ऐरावत (एक विशिष्ट हाथी) के आने जाने का मार्ग है।[36] महाभाग पुण्यात्मा पुरुषों का निवास स्थान[37] ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और तारे आभूषण के समान इसे सजाते हैं।[38] एवं यह जीव जंगल के लिए विमल वितान है (चंदोवा) है। साक्षात् परम ब्रह्म ने इसकी सृष्टि की है।[39]

2· उपर्युक्त वर्णन से ब्रह्माण्ड के विस्तार के बारे में संकेत मिलता है एवं यह तथ्य भी ज्ञात होता है कि इसकी रचना स्वयं परमात्मा ने की है।

2·2। ब्रह्माण्ड के विभाग-

वैदिक कालीन लोग ब्रह्माण्ड के विभिन्न भागों के विषय में जानते थे। इसी प्रकार रामायण काल के लोग भी कई लोकों के बारे में अवगत थे।[40] इनमें तीन इलाकों की चर्चा मुख्य है। गंगा को त्रिपथगा कहा गया है जो क्रमश: अन्तरिक्ष(खलोक),सुरलोक(देवलोक) विपाषा(पताल लोक) में बहती है।[41] एक अन्य जगह द्यु, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी लोक की भी चर्चा की गयी है (द्यौरन्तरिक्षं पृथिवी)[42] इन लोकों के अतिरिक्त देवलोक ,गन्धर्व लोक,गोलोक, ब्रह्मलोक आदि अन्य लोकों का उल्लेख मिलता है।[43] इन लोकों के ऐश्वर्य एवं समृद्धि की चर्चाएँ स्थान-स्थान पर मिलती हैं।[44] इस प्रकार ब्रह्माण्ड के विस्तार को मुख्यत: 3 भागों में विभाजित किया गया है। पुराणो में भी इन 3 भागों (भू= पृथ्वी, भुव: = अन्तरिक्ष एवं स्व: = द्युलोक) का उल्लेख मिलता है।[45] रामायण में लक्ष्मण[46] के द्वारा ब्रह्माण्ड को कई लोकों में बाँटने का संकेत मिलता है जबकि पुराण 7 उच्च लोक एवं 7 निम्न लोकों की चर्चा करते हैं।[47]

उच्च लोक

1· भू
2· भुव:
3· स्व:
4· मह:
5· जन:
6· तप:
7· सत्य

निम्नलोक

1. अतल
2. वितल
3. नितल
4. गभस्तमान
5. महातल
6. सुतल
7. पाताल

2.3 तारामण्डल-

मनुष्य आदि काल से ही ताराओं से भरे हुए आकाश को देखता आ रहा है। उसे उनमें लाल, पीले एवं अन्य कई रंगों के तारे अकेले एवं युगल रूपों में प्रकाशित होते दिखायी पड़ते हैं। रामायणकालीन लोग, तारे, नक्षत्र, चन्द्रमा तथा बड़े-बड़े ग्रहों से युक्त समस्त आकाश मण्डल को घूमता हुआ मानते थे।[48] चन्द्रमा को ताराओं एवं नक्षत्रों का स्वामी कहा गया है।[49] आकाश में विद्यमान तारा एवं नक्षत्र तप के द्वारा अर्जित पुण्य के प्रभाव से स्थित होकर चमकते हैं एवं पुण्य क्षीण होने पर पुनः पृथ्वी लोक पर चले आते हैं। जैसे राजर्षि त्रिशंकु अपने पुरोहित वशिष्ठ जी के साथ निर्मल क्रान्ति से प्रकाशित होते हैं।[50] उत्तर में स्थित ध्रुवतारा सप्तर्षि गणों (ताराओं का नाम) के साथ प्रकाशित होता है।[51] तारे रात्रि में चन्द्रमा के साथ उदित होते हैं।[52] शरद ऋतु में ताराओं का प्रकाश बढ़ जाता है[53] तारे आकाश से टूटते भी हैं[54] चन्द्रमा की अनुपस्थिति में तारों का प्रकाश बढ़ जाता है और तब आकाश तारों से ही प्रकाशित होकर सुशोभित होता है।[55]

2·3। नक्षत्र मण्डल-

भारतीय खगोल शास्त्रियों ने समूचे सौर वर्ष को नक्षत्रों के अनुसार 27 उप भागों* में बांटा है प्रत्येक भाग $13^{0}20"$ का होता है रामायण में विभिन्न नक्षत्रों का उल्लेख उनकी शुभाशुभ स्थिति के आधार पर किया गया है। जैसे विशाखा नामक युगल नक्षत्र आर्द्र व शून्य होकर प्रकाशित हो रहा है।[56] पुष्य नक्षत्र,जो पुनर्वसु के बाद आता है,मंगलमयी होता है इसी प्रकार उत्तरा फाल्गुनी एवं हस्त नक्षत्रों की चर्चा की गयी है।[57]

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त बाल्मीकि रामायण में खगोल शास्त्र के विभिन्न विषयों विशेषकर तारामण्डलों की स्थिति आकार एवं परिभ्रमण पथ आदि के बारे में अनेक जानकारी उपलब्ध कराई गयी है। इन तत्वोंको परख में सबसे बड़ी कठिनाई इस बात से आती है कि कवि ने इन विवरणों को सीधे न कहकर इसके लिए प्रतीकों,तुलनाओं,श्लेषों आदि का प्रयोग किया है जिससे इनको परख कठिन हो जाती है। जायस वाल एवं तिवारी ने अपने रामायण सम्बन्धी तीन लेखों में यह बताने का प्रयास किया है कि बाल्मीकि को वर्तमान ध्रुवतारा एवं उसके ईर्द गिर्द घूमने वाले तारामण्डलों-थुवन जो आज से ~~3000~~ 5000 वर्ष पूर्व ध्रुवतारा के स्थान पर था एवं आर्कटिक क्षेत्र के आकाश में उदित होने वाले विभिन्न तारा समूहों-का सूक्ष्म ज्ञान था।ऐसे विवरण कवि ने प्रतीकों के माध्यम से देने का प्रयास किया है।

---

* अश्विनी,भरणी,कृत्तिका,रोहणी,मृगशिरा,आर्द्रा,पुनर्वसु,पुष्य,आश्लेषा, मघा,पूर्वाफाल्गुनी,उत्तराफाल्गुनी,हस्त,चित्रा,स्वाती,विशाखा,अनुराधा, ज्येष्ठा,मूल,पूर्वाषाढ़,उत्तराषाढ,श्रावण ,धनिष्ठा,शतभिष,पूर्वभाद्रपद,उत्तर भाद्रपद,रेवती।

2·4 सौर मण्डल-

सौर मण्डल से तात्पर्य सूर्य के चारो तरफ घूमने वाले खगोलीय पिंडो से है । सौर मण्डल में सूर्य स्वामी हैं, जबकि ग्रह,उपग्रह,धूमकेतु,क्षुद्रग्रह, उल्का पिण्ड आदि उसके अनुचर है तथा उसके चतुर्दिक चक्कर काटते रहते हैं।

रामायण काल में सौरमण्डल के विषय में विस्तृत एवं स्पष्ट संकल्पनाएँ प्रस्तुत की गयी है। परन्तु तत्कालीन लोगों की विचारधाराएं आधुनिक मतों से मेल नहीं खाती है। ये विचार धाराएं पृथ्वी को केन्द्र में और अन्यग्रहों उपग्रहों को उसके चारों ओर घूमता हुआ मानती थी। रामायण में यही कारण है कि सूर्य के उदयाचल से उदित होने[59] एवं अस्ताचल में अस्त[60] होने की बात बार-बार कही गयी है।

2·41 उल्का-

आकाश में कभी-कभी कुछ ज्वलनशील पिण्ड टूटते हुए दिखायी पड़ते हैं जिन्हे उल्का कहते हैं। रामायण में रोहिणी ग्रह पर बड़े भारी उल्कापात का उल्लेख किया गया है।[61] उल्काएं तेज आवाज के साथ पृथ्वी पर गिरते हैं[62] रामायणकालीन लोगों का ऐसाविश्वास था कि जब पुण्यशाली जनों का जो अपने पुण्य के प्रभाव से आकाश में नक्षत्रों की भाँति स्थित होते है। पुण्यक्षीण हो जाता है तो वह उल्काओं के रूप में पुनः पृथ्वी पर गिर जाते हैं।[63] दिन में भयंकर उल्काओं का गिरना अपशकुन माना जाता है।[64]

2·42 धूमकेतु या पुच्छल तारा-

धूमकेतु एक खगोलीय पिण्ड है जो सूर्य के परितः चक्कर काटता है। यह सौरमण्डल का एक अवयव है। यह एक गैसीय पिण्ड है जिसका केन्द्रक कठोर होता है एवं जिसकी एक लम्बी पूँछ होती है जो इसे अन्यतारों या ग्रहों से भिन्न अस्तित्व प्रदान करती हैं।

वैदिक काल में धूमकेतु के बारे में आर्यों को जानकारी थी।[65] मनुस्मृति में धूमकेतु के मुख्य लक्षण दिये गये हैं।[66] वाल्मीकि रामायण में यद्यपि धूमकेतु के लक्षणों का उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु धूमकेतु के आगमन की बात बार-बार बतायी गयी है एवं इसके उदय को महान अनिष्टकारी बताया गया है।

2·5 सूर्य एवं ग्रह-

रामायणकालीन लोग पृथ्वी को केन्द्र में स्थिर मानते थे जिसके चतुर्दिक सूर्य एवं अन्य ग्रह उपग्रह घूम रहे हैं।

सूर्य आग का, एक जलता हुआ गोला है जो मेरुपर्वत (उदयाचल) से उदित होकर[67] पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ पश्चिम में अस्ताचल में अस्त होता है[68] इसके चारो ओर अलातचक्र की भाँति गोलाकार घेरा दिखायी देता है जिसका रंग काला और किनारे का रंग लाल होता है।[69] सूर्य की किरणे बड़ी दुर्धर्ष होती हैं जिससे वाष्पीकरण में सहायता मिलती है[70]।

इन किरणों का रंग लाल, पीला, सफेद तथा काला होता है।[71] सूर्य ऊर्जा का अक्षय स्रोत है।[72] जिसके बिना धरातल पर जीवन सम्भव नहीं है। सूर्य तेज की राशि हैं तथा अपनी किरणों से जगत की सत्ता एवं स्फूर्ति प्रदान करते हैं। ये ही अपनी रश्मियों का प्रसार करके देवता और असुरों सहित सम्पूर्ण लोकों का पालन करते हैं।[73] ये ही विष्णु, शिव, स्कन्द, प्रजापति, इन्द्र कुबेर, काल, यम, चन्द्रमा, वरुण, पितर, वसु, साध्य, अश्विनी कुमार, मरुद्गण, मनु, वायु, अग्नि, प्रजा, प्राण, ऋतुओं को प्रकट करने वाले तथा प्रभा के पुन्ज हैं[74]। सूर्य को रामायण में कई नामों से व्यवहृत किया गया है।[75] जिनमें आदित्य (अदितिपुत्र) पिता (जगत को उत्पन्न करने वाले), सूर्य (सर्वव्यापक), खग (आकाशमान) भानु (प्रकाशक), हिरण्यरेता (ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के बीज) दिवाकर (रात्रि का अन्धकार दूर करके दिन का प्रकाश फैलाने वाले) हरिदश्व (दिशाओं में व्यापक अथवा हरे रंग के घोड़े वाले) सहस्रार्चि (हजारों किरणों से सुशोभित) सप्तसप्ति (सात घोड़ो वाले) आदि प्रमुख हैं।

सारणी 2·1

सूर्य के नाम	सामान्य अर्थ
मरीचिमान	किरणों से सुशोभित
तिमिरोन्मथन	अन्धकार का नाश करने वाले।
शम्भू	कल्याण के उद्गम स्थान
त्वष्टा	भक्तों का दुःख दूर करने वाले जगत का संहार करने वाले

मार्तण्डक	ब्रह्माण्ड को जीवनप्रदान करने वाले
अंशुमान	किरण धारण करने वाले
हिरण्यगर्भ	ब्रह्मा
शिशिर	स्वभाव से ही सुख देने वाले
तपन	गर्मी पैदा करने वाले
अहस्कर	दिनकर
रवि	सबके स्तुति के पात्र
अग्निगर्भ	अग्नि को गर्भ में धारण करने वाले
शिशिनाशक	शीतलता का नाश करने वाले
व्योमनाथ	आकाश के स्वामी
तमोभेदी	अन्धकार को नष्ट करने वाले
धनवृष्टि	धन की वृष्टि करने वाले
अपांमित्र	जल को उत्पन्न करने वाले
विन्ध्यवीथीप्लवंगम	आकाश में तीव्र बेग से चलने वाले
आतपी	धूप उत्पन्न करने वाले
मण्डली	किरण समूहों को धारण करने वाले
मृत्यु	मौत के कारण
पिंगल	भूरे रंग वाले

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि वेदों की भाँति रामायण में भी सूर्य को उपास्य एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है आज

भी वैज्ञानिक सूर्य को ही धरातल पर जीवन का स्त्रोत मानते हैं।

सूर्य के अतिरिक्त अन्य ग्रहों के बारे में रामायण में बहुत कम ज्ञान मिलता है।

(अ) बुद्ध ग्रह-

बालि की तुलना बुद्ध ग्रह से की गयी है।[76] रामायण में कल्पना की गयी है कि बुद्ध चन्द्रमा एवं रोहिणी का पुत्र है, रोहिणी चन्द्रमा की पत्नी है[77] एक स्थान पर बुद्ध एवं मंगल ग्रह कोटकराहट का भी उल्लेख किया गया है।[78] एक अन्य स्थान पर कई ग्रहों के साथ बुद्ध ग्रह की चर्चा की गयी है।[79]

(ब) शुक्र-

शुक्र ग्रह की चर्चा रामायण में केवल दो बारीमलती है।[80]

रामायणकालीन लोग सौरमण्डल के विभिन्न ग्रहों का नाम जानते थे परन्तु उनमें इन ग्रहों के बारे में वैज्ञानिक जानकारी का सर्वथा अभाव था। यही कारण है कि इन ग्रहों के आकार, विस्तार आदि का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है।

(स) मंगल-

बुद्ध एवं मंगल ग्रहों का वर्णन रामायण में साथ-साथ मिलता है एवं योद्धाओं से की उनकी तुलना लड़ते हुए योद्धाओं से की गयी है[81] धरातल के प्राणियों पर इसके अनिष्टकारी प्रभावों का भी यत्रतत्र उल्लेख मिलता है।[82]

(द) गुरु (बृहस्पति)-

बृहस्पति ग्रह का उल्लेख कई ग्रहों के साथ[83] एवं अकेले भी किया गया है।[84] एक स्थल पर तो गुरु और बृहस्पति को अलग-अलग माना गया है।[85]

(य) शनिग्रह-

शनि ग्रह का उल्लेख रामायण में बार-बार हुआ है। रावण को शनिग्रह के समान बताया गया है।[86] जिससे इस ग्रह की क्रूरता एवं अनिष्टकारी प्रभाव की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है अन्यत्र कई अन्य ग्रहों के साथ भी शनि का उल्लेख मिलता है।[87]

(र) चन्द्रमा-

चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है। अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण यह पृथ्वी वासियों के लिए सदा ही आकर्षण का केन्द्र रहा है। चन्द्रमा सदा एक दशा में नहीं रहता है कभी यह छोटा तो कभी बड़ा होता रहता है। इसी कारण इसके प्रकाश में भी परिवर्तन होता रहता है।

वाल्मीकि रामायण में चन्द्रमा के विभिन्न नाम बताये गये हैं। निशाकर (7·23·22,4·60·81), शशांक (5·55·20)·उडुपति: (5·9·41), शशि (3·41·16) चन्द्र: (1·50·20)सोम (2·15·21)

चन्द्रमा की उत्पत्ति के विषय में वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में उल्लेख मिलता है। चन्द्रमा की उत्पत्ति सुरभि देवी से हुई है[88]जिसके

दूध से ही क्षीरसागर भरा हुआ था।[89] यह कल्पना वास्तव में भागवत की कथा समुद्र मन्थन की ओर इंगित करती है। जिसमें चन्द्रमा की उत्पत्ति क्षीरसागर से हुआ माना गया है। इस परिकल्पना की सत्यता इस बात में निहित है कि आज भी बहुत से वैज्ञानिक चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से मानते हैं जिसके उपग्रह के रूप में यह अन्तरिक्ष में विद्यमान है।

चन्द्रमा में विद्यमान काले धब्बों के सम्बन्ध में रामायण में एक कथा का उल्लेख है जिसके अनुसार महर्षि गौतम ने क्रुद्ध होकर मृगछाला से चन्द्रमा को मारा था जिसके कारण उसमें धब्बे पड़ गये।[90] यह कल्पना वैज्ञानिकता कीकसौटी पर सही नहीं उतरती क्योंकि वैज्ञानिकोंके अनुसार चन्द्रमा के धब्बे उसके तल पर स्थित ज्वालामुखी शंकुओं के अवशेष हैं जिसकी पुष्टि अन्तरिक्ष यात्राओं के दौरान हो चुकी है। इसीप्रकाररामायण में चन्द्रमा सुन्दर एवं आकर्षक बताया गया है जबकि वास्तविकता में उसकी सतह अत्यन्त उबड़ खाबड एवं रूक्ष है। चन्द्रमा में स्वयं का प्रकाश नहीं है किन्तु रामायण कालीन लोग इसे स्वयं प्रकाशित मानते थे।

2·6 ग्रहण-

{अ} सूर्यग्रहण-

जब चन्द्रमा पृथ्वी एवं सूर्य के बीच आ जाता है तो सूर्य का कुछ भाग पृथ्वी से दिखायी नहीं पड़ता है जिसे सूर्यग्रहण के नाम से जाना

जाता है। रामायण में सूर्यग्रहण की चर्चा कई स्थलों पर की गयी है लेकिन सभी जगह सूर्य ग्रहण का कारण राहु का सूर्य को ग्रसना बतायागया है।[91] सूर्यग्रहण के बाद सूर्य का तेज क्षीण हो जाता है[92] सूर्य ग्रहण अमावस्या को लगता है।[93]

(ब) चन्द्र ग्रहण-

जब पृथ्वी सूर्य एवं चन्द्रमा के बीच आ जाती है तो वह चन्द्रमा तक पहुँचने वाले सूर्य के प्रकाश को अवरूद्ध कर लेती है जिससे चन्द्रग्रहण उत्पन्न हो जाता है। वाल्मीकि रामायण में चन्द्रग्रहण के उद्‌भव में राहु एवं केतु को ही कारण बताया गया है। ऐसी कल्पना की गयी है कि राहु चन्द्रमा को ग्रसता है[94] चन्द्रमा को राहु का मुक्त करना ग्रहण की समाप्ति होती है।[95] चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को ही लगता है।[96] रामायण में चन्द्र ग्रहण की चर्चा अनेकों जगहों पर की गयी है।[97] चन्द्र एवं सूर्यग्रहण में राहु एवं केतु जैसे असुरों की बातें कोरी कल्पना नहीं है। ग्रहणों के वैज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि चन्द्रमा एवं पृथ्वी के अक्ष के झुकाव के विभन्न होने के कारण हर पूर्णिमा एवं अमावस्या के चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण नहीं लग पाता। वास्तव में राहु एवं केतु उन सूक्ष्म बिन्दुओं को दिखाते हैं जिनपर स्थित होने पर ग्रहण की परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं। इसीप्रकार चन्द्रमा एवं सूर्य के व्योम मार्ग को 27 राशियों में बाँटकर एवं उनके आधार पर विभिन्न तारा समूहों की स्थिति का निर्धारण अपने में एक स्तुत्य प्रयास है जिसे अवैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है।

2.6 पृथ्वी की संकल्पना-

वाल्मीकि रामायण में पृथ्वी से सम्बन्धित विभिन्न परिकल्पनाएं की गयी हैं जिनसे इसकी उत्पत्ति ,आकार एवं आन्तरिक संरचना पर प्रकाश पड़ता है।

§अ§ पृथ्वी की उत्पत्ति-

पृथ्वी की उत्पत्ति सम्बन्धी परिकल्पना अयोध्याकाण्ड [98] औरउत्तरकाण्ड [99] में बतायी गयी है। जिसमें सम्पूर्ण लोकों के साथ ही पृथ्वी की उत्पत्ति का संकेत मिलता है। रामायण में प्राप्तविवरणों से यह ज्ञात होता है कि पृथ्वी की उत्पत्ति तप्त निहारिका से हुई जो आज के वैज्ञानिक विचारधाराओं से मेल खाता है। इसकी विस्तृत चर्चा इसी अध्याय के"ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति" वाले शीर्षक में की जा चुकी है।

§ब§ आकार-

रामायण में सूर्य को पृथ्वी के समान ही आकारवाला बताया गया है[100] । कोरी दृष्टि से देखने पर सूर्य काआकार गोलादिखायी देता है अतः पृथ्वी की आकृति भी गोल होगी। अन्यत्र पृथ्वी को गाय के खुर एवं अलातचक्र के समान बताया गया है।[101] इससे भी इसके गोल आकृति की पुष्टि हो जाती है।

आन्तरिक्ष से पृथ्वी को देखने पर पृथ्वी का जैसा स्वरूप दृष्टगत होता है वैसा ही चित्र रामायण में भी बताया गया है। अन्तरिक्ष से पृथ्वी

के भिन्न-भिन्न नगर रथ के पहिये के समान [102] ,जंगल हरी भरी घास की तरह [103], पर्वत बिछे हुए पत्थर के समान[104] ,तथा नदियां लिपटे हुए धागे के समान प्रतीत होती है।[105] हिमालय, मेरु और विन्ध्य पर्वत तालाब में खड़े हुए हाथियों के समान मालूम होते हैं।[106]

(ख) पृथ्वी की आन्तरिक संरचना-

रामायण में पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के सम्बन्ध में दो स्थलों पर संकेत मिलता है। प्रथम, सगर के पुत्रों द्वारा पृथ्वी को खोदने के समय जिससे यह पता चलता है कि पृथ्वी के अन्दर ताप है जिसके कारण ही सगर के साठ हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये थे।[107] द्वितीय स्थल समुद्र मन्थन [108] का है जहां निम्न कथा का उल्लेख है:-

देवता और असुर मिलकर क्षीरसागर का मन्थन करने लगे उस समय मथानी बना हुआ उत्तम मन्दरपर्वत पाताल के अन्दर घुस गया। तत्पश्चात् हृषीकेश ने कच्छप का रूप धारण कर मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारणकर वहीं समुद्र में सो गये। पृथ्वी की आन्तरिक संरचना सिआल,सीमा और नीफे स्तर के रूप में मानी जाती है। सीआल,सीमा पर तैर रहा है। रामायण में मन्दराचल (सीआल) कच्छप के पृष्ठ भाग (सीमा) पर स्थित था तथा जिसके नीचे विभिन्न भारी खनिजों का मिश्रण नीफे विद्यमान था।

संदर्भ

1· जैन, एस०एम० ﴾1985﴿ भौगोलिक चिन्तन एवं विधितंत्र,साहित्यभवन, आगरा पृ० 130

2· ऋग्वेद 10·190·31

3· तैत्तरीय उपनिषद्-ब्रह्मानन्द बल्ली,अनुवाक -1

4. Ali, S.M. (1966): Geography of Puranas, People Publishing House, New Delhi P. 184

5. (b) Dubey , R (1967): Geographical concepts in Ancient India, N.G.S.I., Varanasi , P.1

5. Op.cit.,fn. 2, 1.121.7

6. Ibid 1.22.27, 10.27.6

7. Ibid 1155.1 ,5.55.5

8. Op.cit.,fn, 4 (a),P. 196

9. Op.cit.,fn, 10., 31.82

10. Ibid 1.12.17

11. अथर्ववेद 19·6

12. Op.cit.,fn. 2,90.2

13· यजुर्वेद 31·2

-अथर्ववेद 13·1·54

13· शुक्ल यजुर्वेद पुरुष सुक्त मन्त्र 3

14. Op.cit.,fn.2,10.13.14

15. Ibid 12

16. Op.cit.,fn. 4(a), P.186

17. Op.cit.,fn. 2.. 10.90.3

18. बृहदारण्यक उपनिषद् 1·2·153

19. छान्दोग्योपनिषद 6·32·2

20. यजुर्वेद, 40·8

21. Op.cit.,fn. 2, 10.121.7.

22. Ibid 10. 121.7

23. Ibid

24. Ibid

25. वाल्मीकि रामायण 7·104·56,गीताप्रेस,गोरखपुर

26. गीताप्रेस की व्याख्या में पूर्वकाल में हिरण्यगर्भ को माना गया है।

27. Op.cit. fn, 25, 7.104.5 -6

28. Ibid 7.104.7

29. Ibid 7.104.8

30. Ibid 7 .104.9

31. Mehta D.D. (1974) Positive Science in the Vedas Arnold Henemann Publishers , India Private Limited 1974 P.P.96-97

32. कल्याणवर्ष 55 जून अंक 6,गीताप्रेस गोरखपुर ।

33. कल्याण मत्स्यपुराणांक वर्ष 59,अंक । गीताप्रेस गोरखपुर पृ0702

34. Op.cit.,fn.25,5.1.174

35. Ibid 5.1.174

36. Ibid

37. Ibid

38. Ibid 5.1.177

39. Ibid 5.1.179

40. Ibid 1.36.13

41. Ibid 1.35.12 & 1.35.23.24

42. Ibid 2.25.13

43. Ibid 2.30.37

44. Ibid 2.31.5

45. वायुपुराण 49·150·50,75,79

46. Op.cit.,fn.25 ,2.315

47. विष्णुपुराण 11·15,वायु पुराण 50·75-84

48. Op.cit.,fn.25,6.77.8

49. Ibid 5.9.41

50. Ibid 6.4.49

51. Ibid 5.4.48

52. Ibid 4.34.4

53. Ibid 4.30.28

54. Ibid 4.2.1.1.

55. Ibid 2.9.66.

57. Ibid 6.4.51

58. Jaiswal and Téwari (1977: Valmiki Knowledge of the Nothern world: A geographical Treatise on Ramayan, National Geographer, Vol XII, No.1 P.57-86.

----- Eastern world, National Geographer, Vol XIII P. 13.34.

----- Western World, National Geographer, Vol XV No.1 P. 67-82

59. Op.cit., fn. 25, -2.4.51

60. Ibid 1.13.14-15

61. Ibid 3.18.17

62. Ibid 3.23.15

63. Ibid 5.9.42.

64. Ibid 2.4.17

65. Op.cit., fn. 2, 1.27.11, 1.99.10

66. मनुस्मृति 1.38

67. Op.cit., fn. 25 ..6.60.58

68. Ibid....9.7.26.13

69. Ibid ...3.23.13

570. Ibdi ...5.63.15

71. Ibid ...6.106.26.

72. Ibid ...2.30.4

73. Ibid ...6. 105.7

74. Ibid...6.105.8,9

75. Ibid ...6.105.10-15

76. Ibid ...4.12.17

77. Ibid.. Page 604

78. Ibid ..2.41.11

79. Ibid ..2.41.11.

80. Ibid...2.41.11,1.18.8.10

81. Ibid...4.12.17, 6.54-28

82. Ibid...2.4.18.

83. Ibid...1.18.8.10

84. Ibid..2.25.11.

85. Ibid..1.8.8-10

86. Ibid..3.46.9.

87. Ibid...2.42.11.

88. Ibid..7.23.22

89. Ibid. ..7.23.21,

90. Ibid... 1.48.

91. Ibif. ..4.15.3,2.42.12

92. Ibid. ...2.63.2

93. Ibid..3.23.11-12

94. Ibid. 5.1.95-96

95. Ibid...5.29.7

96. Ibid...5.19.13

97. Ibid...3.27.20, 2.24.30

98. Ibid ..2.110.2-4

99. Ibid...7.104, 2-8

100. Ibid..4.6113

101. Ibid..4.46.5

102. Ibid. 4.61.5

103. Ibid. .4.61.8

104. Ibid. .4.61.8

105. Ibid..4.61.8

106. Ibid...4.61.8-9

107. Bid..1.40.30

108. Ibid. 1.4-27-29.

तृतीय अध्याय

वाल्मीकि रामायण में भूतल की संकल्पना

पृथ्वी सौरमण्डल की एक विलक्षण ग्रह है जो अनेकानेक रहस्यों को अपने उदर में छिपाए हुए है। चूँकि मनुष्य इस धरा का निवासी है एवं एक विवेकशील प्राणी है अतः उसका इन छिपे रहस्यों का पता लगाना सदा से ही उसका स्वभाव रहा है। यद्यपि साधनों के अभाव में अपनी आदिम अवस्था में पृथ्वी पर घटित होने वाली अनेक प्राकृतिकघटनाओं को वह भ्रम एवं आश्चर्य की दृष्टि से देखता रहा है जिसके लिए उसने अनेक उपहास्यास्पद कल्पनाएं भी कीं परन्तु ज्ञान के विकास एवं वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही साथ धीरे-धीरे इन रहस्यों पर से परदा उठता गया है। रामायण की रचना भारतीय इतिहास के उस काल को दिखाती है जब आर्यों ने काफी वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक प्रगति कर ली थी। यही कारण है कि रामायण में पृथ्वी एवं उसकी विभिन्न विशेषताओं के बारे में जानकारियाँ उपलब्ध होती हैं। प्रस्तुत अध्याय में रामायण में वर्णित पृथ्वी के वायुमण्डल, जलवायु, शिलाओं एवं उसके सतह पर प्राप्त विभिन्न स्थल रूपों के बारे में जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

31 भूतल का स्वरूप-

भूगोलवेत्ता भूतल की संकल्पना के विषय में मतैक्य न होते हुए भी इस बात से असहमत नहीं है कि भूतल वह सम्पूर्ण क्षेत्र है जिसमें मानव निवास करता है तथा जिसमें ऊर्जा (Energy) एवं पदार्थ (Matter)

प्रवाहित होते हैं।[1] उर्जा और पदार्थ ही भूतल के विभिन्न घटकों जैसे वायु, जल, स्थल एवं जीवों को एक दूसरे से सम्बन्धित करते हैं। भूतल के चार घटक विभिन्न तत्वों के सम्मिश्रण से बने हैं।

(अ) वायुमण्डल --- मौसम एवं जलवायु।

(ब) जलमण्डल --- जलाशय एवं समुद्र आदि।

(स) स्थलमण्डल --- शिलातंत्र, स्थलाकृतियाँ इत्यादि।

(द) जैवमण्डल --- वृक्ष, पशु एवं मानव[2]

प्रस्तुत अध्याय में हम भूतल के अन्तर्गत इन्हीं तत्वों का अध्ययन वाल्मीकि रामायण के आधार पर करेंगे।

3.11 वायुमण्डल -

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड (प्रक्षिप्त अंश) के चतुर्थ में पृथ्वी से लेकर चन्द्रमा के बीच की दूरी का आकलन कर उसे विभिन्न स्तरों में बांटने का प्रयास किया गया है।[3]

सारणी 3.1

वायुमण्डल की संरचना

वायुमण्डलीय स्तर	विस्तार (हजार कि.मी. में)	विशेषताएं
प्रथम	130	सर्वगुण सम्पन्न हंसपक्षी रहते हैं।
द्वितीय	130	आग्नेय, पक्षज एवं ब्रह्मज मेघ पाये जाते हैं।

वायुमण्डलीय स्तर	विस्तार (हजार कि०मी०)	विशेषताएं
तृतीय	130	सिद्ध एवं चारण आदि निवास करते हैं।
चतुर्थ	अज्ञात	भूत एवं विनायकगण निवास करते हैं।
पंचम	130	गंगाजी (आकाश गंगा) एवं कुमुदादि हाथी रहते हैं जो जल की बूँद टपकाया करते हैं। ये बड़े-बड़े गजेन्द्र श्री गंगा जी में विहार करके पवित्र जल बरसाया करते हैं। वहाँ सूर्य की किरणों से छटा, पवन द्वारा निर्मल और पवित्र जल गिरता है वहाँ हिम की भी वर्षा होती है।
षष्टम्	130	वहाँ गरुण जी अपने कुटुम्बियों एवं गन्धर्वों से सत्कारित हो रहा करते हैं।
सप्तम्	130	सप्तर्षिगण निवास करते हैं।
अष्टम्	130	उन महावेगवाली आकाशगंगा को पवन और आदित्य मार्ग में धारण किये हुए हैं।
नवम्	1040	यहाँ पर नक्षत्रों एवं ग्रहों सहित चन्द्रमा स्थित है।

एक अन्य जगह पर[4] वायुमण्डल विशेषकर अधोमण्डल को पक्षियों की उड़ान क्षमता के आधार पर 5उपभागों में बांटा गया है।

सारणी 3·2

विभाग	विशेषताएं
प्रथम	इसमें गौरेया एवं अन्नखाने वाले कबूतरआदि पक्षियों का प्रवेश हो सकता है।
द्वितीय	इसमें कौवे एवं वृक्ष के फल खाकर रहने वाले तोते आदि पक्षी प्रवेश कर सकते हैं।
तृतीय	इसमें चील, क्रौन्च और कुरर आदि पक्षी आते हैं।
चतुर्थ	बाज पक्षी जा सकते हैं।
पंचम	गिद्ध पक्षी उड़ सकते हैं।

पृथ्वी के वायुमण्डल के उपर्युक्त स्तरीकरण से निम्न तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

1- वायुमण्डल का यह स्तरीकरण वैज्ञानिक कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। रामायणकालीन लोग पक्षियों एवं धार्मिक मान्यताओं के आधार पर ही स्तरीकरण करते थे क्योंकि उनके पास वायुमण्डल के ऊपरी भागों के अन्वेषण के लिए उपर्युक्त साधनों का नितान्त अभाव था।

2- यह वर्गीकरण वायुमण्डल के सामान्य लक्षणों का विवेचन नहीं करता है जैसा कि आज के वैज्ञानिक परीक्षणों से जाहिर होता है।

रामायण में एक अन्य जगह §वा0रा01·47·5§ पर सात वातस्कन्धों का §1·आवह,2·प्रवह,3·संवह·4·उद्वह,5,विवह,6,परिवह, एवं 7,परावह§ का उल्लेख किया गया है जबकि अन्यत्र §वा0रा01·47·5§ ब्रह्मलोक,इन्द्रलोक एवं अन्तरिक्ष आदि लोकों का प्रसंग मिलता है। इसी प्रकार वायुमण्डल के संघटन के सम्बन्ध में महाकाव्य मौन हैं।

1- वायुमण्डल की उष्मा प्रणाली-

वाल्मीकि रामायण में सूर्य को भानु §वा0रा06·105·10§ §प्रकाशक§ एवं तपन §गर्मी पैदा करने वाला§ कहा गया है इससे यह प्रतीत होता है कि सूर्य पृथ्वी के वायुमण्डल के प्रकाश एवं गर्मी का मुख्य स्त्रोत है। सर्वतापन §वा0रा0 6·105·14§ शब्द से भी तापमान के स्त्रोत के बारे में जानकारी पर प्रकाश पड़ता है§वा0रा0 6·105·19§ सूर्य को ऋतुकर्ता §वा0रा0 6·105·9§ ऋतु परिवर्तन का कारक§ भी बताया गया है। रामायण में कुल 6 ऋतुओं §वा0रा0 2·25·9,1·18·8§ का उल्लेख हुआ है।

1· वसन्त ऋतु-

रामायण के बालकाण्ड में इस ऋतु का संकेत मिलता है§वा0रा0 1·12·1,1·13·1§ यह ऋतु चैत्र के महीने में शुरू होती है। पतझड़ की समाप्ति के बाद वृक्षों में फल एवं फूल लग जाते हैं और सब ओर मनोहर सुगंध छा जाती है।§वा0रा01§1·10,1·1·36§ इस ऋतु में शीतल वायु सुखद

प्रतीत होती है। §वा0रा04·1·32§ वसन्त ऋतु में वन की शोभा बड़ी मनोहर लगती है§वा0रा0 4·1·32§ एवं इस ऋतु में सरोवरों का जल स्वच्छ हो जाता है। §वा0रा 4·1·63·§

2·ग्रीष्म ऋतु-

इस ऋतु में ताप अधिक बढ़ जाता है §वा0रा0 2·43·21§ पृथ्वी सूर्य की गर्मी से तप जाती है§वा0रा 4·28·7§ और उसकी आर्द्रता समाप्त हो जाती है छोटी-छोटी नदियां सूख जाती हैं। §वा0रा6·83·33§ गर्मी में धूल की आंधियां एवं गर्म हवाएं चलती है§वा0रा0 4·28·15§ग्रीष्म ऋतु के उत्तरार्द्ध में आकाश में बादलों के छा जाने पर लोग बड़े प्रसन्नहो उठते हैं। §वा0रा0 2·54·26§

3· वर्षा ऋतु -

वर्षा ऋतु में जल वृष्टि होती है§2·54·27§एवं आकाश में सजलमेघ छाये रहते हैं§ वा0रा0 2·63·16§।इस ऋतु में मूसला-धार वर्षा होती है§वा0रा 2·63·18§।रामायण में किष्किन्धा काण्ड के 28 वे सर्ग में वर्षा ऋतु का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया गया है। कवि के अनुसार सूर्य द्वारा मेघ नौ मास तक धारण किये हुए गर्भ के रूप में जल रूपी रसायन को जन्म देता है§ वा0रा0 2·28·3§।आकाश में मेघों का सोपान दिखलायी पड़ता है §वा0रा0 2·28·4§वर्षाकाल में सायंकाल के समय मेघखण्ड मध्य में लाल और चतुर्दिक श्वेत दिखलायी पड़ते हैं§वा0रा02·28·5§।ग्रीष्म ऋतु में धूप से

तप्त हुई पृथ्वी वर्षाकाल के जल से भींगकर ठण्डी होती है [वा0रा04·28·7]। इस ऋतु में [वर्षा के समय] बहुत ठण्डी वायु चलती है वर्षा के समय बिजली चमकती है एवं मेघों का निर्घोष [गर्जन] भी होता है [वा0रा0 4·28·11-12]। बादलों के घिर जाने से दिन रात दोनों में] ग्रह,नक्षत्र एवं चन्द्रमा तिरोहित हो जाते हैं[वा0रा0 4·28·13]।जलप्लावन [अत्यधिक वर्षा] के कारण मार्ग टूट-फूट जाते हैं[वा0रा0 4·28·16] एवं पहाड़ों पर नदियों का वेग बढ़ जाता है: [वा0रा0 4·28·18]।वर्षा ऋतु में आम और जामुन के फल पक जाते हैं। बगुलों की पंक्तियां इधर-उधर विचरण करती हैं,[वा0रा04·28·20]। पर्वतों के शिखरों पर मेघों की घटा छायी रहती हैं। पृथ्वी सतह हरे भरे खेतों एवं वनों से परिपूर्ण हो जाती हैं[वा0रा0 4·28·27]इस समय धरातल पर मेंढ़क प्रगट होते हैं [वा0रा 4·28·38] एवं तालाब,सरोवर,नदी तथा सम्पूर्ण पृथ्वी जल से आप्लावित हो जाती है [वा0रा0 4;28·44]।वर्षाकाल में झंझावात भी चलते हैं[वा0रा0 4·28·45] वर्षा काल के प्रारम्भ में खेतों में बीज की बुआई की जाती है[वा0रा04·8·20]।

4· शरद ऋतु-

वर्षा ऋतु के बाद शरद ऋतु आती है । शरद ऋतु में आकाश स्वच्छ [वा0रा0 4·30·2 और 6] एवं मेघ विहीन हो जाता है[वा0रा04·30·5] इस समय झंझावात नहीं चलते हैं [वा0रा04·30·25]।पर्वतों के शिखर निर्मल हो जाते हैं [वा0रा 4·30·27] एवं नदियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। कीचड़ सूख जाता है और राजा तथा व्यापारी वर्ग क्रमशः विजय अभियान तथा

व्यापार के लिए निकल पड़ते हैं {वा0रा0 4·30·36-37}। इस समय जहरीले सर्प बिल से निकलकर धरातल पर विचरने लगते हैं {वा0रा0 4·30·44} नदियों एवं सरोवरों में जल स्वच्छ हो जाता है। वर्षा के धान्य पककर तैयार हो जाते हैं। वायु मन्दगति से चलती हैं। शरत कालीन रात्रि बड़ी ही सुहावनी होती है। चन्द्रमा अत्यन्त निर्मल दिखायी देता है। वर्षा समाप्त हो जाती है। क्रौन्च पक्षी बोलने लगते हैं एवं वनों में सरकण्डे {बाण} के फूल, खिल जाते हैं {वा0रा 4·30·56}। नदियों के तट नग्न दिखायी पड़ते हैं {वा0रा0 4·30·58}।

5· हेमन्त ॠतु-

हेमन्त ॠतु शरद ॠतु के बाद आती है {वा0रा0 3·16·1}। इस ॠतु में अधिक ठण्डक के कारण लोगों का शरीर रूखा हो जाता है। पृथ्वी पर रबी की खेती लहलहाने लगती है जल अधिक शीतल होने के कारण पीने के योग्य नहीं रहता है और आग बड़ी प्रिय लगती है {वा0रा03·16·1}। इस ॠतु में लोगों की अन्न प्राप्ति विषयक कामनाएँ प्रचुर रूप से परिपूर्ण हो जाती है एवं दूध, दही इत्यादि की भी बहुतायत होती है {वा0रा 3·16·5}। सूर्यदेव इस समय दक्षिणायन हो जाते हैं {वा0रा0 3·16·8}। हिमालय पर्वत पर हिमपात हो जाता है जिससे चोटियों पर हिम का आवरण बढ़ जाता है {वा0रा0 3·16·10·} कुहासे अधिक पड़ते हैं। कड़ाके के जाड़ा एवं पाला से पौधों के पत्ते झड़ जाते हैं एवं हिम से स्पर्श से कमल गल जाते हैं {वा0रा0 3·16·11}। शरद ॠतु की रात लम्बी होती है। लोग खुले आकाश में नहीं

सोते है पौष मास की राते हिमपात के कारण धुन्ध युक्त होती है। (वा0रा0 3·16·12)। चन्द्र मण्डल हिमकणों से आच्छन्न होकर धूमिल दिखायी पड़ता है (वा0रा0 3·16·13)। इस समय प्रकृति से ही शीतल पछुवा हवा हिमकणों के सम्पर्क से अधिक शीतल हो जाती है (वा0रा03·16·15)। यह जौ तथा गेहूँ जैसे खाद्यान्नो के बुआई का समय है (वा0रा 3·16·16)। धान पककर तैयार हो जाते हैं (वा0रा 3·16·17)।

6· शिशिर ऋतु-

इस ऋतु की चर्चा रामायण में नही की गयी है। यह फाल्गुन एवं माघ में होती है। यह हेमन्त के बाद आती है। इसमें रबी की फसलें पूर्ण विकास की अवस्था में होती हैं।

इस प्रकार बाल्मीकि रामायण का ऋतु वर्णन तथ्य पूर्ण एवं रोचक है जिसमें आज के वैज्ञानिक तथ्यों का सर्वथा अभाव नहीं है।

2- मेघ समूह-

वाल्मीकि रामायण में मेघों एवं उनके प्रकारों के बारे में स्पष्ट जानकारी दी गयी है। कवि ने नीले (वा0रा06·43·29)(वा0रा0 5·1·77) अरुण, पीले, मजीठ(वा0रा0 5·1·81) रंग के बादलों का उल्लेख किया है। एक अन्य जगह पर मेघों को तीन वर्गों में बांटा गया है[64] (वा0रा0 7·4·8)।

1. आग्नेय

2. ब्रह्मज

3. पक्षज

1. आग्नेय-

यह प्रायः अग्नि (ताप/वाष्पीकरण से) के कारण उत्पन्न होते हैं इन्हें ही हम तापीय या चक्रवातीत बादल भी कहते हैं।[5] ये बादल शीत ऋतु में उत्पन्न होते हैं एवं भैंस, सुअर तथा हाथी के आकार में पाये जाते हैं। इनमे विद्युत नहीं पायी जाती है।[6]

2. ब्रह्मज-

यह ब्रह्मा के श्वाँस के उत्पन्न होते हैं। इन बादलों के साथ बिजली एवं झंझावात आते हैं ये अपने 1 योजना (13 किमी॰) या 1½ योजन (20 किमी॰) के विस्तृत क्षेत्र पर वर्षा करते है।[7]

3. पक्षज-

ये बादल पवन सम्मुख ढाल पर उत्पन्न होते हैं। जब वाष्प से युक्त बादल वायु के दबाव से ऊपर उठा दिये जाते है और संगठित होने लगते है तो घनघोर गर्जन करते है और अत्यधिक वर्षा करते है।[8]

3- अन्य वायुमण्डलीय घटनाएं-

रामायण में वर्षा की स्वामी इन्द्र बताया गया है (वा॰रा॰ 7.86.4.5) किन्तु वर्षा के कारणों की विवेचना नहीं की गयी है।

1- हवाएँ-

हवाएँ वायुदाब में क्षैतिज भिन्नता के कारण उत्पन्न होती है। हवाएँ साधारणत: उच्च वायुदाब से भिन्न वायुदाब की ओर चलती हैं।

(अ) स्थायी हवाएँ-

रामायण में स्थायी हवाओं को एक विशिष्ट नाम "मरुत्" से सम्बोधित किया गया है (वा०रा० 1·47·3)। आकाश में इन्ही वातस्कन्धों का विस्तार है (वा०रा० 1·47·5)। इनमें प्रथम गण, ब्रह्मलोक में, दूसरे गण इन्द्रलोक में एवं तीसरे गण दिव्य वायु के नाम से द्युलोक में प्रवाहित होते हैं (वा०रा० 1·47·5) और शेष चारों दिशाओं से बहते हैं (वा०रा० 1·47·6)।

(ब) स्थानीय हवाएँ-

स्थानीय हवाओं का विकास तापमान एवं दाब में होने वाले स्थानीय अन्तर के कारण होता है। ये हवाएँ छोटे क्षेत्रों को प्रभावित करती है तथा वायुमण्डल की निचली परत क्षोभमण्डल तक ही सीमित रहती हैं।

रामायण हेमन्त ऋतु में पछुआ हवाओं के चलने का संकेत देता है। ए हवाएं हिमकणों से व्याप्त होकर दुनी सर्दी लेकर वेग से चलती हैं (वा०रा० 3·16·15) अन्यत्र पर्वतीय समीर का भी वर्णन मिलता है (वा०रा 4·1·10)। तदुपरान्त सूखी धूल भरी दारुण एवं प्रचण्ड वायु का उल्लेख है (वा०रा 6·83·19) तीव्र वेग वाले बवण्डर के चलने का भी वर्णन है (वा०रा 6·106·21)।

2. ओस-

यह हेमन्त ऋतु में गिरती है। रामायण में कई जगह विभिन्न रूपों में इसका वर्णन मिलता है। उदाहरणार्थ नदियों के बालुकामय तटों पर ओस पायी जाती है। (वा0रा0 3.16.24)

3.12 जलमण्डल-

रामायण के अनुसार पृथ्वी चारों तरफ समुद्र से घिरी हुई है। (वा0रा0 1.29.14) महाराज सगर के पुत्रों ने अश्वमेघ यज्ञ के घोड़े को खोजने के लिए पृथ्वी को खोदा था जिसमें बाद में गंगा जी का जल भर जाने से महासागरबना (वा0रा0 1.39.40-43 सर्ग) रामायण में कहीं 7 तो कहीं 4 महासागरों की कल्पना की गयी है।

रामायण के उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि सागर पृथ्वी के ठोस होने के बाद अस्तित्व में आये एवं इनके जल का प्रधान स्त्रोत स्थलीय नदियों द्वारा लाया गया जल है। रामायण के 4 महासागर वर्तमान नामों से भिन्न नहीं हैं तथा 7 महासागरों में कई छोटे सागरों को भी इसके अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया है उदाहरणार्थ आज भी कुछ विद्वान आर्कटिक एवं अंटार्कटिक महासागरों को महासागर का दर्जा नहीं प्रदान करते हैं।

1- समुद्र-

रामायण में समुद्र को गम्भीर (स्थिर) माना गयाहै। (वा0रा0 1.1.17) एवं नदियों के जल से उसके जल स्तर में परिवर्तन नहीं होता है। समुद्र कहीं

शांत तो कहीं छोटी- छोटी लहरें एवं कहीं विशाल पर्वतों की भाँति तरंगें उत्पन्न करता है (वा0रा0 4·64·5)। समुद्र गर्भ में विद्यमान बडवामुख इसके जल-स्तर को स्थिर बनाता है(वा0रा0 4·40·47-48)। समुद्र अत्यधिक गहरा (पातालव्यापी और अगाध जलराशि वाला(वा0रा04·11·8)है जिसके नितल में अनेक रत्न पाये जाते हैं। सभी नदियां अपनी जलराशि समुद्र में प्रवाहित करती हैं। समुद्र में ज्वार भाटे आते हैं जिनका सम्बन्ध चन्द्रमा से है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार चन्द्रमा समुद्र का पुत्र है क्योंकि इसकी उत्पत्ति सागर से ही हुई है। समुद्र मंथन से रत्नों की प्राप्ति के आख्यान से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीयों को समुद्र के गर्भ में विद्यमान अपार खनिज सम्पदा के बारे में जानकारी थी जिसका दोहन अगाध सागरीय खनन से किया जा सकता है अनेक प्रसंगों में समुद्र के जीवजन्तुओं (वा0रा0 6·4·110-113) एवं समुद्री जल के अपरदनकारी(वा0रा0 6·109·21) कार्यों की ओर भी संकेत किया गया है।

3·13 स्थलमण्डल-

भूपृष्ठ के विकास में बहिर्जात एवं अन्तर्जात प्रक्रियाओं का सम्मिलित योगदान रहता है। बहिर्जात प्रक्रियाएं अपनी शक्ति बाह्य स्रोतों विशेषकर सूर्य से प्राप्त करती है। एप्रक्रियाएं मुख्यत: भूआकृतिक कारकों जैसे नदी, हवा, हिमनदी एवं सागर तरंगों आदि से उत्पन्न होती है। इन प्रक्रियाओं

में मूलत: तल सन्तुलन, तलावचन, तलोच्चयन तथा अपक्षरण आदि सम्मिलित है। भूपृष्ठ के अन्दर उत्पन्न होने वाली प्रक्रियाओं को अन्तर्जात प्रक्रियाएं कहते हैं। यद्यपि इनकी उत्पत्ति भूपृष्ठ के अन्दर होती है परन्तु उनसे पृथ्वी के धरातल के अनेक स्थल-रूपों का सृजन होता है। पर्वत-पठार निर्माणकारी, ज्वालामुखी एवं भूकम्प आदि इसी प्रकार की प्रक्रियाएं हैं जिनका विवरण रामायण में कहीं प्रत्यक्ष एवं रूपात्मक तरीके से किया गया है।

[1] पृथ्वी का बाह्य स्वरूप -

वाल्मीकि रामायण के अनुसार पृथ्वी का [बाह्य] स्वरूप एक सा नहीं है [वा0रा0 5·36·23] इस पर पर्वत , पठार, मैदान आदि के अतिरिक्त अनेक नदियां, झीलें, मरुस्थल , हिमनद , कन्दराएं, निर्दर [शिलाविवर] गुहा [गुफा] शिखर आदि पाये जाते हैं [वा0रा01·13·5-6]।

1· चट्टान -

वाल्मीकि रामायण में विभिन्न प्रकार की चट्टानों का वर्णन है भी उपलब्ध होता है, जैसे हनुमान जी जिस पर्वत पर से लंका के लिए छलांक लगाए थे, नील , लोहित मञ्जिष्ठ [मजी0] कमल के समान रंगवाली सित [श्वेत] असित [काला] वर्ण की धातुओं [चट्टानों] से युक्त था [वा0रा05·1·5]

रामायण में कायान्तरित [रूपान्तरित] एवं आग्नेय चट्टानों की चर्चा एक पौराणिक आख्यान के माध्यम से की गयी है। उमा के साथ विहार करते हुए शंकर का वीर्य [तेज] स्खलित हो जाता है जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त

हो जाती है। (वा०रा० 1·36·16)। फिर वह महातेज अग्नि, वायु के सहयोग से अपने भीतर रख लेते हैं (वा०रा० 1·36·17)। फिर उस तेज को गंगा जी में स्थापित कर देते हैं (वा०रा० 1·37·13)। तेज के प्रभाव से गंगा जी के सारे स्रोत बन्द हो जाते हैं। (वा०रा० 1·37·14) जब गंगा जी भी उस तेज को धारण नहीं कर पाती तो वह हिमालय के पार्श्वभाग में स्थापित कर दिया जाता है वा०रा० 1·37·17-18)। गंगा के गर्भ से जो तेज निकला वह जम्बूनद नामक सुवर्ण के समान कान्तिमान दिखायी देने लगा। पृथ्वी पर जहाँ यह तेजस्वी गर्भ स्थापित हुआ वहाँ की भूमि तथा प्रत्येक वस्तुएं सुवर्णमयी हो गयी उसके आस-पास का स्थान अनुपम प्रभा से प्रकाशित होने वाला रजत हो गया उसे तेज की तीक्ष्णता से ही दूरवर्ती भू-भाग की वस्तुएं ताँबे एवं लोहे के रूप में परिणत हो गयीं (वा०रा० 1·37·18-19)। उस तेजस्वी गर्भ का जो मल था वहीं रांगा एवं शीशा हुआ इस प्रकार पृथ्वी पर पड़कर वह तेज नाना प्रकार की धातुओं के रूप में परिणत हो गया (वा०रा० 1·37·20)।

उपर्युक्त कथन से निम्न तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

1· पृथ्वी पर चट्टानों का निर्माण प्रारम्भिक रूप में भूगर्भ की उष्णता के कारण हुआ है अथवा पृथ्वी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में काफी गर्म थी जिससे आग्नेय चट्टानों का निर्माण हुआ।

2· भूगर्भ के ताप के स्पर्श से चट्टानों का कायान्तरण हुआ।

3· खनिज प्रायः आग्नेय प्रक्रिया से ही उत्पन्न हुए हैं।

4. अत्यधिक ताप के कारण स्वर्ण ,चाँदी,ताँबा एवं लोहे की उत्पत्ति भी वैज्ञानिकता के अधिक करीब है।

2. भूकम्प -

भूकम्प भूपटल का कम्पन या लहर है जो धरातल के नीचे अथवा ऊपर चट्टानों के लचीलेपन या गुरूत्वाकर्षण समस्थिति में क्षणिक अव्यवस्था होने पर उत्पन्न होता है।[9] रामायण में भूकम्प का उल्लेख प्राकृतिक आपदाओं के रूप में किया गया है। परशुराम के आगमन से पृथ्वी काँप उठती है वा0रा0 1.74.13-15}। कभी-कभी सम्पूर्ण पृथ्वी के डगमगाने का संकेत विस्तृत भूकम्प की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है {वा0रा0 2.41.21}। रामायण में 3.2.9, 4.99, 6.127.21-22 .स्थलों पर भूकम्प आने का उल्लेख किया गया है।

{3} भूकम्प आने के कारण-

1. रामायण के अनुसार चार दिग्गज {विरूपाक्ष, महापद्म , सौमनस एवं श्वेतभद्र} पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण किये हुए {वा0रा 2.39.13-22}है।जब ये दिग्गज विश्राम के लिए अपने मस्तक को इधर से उधर घुमाते हैं तो भूकम्प आ जाता है {वा0रा0 1.39.15}।यह तथ्य पृथ्वी के गर्भ में उत्पन्न असन्तुलन की स्थिति की ओर इंगित करता है जो भूकम्प आने का एक प्रधान कारण है।

2· दूसरा कारण मानवीय है इसके अन्तर्गत युद्ध में बाणों के चलने से अथवा तीव्रगति से मानव या राक्षसों की सेना की भागदौड़ के कारण भी भूकम्प आता है।वा०रा० 1·94·13-15,3·2·9· 4·39·9·5·1·12·6,76 94·6·127·12।।

ङ- भूकम्प का प्रभाव-

भूकम्प के प्रभाव से पर्वतों से जल के नये स्रोत फूट पड़ते हैं। बड़ी-बड़ी शिलाएं गिरने लगती हैं और समस्त जीव भयभीत हो जाते हैं। ।वा०रा० 5·1·14-18। भूकम्प आने से वृक्ष धराशायी हो जाते हैं। ।वा०रा० 2·87·4। नगरों की इमारतें जोर-जोर से हिलने लगती है। भूकम्प के साथ कभी-कभी भयंकर उत्पात भी शुरू हो जाते हैं, जिससे वृक्ष टूट कर गिरने लगते हैं। सर्वत्र धूल की आंधी चलने लगती हैं एवं सूर्य मण्डल अन्धकार से आच्छन्न हो जाता है।वा०रा० 1·12·104 ।

3· हयमुख या बडवामुख ।ज्वालामुखी।-

रामायण में जाग्रत ज्वालामुखियों की ओर संकेत मिलता है ज्वालामुखी प्रक्रिया से पृथ्वी का धरातल फट जाता है पर्वत ढह जाते हैं और उसमें से धुंवा निकलने लगता है ।वा०रा० 2·69·13।जाग्रत ज्वालामुखी से सर्वदा आग निकलती रहती है वा०रा० 5·35·45।।पर्वत के छिन्न भिन्न होने से पर्वतों में आग लग जाती है।वा०रा० 5·1·20।।ज्वालामुखी फूटने के कारणों

वज्र के आघात को कारण बताया गया है। वा०रा० 6·76·88। ज्वालामुखी क्रिया द्वारा ज्वालामुखी पर्वतों के निर्माण का संकेत। वा०रा० 3·1·58।भी है। अन्यत्र समुद्र के गर्भ में फूटने वाले ज्वालामुखियों का वर्णन मिलता है। वा०रा० 4·40·47-48।।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि रामायणकालीन लोग ज्वालामुखी पर्वतों के विषय में जानते थे। उनके अनुसार ज्वालामुखी की उत्पत्ति पृथ्वी के धरातल के फटने से होता है। यद्यपि ज्वालामुखी पर्वतों की उत्पत्ति के विषय में अनेक आधारहीन बातें कहीं गयी हैं जैसे किसी महर्षि का क्रुद्ध हो जाना इत्यादि परन्तु इसके द्वारा होने वाली हानियों की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है। इसी प्रकार बड़वामुख से अभिप्राय उन ज्वालामुखियों से है जो समुद्र के गर्भ में फूटते हैं।

4· पर्वत-

वाल्मीकि रामायण में एक पौराणिक कथा का उल्लेख है जिसके अनुसार सतयुग में पर्वतों के पंख हुआ करते थे एवं ये गरुड़ के समान वेगशाली होकर सभी दिशाओं में उड़ते फिरते थे। उनके इस तरह विचरण से देवता,ऋषि और समस्त प्राणियों को कष्ट होने लगा अतः सहस्त्र नेत्रों वाले देवराज इन्द्र कुपित हो उठे और उन्होंने अपने वज्र से लाखों पर्वतों के पंख काट डाले। वा०रा० 5·1·122-125। इस कथन से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं।

§अ§   प्राचीन काल में पृथ्वी का अध: स्तर अस्थिर था जिस पर विस्तृत पर्वतीकरण की क्रियाएं सम्पन्न हुई। इस पर्वत निर्माणकारी प्रक्रिया के दौरान कभी-कभी एक विशाल क्षेत्र में एक ही साथ कई पर्वतों का निर्माण हो गया जिससे लोगों को बड़ी क्षति उठानी पड़ी।

§ब§   इन्द्र वर्षा के स्वामी हैं §वा0रा0 7·86·4-5§।मेघ इन्द्र के अनुचर है। घनघोर वर्षा से पर्वतों पर अपरदन को बल मिलता है और कालान्तर में वे समतल क्षेत्रों मे बदल जाते हैं §वा0रा0 7·23·42§ इससे पृथ्वी के अभ्यन्तर के शीतल होने से पर्वत निर्माण का कार्य उत्तरोत्तर कम होता गया इसे कवि ने साहित्यिक शब्दावली में "पंख काटना" कहा है।

रामायण में पर्वतों के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग हुआ है जिसे पर्वत §वा0रा0 7·87·2§ ,शैल §वा0रा0 7·32·42§, अचल §वा0रा0 7·77·13§ गिरि §वा0रा0 76·88 § नग §वा0रा0 6·76·62§ आदि।पर्वत के नीचे धसकने का भी संकेत मिलता है §वा0रा0 1·97·27§।

§स§ मानव तथा पर्वत -

रामायण काल में संग्रहीकरण, आखेट एवं कृषि प्रमुख व्यवसाय थे। वानर जाति संग्राहक थी जो विभिन्न पर्वतों पर निवास करती थी §वा0रा0 4·37·2-9§।रामायणकालीन तपस्वीगण चित्रकूट,विन्ध्याचल सह्य आदि पर्वतों पर निवास करते थे। हिमालय पर्वत भी बड़े-बड़े ऋषियों का तपस्थली रहा है। श्री राम अपने चौदह वर्ष के बनवास का कुछ समय चित्रकूट पर्वत पर

भी बिताए थे §वा0रा0 4·56·15§।चित्रकूट पर्वत पर बहुत से ऋषि निवास करते थे §वा0रा0 5·56·15§ पर्वतों की शोभा को देखने के लिए बहुत से पर्यटक भी पर्वतीय अंचलों में घूमने जाया करते थे §वा0रा0 4·94§।

5· पठार-

किष्किन्धाकाण्ड के प्रथम सर्ग में पम्पासर के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि यह सरोवर पठारी भाग पर था और उसके आस-पास पर्वतों के छोटे-छोटे शिखर थे§ 4·1 पूरेश्लोक§,किष्किन्धापुरी का वर्णन भी उसके पठारी क्षेत्र में होने की ओर संकेत देता है। रामायण में पठार को गिरिप्रस्थ §वा0रा0 4·1·19§ शैलप्रस्थ एवं अनुप्रस्थ §वा0रा0 4·43·30§आदि नामों से व्यवहृत किया गया है।

6· मैदान-

अयोध्या नगर"समभूमि" §मैदान पर बसा हुआ था। जिसके समीपवर्ती क्षेत्र पर चावल की खेती की जाती थी§वा0रा0 1·5·17§ गंगा जी आदि नदियां मैदानी क्षेत्रों में बहुत धीरे-धीरे बहती हैं §वा0रा0 1·43·24§।

7· मरुस्थल -

वाल्मीकि रामायण में कई स्थान पर मरुभूमि का उल्लेख किया गया है । रामायण के अनुसार मरुस्थल के वृक्ष फल नहीं देते हैं एवं उनकी डालियों

में फूल और पत्ते भी नहीं होते हैं मरूस्थल की नदियों में जल नहीं होता है वहां कन्दमूल फल तथा जंगली जीवजन्तुओं का अभाव पाया जाता है। (वा0रा0 4.48.9-10) महर्षि बाल्मीकि ने मरूस्थल की उत्पत्ति महर्षि कण्डु के शाप से मानते हैं। (वा0रा0 4.48.12।)

एक अन्य जगह पर मरूस्थल की उत्पत्ति का कारण राम का बाण बताया गया है। वा0रा0 6.22.33(जिस स्थान पर यह बाण गिरा वह पृथ्वी पर "मरूकान्तर" के नाम से प्रसिद्ध हुआ (वा0रा0 6.22.36) राम के बाण के घाव से उस मरूस्थल के बीच में एक जल स्त्रोत (उत्सुपकूप) की उत्पत्ति हो गयी (वा0रा0 6.22.37) यह प्रदेश पशुपालन के लिए उपयुक्त होताहैजिसके कारण दूध-घी आदि पदार्थों की अधिकता पायी जाती है (वा0रा0 6.22.42)।

महर्षि कण्डु के शाप एवं राम के बाण से मरूभूमि की उत्पत्ति के आख्यानों से यह संकेत मिलता है कि रेगिस्तान स्वयं पैदा नहीं होते बल्कि पैदा किये जाते हैं वास्तव में धरती के सीने पर मनुष्य कीसबसे बड़ी बर्बरता के घाव हैं रेगिस्तान। जहां आज थार है वह भूमि आज से कोई 2000 वर्ष पूर्व देश की सबसे उपजाऊ भूमि थी।[10] इससे स्पष्ट है कि बाल्मीकि काल के लोग मरूस्थलों की उत्पत्ति में मानव का हाथ मानते थे।

8. नदियाँ-

जबवर्षा का जल धरातल पर ढाल के अनुरूप ऊपर से नीचे की ओर बहता है तो उस जल धारा को नदी कहते हैं (वा0रा0 4.43.19-20)।

नदियाँ पर्वतों से स्त्रोत के रूप में निकलती हैं (वा0रा04·43 19-20)। पठारी भाग की नदियाँ कठोर चट्टानों के सम्पर्क में आकर उसी रंग की जलवाली हो जाती हैं (वा0रा0 2·63·19) नदियाँ समुद्र में मिलती है वा0रा01·1·16), इसी से समुद्र को नदीपति कहा जाता है (वा0रा0 1·1·17) नदियों में दो तट, महान जलराशि पंक, सेवार, मत्स्य, फेन एवं तीव्र प्रवाह होता है (वा0रा0 6·58·33)।

रामायण में नदियों के 2 प्रकार बताये गये हैं:- अस्थायी एवं स्थायी।

1- अस्थायी-

अस्थायी नदियाँ गर्मियों में सूख जाती हैं (वा0रा0 6·83·33,2·8·15) एवं वर्षा ऋतु में इनमें बहुत तेज बाढ़ आती हैं (वा0रा0 7·32·6) एवं ये अपने कगारों को क्षत-विक्षत कर डालती हैं। (वा0रा0 7·28·39)

2- स्थायी-

ऐसी नदियाँ जो पर्वतों से निकलती है जैसे विन्दु सर से गंगा जी एवं मानस सर से सरयू नदी आदि। सदा प्रवाहित होने के कारण इन्हे सदानीरा (सदा जलवाली) आदि नामों से जाना जाता है।

8·1 नदी के कार्य-

रामायण में नदियों के अपरदन, परिवहन एवं निक्षेपण तीनों कार्यों का विर्णन मिलता है। नदियां मार्ग में जलप्रपात का निर्माण करती हैं (वा0रा0 5·52·37) एवं पार्श्वकटाव करके अपनी घाटी का विस्तार

करती है §वा0रा0 2·63·46,3·56·7§|ये जलगति क्रिया के द्वारा तटों की मिट्टी को गला डालती है। §वा0रा0 4·28·58§ वर्षाकाल में नदियाँ अत्यधिक क्टाव करती हैं §वा0रा0 2·20·49§|नदियों द्वारा अपक्षालन से पर्वतों के शिखर घिसते जाते हैं§वा0रा0 4·28·48§ नदियाँ पर्वतों पर बड़ी-बड़ी गुफाएँ §कन्दरा§ बनाती हैं. §वा0रा04·28·50§|कुछ नदियाँ अपने जल के साथ बहती हुई बड़ी- बड़ी चट्टानों को सन्निघर्षण एवं अपघर्षण से शिलाचूर्ण में बदल देती है§वा0रा0 2·71·31§ एक अन्य जगह पर राजा जह्नु के यज्ञमण्डप की सारी सामग्री के नदी द्वारा बहा ले जाने का उल्लेख मिलता है §वा0रा0 1·43·34-35§|निक्षेपण के द्वारा बनाए गये भावर के जलोढ़ शंकुओं एवं जलोढ़ पंखो में गंगा विलीन हो जाती है और फिर कुछ दूर जाकर प्रकट होती है §वा0रा0 1·43 36-38§|नदियों के विसर्प की चर्चा भी रामायण में मिलती है इसे रामायण में "पुनरावृत्ततोया" कहा गया है§वा0रा0 5·14·13§ कई स्थलों पर नदियों के संगम का वर्णन मिलता है §वा0रा0 1·23·5§|

9· हिम और हिमानी-

वाल्मीकि रामायण में हिम और हिमानी का भी उल्लेख मिलता है रामायण के अनुसार हिमालय हिम का आगार है§वा0रा0 2·112·18§| यह घनीभूत हिम के खजाने से परिपूर्ण है। हेमन्त ऋतु में सूर्य के दक्षिणायन हो

जाने से हिमालय पर्वत पर हिमपात होने लगता है {वा०रा० 3·16·9}| हिम के परतों की मोटाई बढ़ती जाती है कालान्तर में सूर्य के ताप से पिघली हुई बर्फ प्रवाहित होने लगती है {वा०रा० 2·85·18} जिससे हिमानी की उत्पत्ति होती है।

3·14 जैव मण्डल-

रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रामायणकाल में जनसंख्या का बसाव विरल था। देश के अधिकांश भाग पर घने वन उगे हुए थे जो भाँति-भाँति के वृक्षों से परिपूर्ण थे। इन वनों में यदिहिरन आदि घास खाने वाले पशु रहते थे तो इनमें सिंह,चीता तन्दुआ आदि हिंसक पशुओं की भी कमी नहीं थी। रामायण में विभिन्न वन प्रदेशों,उनकी प्राकृतिक सम्पदाओं एवं उनमें निवास करने वाले जीव जन्तुओं का रोचक वर्णन मिलता है। यमुना के दक्षिण का समस्त क्षेत्र तो विस्तृत वनस्थलों के रूप में था। इन वनों में अनेक जनजातियां निवास करती थी जो अपने भोजन आदि के लिए वन्य उपजों का उपयोग करती थी। यत्र तत्र वनों में ऋषियों के आश्रम थे जो आर्य संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में प्रमुख भूमिका अदा करते थे।*|महाकाव्य में एक ही ऋषि के कई आश्रमों का उल्लेख मिलता है जिससे यह भी ज्ञात होता है कि ऋषि मुनि परिव्राजक के रूप में भ्रमणशील जीवन व्यतीत करते थे।* परन्तु उनके आवास नगर एवं बस्तियों के कोलाहल से दूर जंगलों में ही स्थित होते थे जहां उनकी मूलभूत आवश्यकताएं आसानी से पूरी हो जाया करती थीं।

वन प्रदेशों की सुरक्षा का विशेष ध्यान दिया जाता था एवं वनों तथा उसकी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना प्रतिबन्धित था। कुछ वनस्थलियों में विशेष कर ऋषियों के आश्रम के समीपवर्ती क्षेत्रों में तो वन्य जन्तुओं के शिकार पर भी प्रतिबन्ध था जिससे परिस्थितिक सन्तुलन न बिगड़ने पावे। रामायण में स्थल पर निवास करने वाले जीवों के अतिरिक्त नदियों, सरोवरों, झीलों एवं सागरों में रहने वाली मछलियाँ आदि अनेक जीवों का उल्लेख मिलता है। वास्तव में रामायण काल का मानव प्रकृति के अधिक करीब था एवं वह प्रकृति के विभिन्न अवयवों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने में ही अपनी भलाई समझता था।

क) पर्यावरण व्यवस्थापन-

रामायण काल में आधुनिक काल के समान औद्योगीकरण नहीं हुआ था जिसके कारण परिस्थैतिक संतुलन सुव्यवस्थित था। इसका मूल कारण उन दिनों की विरल जनसंख्या थी जिसके कारण भूमि पर जनसंख्या का दबाव कम था एवं वह गहन उपयोग से बची हुई थी।

रामायणकालीन लोगों का पर्यावरण के सन्दर्भ में दृष्टिकोण बड़ा ही वैज्ञानिक था। वे प्रकृति के किसी भी रूप को चाहे वह पर्वत नदी या वृक्ष हो सभी को मानव जीवन हेतु आवश्यक मानते थे। यही कारण है कि इनमें देवत्व की कल्पना की गयी थी ताकि इनको क्षति न पहुँचाई जाय। रामायण में वर्णित तथ्यों के आधार पर पर्यावरण रक्षण हेतु निम्न बातें ज्ञात

होती है।

1- रामायण काल में प्रत्येक नगरों में एक विस्तृत वाटिका जो राज्य द्वारा सुरक्षित रहती थी जैसे लंकापुरी की अशोक वाटिका अथवा किष्किन्धापुरी का मधुवन इनमें सुन्दर-सुन्दर मीठे फलदार वृक्ष लगाये जाते थे यद्यपि इस क्षेत्र को क्रीड़ा-केन्द्र के रूप में विकसित किया जाता था परन्तु यहां वृक्षों को काटने तथा फलों को नष्ट करने पर प्रतिबन्ध था। कुछ नगरों में तो प्रत्येक परिवार का अपना छोटा उपवन होता था।

2- रामायणकालीन ऋषि मुनि एवं उनके शिष्यगण आश्रमों में रहते थे्जिसकी विस्तृत चर्चा आश्रम संस्कृति में की जा चुकी है् ये वनों से सहज रूप में प्राप्त फलों पर ही जीवन निर्वाह करते थे या वृक्षों द्वारा प्रदत्त वस्तुओं का उपयोग करते थे। इन आश्रमों में भी हरे-हरे वृक्षों को काटने पर प्रतिबन्ध था एवं शिष्यों को वृक्ष लगाने एवं उनकी देखभाल करने की शिक्षा दी जाती थी।

3- रामायणकालीन आर्य-, पशुपक्षी एवं जीव जन्तुओं से बड़ा मधुर सम्बन्ध रखते थे। वे इनको मारना पाप समझते थे। केवल राजा लोग ही कुछ हिंसक वन्य जन्तुओं का शिकार करते थे। सामान्य शिकारी को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था एवं उनका कर्म निन्दनीय माना जाता था। आश्रमों मे तो हरिण, गाय और पशुओं के पालने की प्रथाथी एवं उसके परिसर में वन्य पशुओं की हिंसा पर प्रतिबन्ध था।

4- रामायणकालीन लोग नदियों, तरावरों के तटों के समीप

निवास करते थे और वे नदियों को जीवन दायिनी मां के समान समझते थे। गंगा ऐसी नदियों को वे स्वर्गप्राप्ति कराने वाली मानकर पूजा करते थे। यद्यपि शुद्धीकरण के साधनों के अभाव के कारण नदियों में नगरों की गन्दगी डाल दी जाती थी, परन्तु इन्हे व्यक्तिगततौर पर स्वच्छ रखने का प्रयास किया जाता था। इन दिनों अधिक संख्या में बड़े नगरों के अभाव में नदियाँ प्रदूषण से मुक्त थीं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि रामायणकालीन लोग पर्यावरण व्यवस्थापन पर पूर्ण ध्यान देते थे और यह जानते थे कि प्रकृति को नष्ट करना मानव को नष्ट करना है वह यह भी समझते थे कि मानव जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु मानव एवं पर्यावरण में उपयुक्त सम्बन्ध अत्यावश्यक है।

संदर्भ

1· Gardner, James S. (1977): Physical Geography, Harpers& Collrhr Press, New York, Hagerstown, San Francisco, London Fig.1.1 P.4.

2· Ibid. P. 5 - The atmosphere, hydrosphere, beosphere and lithosphere are each composed of number of elements or objects. For examole the atmosphere can be considered in term of wealther and climate, Rocks, land forms and soils are elements of the lithosphere. Revers, Lakes, glaciers, snow cover and ocean are parts of the hydrosphere and plants and animals are parts of the beosphere.

3· वाल्मीकि रामायण, रामनारायण लाल, इलाहाबाद-2

4· वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर 4·58·26-27

5. Dubey B. (1967): Geographical concepts in Ancient India, National Geographical society of India, Varanasi P.64.

6· ब्रह्माण्ड पुराण, 2·22·31-35

7 Ibid 2.22. 31-35

8 Ibid......2.22. 40

9· मैसिलवानी जे०वी० [1933] फिजिक्स आव दी अर्थ, भाग-1 नेशनल रिसर्च कौंसिल।

10· अमृत प्रभात" 21 मार्च 1985, विश्ववानिकी दिवस: मही विनाश का प्रतीक है वनों का विनाश, पृ० 4·

चतुर्थ अध्याय

रामायणकालीन संसार

मनुष्य स्वभाव से ही एक भ्रमणशील प्राणी रहा है। यही कारण है कि अपने कुतूहल एवं उत्कंठा की पूर्ति हेतु वह एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जोखिम उठाकर भी यात्राएं करता रहा है। यद्यपि आवागमन एवं संचार साधनों के अभाव में प्राचीनकाल में भ्रमण एवं यात्राएं कष्ट साध्य होती थीं परन्तु इनसे यात्रियों के उत्साह में कभी कमी नहीं होती थी। वाल्मीकि रामायण में आदि कवि वाल्मीकि ने रावण की दिग्विजय यात्रा एवं वानर राज सुग्रीव के माध्यम से विश्व के विभिन्न अंचलों के उच्चावच,भ्वाकृतियों, वनस्पतियों, जीव जन्तुओं, निवासियों नागरिक जीवन, अधिवास आदि के बारे में जानकारी देने का प्रयास किया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि रामायण काल में हमारे पूर्वजों को विश्व के अधिकांश भागों के बारे में सुस्पष्ट ज्ञान प्राप्त था। प्रस्तुत अध्याय में रामायण कालीन संसार के विषय में जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

4·1- रामायणकालीन महाद्वीप-

यद्यपि वाल्मीकि रामायण में द्वीपों (जिनका प्रयोग महाद्वीपों के संदर्भ में किया गया है) की संख्या के बारे में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु महाकाव्य के अध्ययन से इसमें सात द्वीपों का उल्लेख मिलता है।[1]
ये द्वीप निम्न प्रकार हैं :-

DWIPAS, SAGARAS AND LOKAS
(RAMAYAN PERIOD)
N
500 0 500 1000 1500 2000 2500 km
SUDARSAN DWIP
SWADU SAGAR
JALOD SAGAR
SWARGA LOK
KSHIROD SAGAR
KUT SHAL MALI DWIP
LOHIT SAGAR
JAMBU DWIP
DEW LOK
MARTYA LOK
KRAUNCH DWIP
PASHCHIM SAGAR
PURVA SAGAR
KIRAT DWIP
YAVA DWIP
PATAL LOK
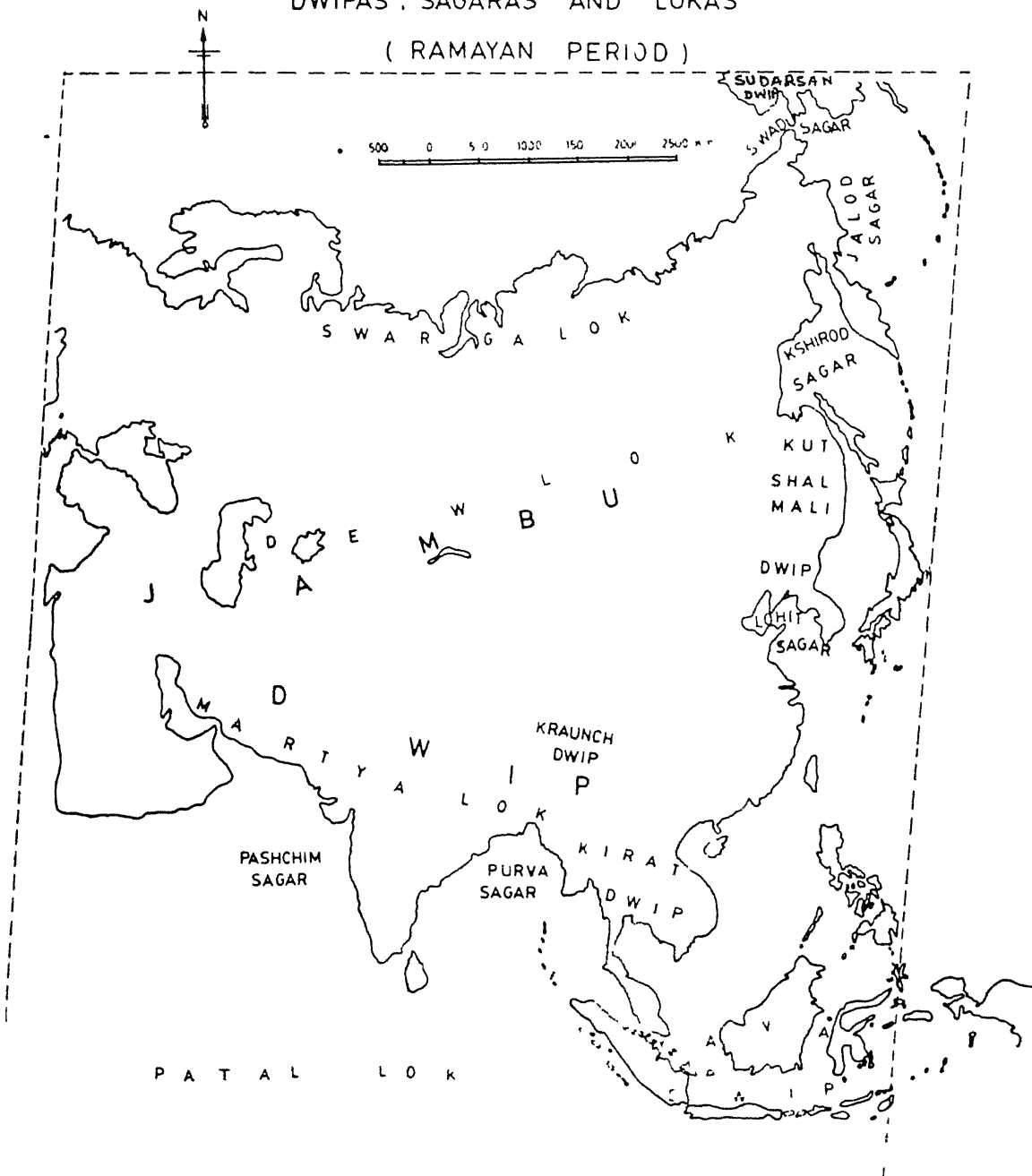
FIG 4 1

(अ) जम्बू द्वीप-

रामायण के बालकाण्ड में राजा सगर के पुत्रों द्वारा पृथ्वी के खोदने के प्रसंग में पर्वतयुक्त जम्बूद्वीप का उल्लेख है (वा० रा० 1·39·22) सूर्य देव पूर्व में उदित होकर जम्बू द्वीप की परिक्रमा करके पश्चिम में अस्त होते हैं (वा० रा० 4·40·39) । इससे यह स्पष्ट होता है कि जम्बू द्वीप के शब्द एशिया महाद्वीप के अधिकांश भाग के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह बात और भी स्पष्ट है कि सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप इस द्वीप का मुख्य अंग था इस मत के समर्थन में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं।

1- राजा सगर के पुत्र यज्ञ के घोड़े को खोजते हुए जिस मार्ग का अनुसरण करते हैं, वह मार्ग गंगा के मैदानी क्षेत्र से गुजरता है और बंगाल की खाड़ी के पास समाप्त हो जाता है। अतः जम्बूद्वीप का विस्तार एशिया के भूभाग से लगाना युक्ति संगत लगता है।

2- जम्बूद्वीप के निवासी यह जानते थे कि सूर्य उदयाचल से उदित होकर अस्ताचल में अस्त होते हैं। वानरराज सुग्रीव चूंकि जम्बू द्वीप के एक भाग (भारत) के ही निवासी थे अतः उन्हे इस तथ्य की पूर्ण जानकारी थी। इससे जम्बूद्वीप के एशिया महाद्वीप के पर्यायवाची होने का बोध होता है। प्रो० अली[2] ने भी अपने तर्कों के आधार पर पुराणकालीन जम्बू को एशिया का ही भूभाग माना है। जम्बू द्वीप का क्षेत्र विस्तार में सात हजार (वा० रा० 1·39·2) (लगभग 760,000 वर्ग कि·मी·) बताया गया है जो एशिया के वर्तमान क्षेत्रफल (4,40,30,200 वर्ग कि·मी·) से बहुत कम है। इससे यह स्पष्ट होता है कि

इसके अन्तर्गत एशिया के सुदूर उत्तरी, दक्षिणी पूर्वी एवं द०पूर्वी क्षेत्र नहीं सम्मिलित थे।

(ब) यवद्वीप-

सुग्रीव पूर्व दिशा में जाने वाले वानरदल को संकेत करते हैं कि वे यवेष्ट होकर सात राज्यों से सुशोभित यवद्वीप, सुवर्ण द्वीप तथा रूप्यक द्वीपों में, जो सुवर्ण की खानों से सुशोभित हैं- सीता को ढूंढने का प्रयत्न करें (वा०रा० 4·40·30)। इससे यह ज्ञात होता है कि-

1- यवद्वीप भारतवर्ष के पूर्व में स्थित था।

2- यहाँ जाने के लिए पर्वत श्रेणियों एवं समुद्रों को पार करना पड़ता था (वा०रा० 3·30·29·)।

3- यह द्वीप सात राज्यों से सुशोभित था (वा०रा० 4·40·30) एवं

4- यहाँ पर सुवर्ण की खाने पायी जाती थीं (वा० रा० 4·40·30)

उपर्युक्त विवरण से पूर्वी द्वीप समूह का बोध होता है जो भारत के पूर्व में स्थित है। यह समुद्र के गर्भ से निकलने वाली पर्वत श्रृंखलाओं के श्रृंगों से बना है तथा इस समूह में हजारों छोटे बड़े द्वीप पाये जाते हैं। इन द्वीपों पर नावों आदि के द्वारा ही जाया जा सकता है। इस श्रृंखला में मुख्य रूप से जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, बाली सैलीबीज आदि प्रमुख द्वीप हैं जो प्राचीन काल में व्यापारिक सम्बन्धों के द्वारा भारत से जुड़े हुए थे। इसे सुवर्ण भूमि या रूप्यक भूमि भी कहते थे।

मलक्का जलसन्धि से होकर पूर्व की ओर को जाने वाला वानर दल हिन्द महासागर के अनेकों द्वीपों से होता हुआ दक्षिण- पूर्व एशिया पहुँचता है जिससे प्राचीन काल में भारत से अच्छे व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध थे। इस क्षेत्र को सुवर्णद्वीप या सुवर्णभूमि कहा जाता था क्योंकि इसके साथ व्यापार में अधिक लाभ होता था तथा वहाँ की खानों से सोना भी प्राप्त होता था। इस विस्तृत क्षेत्र के अन्तर्गत वर्मा से मलाया तक का समस्त भू-भाग आता था। इसके अतिरिक्त कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, सुमात्रा, जावा, बाली, बोर्नियो आदि के क्षेत्र भी इसी द्वीप के अंग माने जाते थे।[3] वर्मा की इरावदी की घाटी एवं मलाया के क्षेत्र में सोने की खानों का पाया जाना इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। प्राचीन रोमन लोग इन्हे "क्रिस्त्री" कहा करते थे जिसका अर्थ भी सुवर्ण द्वीप है।[4] प्लिनी एवं टालमी ने भी इस द्वीप का उल्लेख किया है।[5] अलबरूनी के अनुसार जाबज के द्वीप को हिन्दू लोग सुवर्ण द्वीप कहते थे।[6] यत्नवन्तो यवद्वीप ... शोभितम् श्लोक कुछ पाठभेद के साथ हरिवंश पुराण एवं रामायण मन्जरी में भी पाया जाता है।[7] अतः यवद्वीप सात द्वीपों से युक्त पूर्वी द्वीप समूह ही है।

__(स) कूटशाल्मली द्वीप-__

इस द्वीप का उल्लेख पूर्व दिशा की ओर जाने वाले वानरों के दल के सन्दर्भ में मिलता है जहाँ कूटशाल्मली वृक्ष पाये जाते हैं (वा०रा० 4·40·39) इसके पास ही विश्वकर्मा का बनाया हुआ विनतानन्दन गरूड़ का सुन्दर भवन है जो नाना प्रकार के रत्नों से सुशोभित तथा कैलाश पर्वत के समान उज्जवल एवं

विशाल है (वा०रा० 4·40·40)। इस द्वीप में पर्वत के समान शरीरवाले मन्देह नामक राक्षस निवास करते हैं जो समुद्र के मध्यवर्ती शैल- शिखरों पर लटको रहते हैं। वे अनेक प्रकार के रूपधारण करने वाले तथा भयदायक हैं। (वा०रा० 4·40·41) प्रतिदिन सूर्योदय के समय ये राक्षस उर्ध्वमुख होकर सूर्य से जूझने लगते हैं (वा० रा० 4·40·42-43)। परन्तु सूर्यमण्डल के ताप से संतप्त तथा ब्रह्मतेज से निहत होकर वे समुद्र के जल में गिर पड़ते हैं, वहाँ से फिर जीवित होकर वे उन्हीं शैल शिखरों पर लटक जाते हैं। इनका बारम्बार ऐसा ही क्रम चला करता है। उपर्युक्त विवेचन से निम्न बातें सामने आती हैं।

1- यह द्वीप जम्बूद्वीप के पूर्व में पाया जाता था।

2- इस द्वीप में शाल्मली (सेमल) के वृक्ष पाये जाते थे जिसके नाम पर इसे कूटशाल्मली कहा गया है।

3- इस द्वीप में विनतानन्दन गरुड़ का सुन्दर भवन स्थित था जो कैलाश पर्वत के समान उज्ज्वल एवं विशाल था।

4- इस द्वीप के पर्वत के समान भयंकर शरीर वाले मंदेह नामक राक्षस पाये जाते थे।

अली साहब ने शाल्मली द्वीप को अफ्रीका के उत्तरी पूर्वी भाग और हिन्दमहासागर के तटवर्ती प्रदेश में स्थित माना है।[8] किन्तु रामायण में शाल्मली द्वीप जम्बूद्वीप के पूर्व बताया गया है। जायसवाल एवं तिवारी[9] ने कूटशाल्मली को कोरिया से सम्बन्धित किया है जो रामायण के विवरण

के अनुसार उपयुक्त लगता है। इस मत के पक्ष में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं।

1- कोरिया भारत के पूर्व में स्थित है।

2- कूट शाल्मली में कूट शब्द का अर्थ होता है- "पर्वत शिखर", "शाल्मली" का अर्थ सेमल का वृक्ष"। इसे हम सालमेलिया मालाबारिका या सिल्क काटन वृक्ष भी कहते हैं जो कोरिया में भी मिलता है। दक्षिण की राजधानी सेउल कदाचित उस स्थान को सूचित करती है जहाँ पुरातन काल में सेमल के वृक्ष अधिकता में पाये जाते थे। सेउल शब्द शाल्मली का अपभ्रंश लगता है।

3- कोरिया का अधिकांश भाग बनाच्छादित है एवं इसका औसत तापमान वर्ष में पांच महीने हिमांक से नीचे रहता है।[9] जिससे इसकी शोभा कैलाश के समान हो जाती है।

4- "विनतानन्दन गरुड़ के सुन्दर भवन से" तात्पर्य यहाँ प्राकृतिक गुफाओं से है। चूँकि वानरजाति पर्वत की गुफाओं में रहती थी। अतः कोरिया में इनकी प्राप्ति विश्वकर्मा के भवन के समान आनन्द-दायक थी। इस प्रकार शाल्मली द्वीप कोरिया के आस-पास के क्षेत्र से सम्बन्धित है। इन्डोनेशिया की वायुसेना का नाम गरुड़ एयर लाइन है[10] "रूक" शब्द भी गरुड़ का समानार्थक माना जा सकता है।

5- मन्द बुद्धि मन्देह से अभिप्राय विशालकाय डायनासोर से लगाया जा सकता है जिनका शरीर बहुत वजनी किन्तु मस्तिष्क छोटा होता था।[11] सुग्रीव की सेना या स्वयं सुग्रीव इन प्राणियों के सम्पर्क में आये हुए थे।[12]

इस प्रकार कुटशाल्मली द्वीप आधुनिक कोरिया ही है जिसके अन्तर्गत कोरिया, मंचूरिया, रूस का कुछ भाग एवं जापान के द्वीप सम्मिलित किये जा सकते हैं।[13]

(द) क्रौन्च द्वीप*-

वाल्मीकि रामायण में इस द्वीप के बारे में विस्तृत चर्चा नहीं की गयी है। इसको भारत के उत्तर में स्थित बताया गया है तथा एक पर्वत के रूप में बताया गया है (वा0रा0 4·43·26 और 29) । वैसे इस द्वीप की चर्चा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में मिलती है [14] किन्तु उनकी समानता रामायण में क्रौन्च द्वीप से नहीं मिल जाती है। अतः यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है कि रामायणकालीन क्रौन्च द्वीप कहाँ था। यद्यपि रामायण के अनुसार इसका समीकरण हिमालय पर्वतीय क्षेत्र से किया जा सकता है किन्तु इससे उस द्वीप के जम्बू द्वीप में ही स्थित होने की बात ज्ञात होती है किन्तु यदि जम्बू द्वीप का विस्तार केवल भारतीय प्रदेश पर ही माना जाय तो यह समीकरण उपयुक्त लग सकता है।

(य) किरात द्वीप-

रामायण में किरात द्वीप की चर्चा की गयी है (वा0रा0 4·44·27) अन्यत्र इस द्वीप के निवासी किरातों के शारीरिक बनावट आदि के बारे में

---

* देखिये इसी शोध प्रबन्ध के अध्याय 5 में क्रौन्च पर्वत ।

विस्तृत जानकारी दी गयी है। इन्हें कर्ण प्रावरक वस्त्र की भाँति पैर तक लटकते कान वाले, ओष्ठ कर्णक - ओठ तक फैले हुए कानवाले, लोहे के समान काले एवं भयंकर मुखवाले एक ही पैर वाले, बहुत तेज दौड़ने वाले, अखंडित वंश परम्परा वाले नरभक्षी, तीखी चोटी वाले, सुवर्ण के समान कान्तिवाले, प्रिय दर्शन, कच्ची मछली खाने वाले, जल के भीतर रहने वाले, नीचे का आकार मनुष्य जैसा एवं ऊपर का आकार सिंह जैसा बताया गया है (वा०रा० 4·40, 26-29)। श्री लासेन ने किरातों की स्थिति पूर्वी नेपाल मानी है। पश्चिम नेपाल के उड़ुकोसी एवं आरकी नदियों की घाटियों में बसनेवाली किरात या किरान्ती आदिवासी जाति है जो वाल्मीकि युगीन भारत में वर्मा तक फैले हुए हैं।[15] किरात द्वीप वर्मा को ही कहा जा सकता है क्योंकि ये जातियाँ वर्मा के पर्वतों की गुफाओं में निवास करती थीं।[16] जयचन्द विद्यालंकार ने इन्हें हिमालय के पूर्वी क्षेत्र तथा वर्मा के उत्तरी क्षेत्र में बसने वाले किरात और नेग्रीटस जनजाति से समीकृत किया गया है जो सम्राट अशोक के समय तक इस क्षेत्र पर फैली हुई थीं।[17]

(ख) सुदर्शन द्वीप-

उदय गिरि के सौमनस शिखर के सामने का द्वीप सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध था क्योंकि उक्त शिखर पर जब भगवान सूर्य उदित होते हैं तभी इस द्वीप के समस्त प्राणियों का तेज से सम्बन्ध होता है और यही द्वीप के सुदर्शन नाम होने का कारण है (वा०रा० 4·40·61)। उस सुवर्णमय उदयाचल

तथा महात्मा सूर्यदेव के तेज से व्याप्त हुई उदयगिरि की पूर्व सन्ध्या रक्त वर्ण की प्रभा से प्रकाशित होती है ¶ वा० रा० 4·40·63 ¶। सूर्य के उदय का यह स्थान सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने बनाया था। अतः यही पृथ्वी एवं ब्रह्मलोक का द्वार है। ऊपर के लोकों में रहने वाले प्राणी इसी द्वार से ब्रह्मलोक जाते हैं ¶ वा० रा० 4·40·64 ¶। इस द्वीप में सुवर्णमय उदय पर्वत है ¶ वा० रा० 4·40·54 ¶। उसके गगनचुम्बी शिखर सौ योजन लम्बे हैं उसका आधारभूत ¶जातरूपशिला ¶ पर्वत भी वैसा ही है। यहाँ के साल, ताल, तमाल और फूलों से लदे कनेर आदि वृक्ष भी सुवर्णमय होते हैं जिनसे उदयगिरि की बड़ी शोभा बढ़ जाती है ¶ वा० रा० 4·40·56 ¶। उस समय सौ योजन ¶1300कि·मी·¶ लम्बे उदयगिरि के शिखर पर एक सौमनस नामक शिखर है, जिसकी चौड़ाई एक योजन ¶13कि·मी·¶ एवं ऊँचाई दस योजन ¶ 130कि·मी· ¶ ¶वा० रा० 4·40·57 ¶। पूर्वकाल में भगवान वामन ने अपना पहला पैर सौमनस शिखर पर एवं दूसरा पैर मरुपर्वत के शिखर पर रखा था ¶ वा० रा० 4·40·58 ¶। सूर्य जब "सौमनस" नामक शिखर पर स्थित होता है तब जम्बू द्वीप निवासियों को इनका अधिक स्पष्टता के साथ दर्शन होता है ¶ वा० रा० 4·40·59 ¶। उस सौमनस नामक शिखर पर बालखिल्य प्रकाशित होते देखे जाते हैं ¶ वा० रा० 4·40·60 ¶। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्न तथ्य सामने आते हैं।

1- सुदर्शन द्वीप वानरों के पूर्वी दल के रास्ते में बताया गया है।

2- यह उदयाचल पर्वत के समीप है अथवा उदयाचल पर्वत इस द्वीप में ही स्थित था। जायसवाल एवं तिवारी [18] ने उदयाचल पर्वत को अलास्का

के एण्डीकोट पहाड़ी से समीकृत किया है।

3- सुदर्शन द्वीप का अर्थ है "देखने में सुन्दर"। इस पर्वत पर जब प्रातः कालीन सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो समस्त क्षेत्र सोने के समान पीला सा हो जाता है।

4- वहाँ निवासियों का शारीरिक रंग लाल बताया गया है जो अलास्का (संयुक्त राज्य) एवं कनाडा के रेड इण्डियन से मिलता जुलता है।

अतः सुदर्शन द्वीप अलास्का क्षेत्र है।

रामायण में एक श्वेत द्वीप [19] की भी चर्चा की गयी है किन्तु साक्ष्यों के अभाव में इसकी स्थिति का निर्धारण एक कठिन कार्य लगता है।

इस प्रकार रामायण में सात द्वीपों की चर्चा तो की गयी है लेकिन इनकी स्थिति, विस्तार, सीमाओं आदि के अभाव में इनकी स्थिति आदि का सही निर्धारण करना, एक दुष्कर कार्य लगता है। इसके विपरीत परवर्ती ग्रन्थों, जैसे पुराणों आदि में इस प्रकार के भौगोलिक तथ्य उपलब्ध हैं।

4.2 रामायणकालीन सागर-

वाल्मीकि रामायण में कहीं पर चार समुद्र तो कहीं पर सात समुद्रों (वा०रा० 3.74.25) की चर्चा की गयी है। ये समुद्र प्रायः पूर्वदिशा की ओर जाने वाले मार्ग में स्थित बताये गये हैं (चित्र 4.1)।

(अ) रोहितसागर-

यह सागर किष्किन्धा के पूर्व में स्थित है आदिकवि ने इसके पहचान के बारे में निम्न बातें बतायी हैं (वा०रा० 4·40·38-39) ।

1- यह महाभयंकर है जिसमें उत्ताल तरंगे उठती रहती हैं जिससे यह गर्जन करता हुआ जान पड़ता है।

2- इसमें ऐसे विशालकाय असुर निवास करते हैं जो बहुत दिन के भूखे होते हैं और प्राणियों को उनकी छाया द्वारा ही पकड़कर अपने पास खींच लेते हैं एवं उनका आहार करते हैं।

3- यह समुद्र काले मेघ के समान श्याम दिखायी देता है।

4- इसमें बड़े-बड़े नाग निवास करते हैं जिससे गंभीर गर्जन होता रहता है।

जायसवाल एवं तिवारी[20] ने अपने लेख में इस सागर का साम्य चीन सागर से स्थापित किया है जिसके लिये उन्होंने निम्न तर्क प्रस्तुत किये हैं जो लेखक के विचार से उपयुक्त हैं।

1- यह सागर पूर्व में स्थित है।

2- टाइफून के प्रभाव से इसमें उत्ताल तरंगे उठती रहती हैं जिससे यह भयंकर लगता है।

3- फारमोसा के पहाड़ों तथा फिलीपीन्स द्वीप समूह के आन्तरिक भागों में निवास करने वाली कुछ ऐसी जनजातियां थी जो प्राचीन काल में इस

क्षेत्र से गुजरने वाली जहाजों के यात्रियों को मारकर लूट लेते थे एवं उनके मांस का भक्षण करते थे। रामायण में इस प्रकार के नीच कर्म करने वालों को असुर कहा गया है। अतः कवि ने इन्हें ठीक ही असुर की संज्ञा दी है।

4- इस क्षेत्र से गुजरने वाली 80 नाट प्रतिघंटे से अधिक वेगवाली टाइफून हवाएं प्रायः काले मेघों से युक्त होती है तथा भारी वर्षा करती हैं। अतः यह क्षेत्र काले मेघ से भरा रहता है।

5- महोरगों से आशय Pleseosaurus जन्तुओं से है जो प्राचीन समय में इस क्षेत्र में निवास करते थे।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इक्षु सागर -चीन सागर ही है।

(ब) लोहित सागर-

रामायण में इसे एक भयंकर सागर के नाम से सम्बोधित किया गया है जिसके जल का रंग लाल था (वाल्मीकि रामायण 4·40·39)। यह चीन के पूर्व में स्थित पीतसागर है।[21] शिव प्रसाद[22] ने चीनी जातियों के नाम पर इस सागर का नाम पीतसागर बताया है जबकि जायसवाल एवं तिवारी[23] ने ह्वांगहो नदी द्वारा लोयस के कटाव के मलवे को समुद्र में गिरने के कारण पीत जल के कारण इसे पीत सागर कहा है। कारण जो भी हो किन्तु यह स्पष्ट है कि प्राचीन लोग पीतसागर को लोहित सागर कहते थे।[24]

(स) क्षीरोद सागर-

वाल्मीकि रामायण में इसके परिचय में निम्न बातें बतायी गयी हैं।

1- यह पूर्व दिशा की ओर जाने वाले वानर दल के रास्ते में पड़ता है।

2- यह सफेदबादलों के समान आभा वाला है।

3- इसमें बड़ी-बड़ी लहरें उठती हैं जिसके कारण ऊपर फेन जमा रहता है।

यह सागर को रूस के पूर्वी तट के सहारे स्थित ओखोटस्क सागर है[25] जिसमें अनेकों हिमखण्ड तैरते हुए दिखायी पड़ते हैं। समीपवर्ती पहाड़ियों के हिम से ढंकी होने के कारण दूर से यह भाग सफेद बादलों की आभा वाला प्रतीत होता है।[26] यह सागर कमचटका प्रायद्वीप के विस्तार के कारण अर्द्धआवृत्त सागर की भाँति है जहाँ क्यूरोशियो की गर्मधारा एवं ओखोटस्क सागर में चलने वाली ठन्डी धारा के मिलन के कारण सागर तल विक्षुब्ध एवं अशान्त रहता है। सागरीय फेन की अधिकता के कारण ही आदि कवि ने इसे क्षीरोद सागर (दूध का सागर) नाम प्रदान किया है।[27] रामायण में इसे तूफानी सागर भी बताया गया है।

(द) जलोद सागर-

यह समुद्र किष्किन्धा (भारत) के पूर्व में स्थित है। रामायण के अनुसार इसके नितल में महर्षि और्व के कोप से प्रकट हुआ बड़वामुख नामक महान तेज विद्यमान है इसकी प्रचंड गर्मी से सागरीय जीव चीखते चिल्लाते रहते हैं। उपर्युक्त

विवरण के अनुसार यह सागर बेरिंग सागर का भाग है जो एक ज्वालामुखी एवं भूकम्प ग्रस्त क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। बड़वामुख से अभिप्राय इस क्षेत्र में होने वाले अंतःसागरीय ज्वालामुखीउद्गारों से है जिससे न केवल समीपवर्ती जल का तापमान बढ़ जाता है बल्कि समुद्री जल जीवों को काफी कष्ट पहुँचाता है।

कुछ विद्वान इस सागर की स्थिति सुमात्रा, जावा, बाली आदि द्वीपों के समीप बतलाते हैं।[28] किन्तु यदि जलोद सागर वहीं विद्यमान होता तो रामायण में इसका उल्लेख यवद्वीप के वर्णन के बाद ही या उसके साथ होना चाहिए था।

(थ) स्वादु सागर-

यह जलोद सागर (बेरिंग सागर) के उत्तर साइबेरिया एवं अलास्का के बीच विद्यमान है जिसका विस्तार आर्कटिक सागर तक फैला है। इसका अधिकांश भाग जाड़े में बर्फ से ढका रहता है परन्तु ग्रीष्म ऋतु में बर्फ के पिघलने से लवणता कम हो जाती है और पीने योग्य पानी हो जाता है बाल्मीकि ने इसी लिए इसे स्वादु समुद्र कहा है।

(द) दक्षिण सागर-

यह सागर किष्किन्धा के दक्षिण दिशा में विद्यमान था जिसका विस्तार सौ योजन (1300 कि॰मी॰) तक फैला हुआ था। इसके भीतर महेन्द्र पर्वत स्थित था तथा इसमें आकाश में उड़ने वाले जीवों की छाया को ग्रहणकर

खाने वाली अंगारिका नामक राक्षसी निवास करती थी। इस सागर के दूसरे पार रावण की राजधानी लंका विद्यमान थी (वा0रा0 4.41.19-27)। आधुनिक संदर्भ में इसे रामेश्वरम के दक्षिण स्थित मन्नार की खाड़ी, सागर एवं समीपवर्ती सागरीयक्षेत्र से लगाया जा सकता है जो श्रीलंका भारत के मुख्य भू-भाग से पृथक करती है।

(ख) पश्चिमी सागर-

पश्चिम दिशा की ओर जाने वाले वानरों को निर्देश देते समय सिन्धु नदी एवं उसके सागर के साथ संगम का वर्णन है। अन्यत्र इसे पश्चिमी सागर भी कहा गया है जो आधुनिक समय में अरब सागर कहलाता है। वानरराज बालि पश्चिम समुद्र की परिक्रमा करता था। यह सागर तिमि और मगर से आपूर्ण था। इसके किनारे अनेक पर्वत विद्यमान थे (वा0रा0 4.42.15-18)।

(ग) पूर्वीसागर-

रामायण में बंगाल की खाड़ी क्षेत्र को पूर्वी सागर के नाम से अभिहित किया जाता था। किष्किन्धा का राजा बालि प्रतिदिन पश्चिम से पूर्व समुद्र आता जाता था।

4.3 रामायणकालीन संसार-

हमारे पूर्वज आर्य अपने जन्म स्थान मध्य एशिया से भारत आये औरयहां की नदी घाटियों में बस गये। इनका सर्वप्रथम स्थान पंचनद रहा और
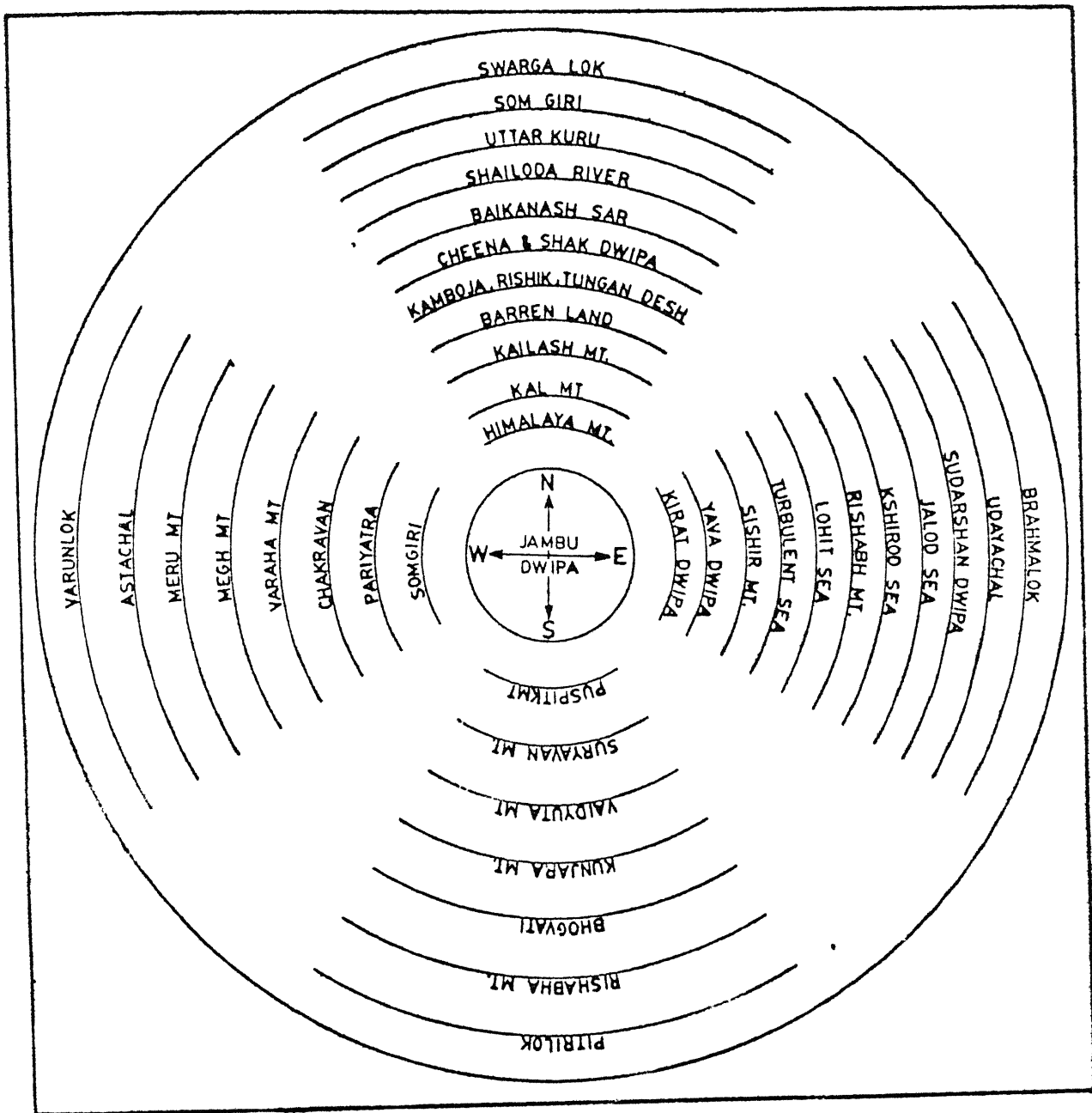
FIG 4 2 KNOWN WORLD DURING RAMAYAN PERIOD.

फिर उनका पूर्व एवं दक्षिण की ओर प्रसार होता गया। इन लोगों ने इस क्षेत्र में निवास करने वाले अनार्य प्रजातियों को युद्ध में हराकर दक्षिण की ओर खदेड़ दिया। फिर वे सम्पूर्ण भारतीय प्रायद्वीप पर भ्रमण करने लगे। वैदिक कालीन आर्य जिनका निवास क्षेत्र केवल आर्यावर्त तक सीमित था। रामायणकाल में विन्ध्य पर्वत को पारकर लंका तक पहुँच गये थे। अगस्त्य प्रथम आर्य थे जो विन्ध्य पर्वत पारकर अपने उपनिवेश दक्षिण के अनार्य बहुल क्षेत्र में बनाए। रामायणकालीन लोग भ्रमण एवं यात्राओं में काफी रुचि लेते थे। ये लोग नावों द्वारा नदियों एवं सागरों की यात्राएं किया करते थे। अधिकांश ऋषि एवं तपस्वी तीर्थों एवं तपः साधना हेतु उपर्युक्त स्थलों की तलाश में यत्र-तत्र विचरण किया करते थे जिसके कारण भूमण्डल के विभिन्न क्षेत्रों के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों की उन्हें भरपूर जानकारी थी। यदि तिलक के आर्यों के उत्पत्ति सम्बन्धी आर्कटिक सिद्धान्त को मान लिया जाय तो आर्कटिक क्षेत्र से भारत तक के प्रस्थान का विवरण आर्यों में दन्तकथाओं आदि के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानान्तरित होता रहा। चूँकि रामायण लौकिक संस्कृत का प्रथम लिपिबद्ध महाकाव्य है अतः महाकवि वाल्मीकि ने ऐसी अनेक कथाओं को जो दन्त कथाओं एवं श्रुतपरम्परा के रूप में प्रचलित थीं, महाकाव्य में समावेश कर लिपिबद्ध रूप देने का प्रयास किया। रामायण में वर्णित विश्व के बारे में जानकारी ऐसे ही विवरणों पर आधारित है जिसमें महर्षि ने वानरराज सुग्रीव द्वारा किष्किन्धा काण्ड एवं उत्तरकाण्ड में राक्षस राज रावण के दिग्विजय के प्रसंग में वर्णित किया है। जहाँ प्रथम विवरण में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में स्थित विभिन्न भौगोलिक तथ्यों

का सुस्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है, वहीं दूसरे स्थल पर विश्व का मात्र स्थूल वर्णन किया गया है। यहाँ हम सर्वप्रथम राक्षसराज रावण द्वारा दिग्विजय के दौरान जीते गये स्थलों का वर्णन करेंगे फिर भूमण्डल का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

(अ) रावण की दिग्विजय यात्रा -

रामायणकालीन लोग स्थूल रूप से विश्व को मुख्यतः तीन भागों में बाँटते थे देवलोक, मर्त्य लोक एवं पाताल लोक (वा०रा० 7·26·27)।

(1) देवलोक /इन्द्रलोक-

यह लोक कैलाश पर्वत के उत्तर स्थित था जिसे इन्द्रलोक भी कहते थे (वा० रा० 7·27·1)। प्राचीन काल में देवों का दैत्यों से कई बार युद्ध हुआ था जिसे देवासुर संग्राम कहा जाता था। इस समूचे विस्तृत क्षेत्र में देवता एवं अप्सराएं निवास करती थीं। अप्सराएं आज की गणिकाएं ही हैं जो सामान्य जन सुलभ स्त्रियां थीं जिनके कोई पति नहीं होता था (वा०रा० 7·26·40)। रावण कैलाश पर्वत पर ही रम्भा नामक अप्सरा से बलात्कार करता है जिससे देवलोक के कैलाश पर्वत के उत्तर स्थित होने की बात स्पष्ट हो जाती है। देवलोक में देवताओं का प्रसिद्ध नन्दन वन (उत्तर कुरु का वन क्षेत्र) स्थित था। जिसे साइबेरिया के कोणधारी वन क्षेत्र के नाम से जाना जा सकता है। देवताओं की राजधानी अमरावतीपुरी के भी इसीप्रकार चीन के पर्वतीय क्षेत्र में स्थित होने का अनुमान है। देवलोक का विस्तार नन्दन वन से उदयाचल तक माना गया है जिससे यह बात

होता है कि इसके अन्तर्गत सोवियत रूस, पश्चिमी चीन एवं मंगोलिया आदि के भू भाग सम्मिलित थे। (चित्र 4.1)

8- मर्त्यलोक-

हिमालय के दक्षिण सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप दक्षिणी पूर्वी एवं दक्षिणी पश्चिमी एशिया आदि क्षेत्र मर्त्यलोक के अन्तर्गत सम्मिलित थे। (चित्र 4.1) रावण अपने दिग्विजय के समय, दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय, पुरूरवा आदि राजाओं को पराजित करता है (वा० रा० 7.19.5-6)। अयोध्या नरेश राजा अनरण्य भी इससे पराजित किये जाते हैं (वा० रा० 7.19 सम्पूर्ण सर्ग)। ये सभी राजा गंगा- यमुना एवं सिन्धु नदियों के मैदानी क्षेत्रों के ही निवासी थे। राक्षसराज रावण बालि (वा० रा० 7.34 सम्पूर्ण सर्ग) सहस्त्रबाहु (वा० रा० 7.32 एवं 33 (सम्पूर्ण सर्ग) लवणासुर (7.35.25- 26) आदि अनार्य राजाओं से भी युद्ध कर मित्रता स्थापित करता है जो प्रायद्वीपीय भारत के क्षेत्रों पर शासन करते थे।* ये सभी क्षेत्र मर्त्यलोक के अन्तर्गत सम्मिलित थे। माहिष्मतीपुरी (नर्मदा के समीप), किष्किन्धापुरी (बेलारी के समीप) एवं मधुपुरी (मथुरा) एवं कोशल अयोध्या, जनकपुर एवं गिरिव्रज आदि इस क्षेत्र के प्रमुख नगर थे। इस क्षेत्र का विस्तार अफगानिस्तान, ईरान, इराक बर्मा एवं थाईलैण्ड आदि के भू भागों पर भी फैला था।

---

* देखिये इसी शोध प्रबन्ध का अध्याय सात।

3- पाताल लोक-

यह भारतीय उपमहाद्वीप के दक्षिण में स्थित था जिसमें हिन्द महासागर के अनेक छोटे -छोटे द्वीप सम्मिलित थे। यहाँ प्राचीन काल में अनार्य जनजातियाँ निवास करती थीं जिनमें असुर दैत्य, राक्षस, नाग, निवात कवच, कालकेय आदि प्रमुख थीं। राक्षसवंश के माल्यवान, सुमाली और माली जो सुकेश के पुत्र थे, देवताओं एवं असुरों को कष्ट देते थे {वा०रा० 7·5·15} । लंकापुरी इनका निवास स्थान था {वा०रा० 7·5· 24-27} इस द्वीप के निवासी काले वर्ण के थे {वा०रा० 7 ·8·12} । रामायण के अनुसार भगवान विष्णु ने युद्ध में राक्षसों को पराजित कर , उन्हे लंका से खदेड़ कर ~~उन्हें~~ पाताल लोक {हिन्द महासागर के द्वीपों} में जाने को विवश किया {वा०रा० 7·8·22}। रावण अपने पराक्रम से लंका पर पुनः आधिपत्य कर लिया एवं यहाँ के शासकयक्षों के स्वामी कुबेर को कैलाश पर्वत पर प्रवास के लिए मजबूर किया। {वा०रा० 7·11·सम्पूर्ण श्लोक}। रावण अपने दिग्विजय के दौरान पाताल लोक से यमलोक तक जाता है जो सम्भवतः मलागासी के दक्षिण का हिन्द महासागर का क्षेत्र था। मार्ग में भोगवतीपुरी पड़ती है जहाँ पर निवातकवच नामक दैत्य रहते थे जिनसे रावण मित्रता करता है {वा०रा० 7·23· 6- 8} ।

उपर्युक्त वर्णन से रामायणकालीन ज्ञात संसार का स्थूल रूप सामने आता है जिसमें रूस का सम्पूर्ण साइबेरियाई क्षेत्र, मंगोलिया, ~~चीन~~भारत ,अफगानिस्तान ईरान, इराक, पाकिस्तान,बंगलादेश ,बर्मा एवं हिन्द चीन एवं हिन्द महासागर के

अनेक द्वीप सम्मिलित थे (चित्र 4.1)। इनका सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन सुग्रीव द्वारा सीता की खोज में विभिन्न दिशाओं में भेजे गये वानरों के विवरण से स्पष्ट हो जाता है।

(ब) सुग्रीव द्वारा रामायणकालीन संसार का विवरण -

वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड में वानरराज सुग्रीव सीता की खोज हेतु पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में पृथक यूथपतियों के अधीन वानर सेना को प्रेषित करते हुए विभिन्न दिशाओं में स्थित भूखण्डों के उच्चावच, ~~प्राकृतिक~~ स्वरूप, ~~धरातल~~ स्वरूप, जलवायु, वनस्पति, मानव समुदाय आदि के बारे में जानकारी देते हैं। इन विवरणों से रामायण काल के लोगों के विश्व के विभिन्न अंचलों के बारे में ज्ञान का पता चलता है। रामायण की प्राचीनता को देखते हुए यह आश्चर्य का ही विषय है कि सीमित साधनों के होते हुए भी उस काल में लोग लम्बी एवं जोखिम भरी यात्राएं करते थे एवं भूमण्डल के विभिन्न भागों के बारे में जानकारी की उनमें उत्कण्ठा होती थी। यहाँ सुग्रीव द्वारा वर्णित विवरण के आधार पर चारों दिशाओं से सम्बन्धित रामायणकालीन विश्व की रूपरेखा तैयार करने का प्रयास किया गया है (चित्र 4.3)।

1-पूर्वी संसार -

वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड के 40वें सर्ग में पूर्व दिशा में सीता एवं रावण के निवास स्थान की खोज के लिए विनत नामक वानर यूथपति

के संरक्षण में वानरगणों को भेजते समय वानरराज सुग्रीव मार्ग में पड़ने वाले प्रमुख भौगोलिक एवं सांस्कृतिक स्थलरूपों आदि का परिचय देते हैं। चूँकि इसी शोध प्रबन्ध के पांचवे एवं छठवें अध्यायों में क्रमशः भारत के नदियों पर्वतों एवं जनपदों का वर्णन कर दिया गया है। अतः पुनरावृत्ति को रोकने के लिए यहाँ उनका केवल संकेत मात्र किया जा रहा है। विश्व के अन्य अंचलों के बारे में यथासंभव लेखकद्वारा सम्यक जानकारी देने का प्रयास किया जा रहा है। पूर्वी दिशा के प्रमुख भूदृश्यों का उल्लेख करते हुए वानर राज सुग्रीव सर्वप्रथम भागीरथी, गंगा, सरयू, कौशिकी, कालिन्दी ,यमुना, सरस्वती, सिन्धु,शोण (सोन) मही एवं काल मही नदियों का उल्लेख करते हैं। (वा0रा0 4·40·20-21)

उपर्युक्त सभी नदियाँ भारतीय क्षेत्र की नदियाँ जिन्हे आज गंगा (भागीरथी),घाघरा, (सरयू) ,कोसी (कौशिकी) यमुना (कालिन्दी), सरस्वती (विलुप्तनदी), सोन(शोण) चम्बल(चर्मण्वती) की सहायक कालीसिन्धु (सिन्धु) महानदी (महानदी), दामोदर (कालमही) कहते हैं। (चित्र 6·2) इसके बाद सुग्रीव ब्रह्ममाल (पूर्वी छोटा नागपुर एवं प0 बंगाल का पश्चिमी क्षेत्र), विदेह (बिहार एवं नेपाल का मिथिला प्रदेश), मालव (सतलज नदी के द0पू0 का भाग) काशी (गंगा गोमती दाब का दक्षिणी भाग तथा मिर्जापुर पठार का उत्तरी भाग), कोशल (अवध रियासत का क्षेत्र),मगध (सोन के पूर्व तथा गंगा के दक्षिण का भाग), पुण्ड्र (उत्तरी बंगाल एवं बांग्लादेश के गंगा यमुना दाब का वारिन्द क्षेत्र), बंग (यमुना/ ब्रह्मपुत्र के पूर्व पूर्वी बंगाल का क्षेत्र) (चित्र 7·1) महाग्राम (विभिन्न जनपदों के बड़े -बड़े नगर) एवं रेशम उत्पन्न करने वाले क्षेत्र (असम के क्षेत्र) का

THE WORLD AS KNOWN IN RAMAYAN PERIOD
N
500 0 500 1000 1500 2000 2500
SWADU SEA
BRAHMALOK
SOMA GIRI
UTTAR
KURU
RIVER
BLACK SEA
MT MERU
SEA
SAMARKAND
BISHIK
SHAK DESH
KOOT SHALMALI
LOHU SEA
CHEENA
PRAGJOTTISH
PERSIAN GULF
KALASH
MANSAROWAR
HEM GIRI
KIRAT DWIP
RED RIVER
TIRJHAS
PAKSHA
PASCHIM SAMUDRA
PRASRAWAN GIRI
PURVA SAMUDRA
PUSPITAK
SURYAVAN MT
VAIDYUTA MT
LANKA
KUNJAR MT
TRILOK
RISHABH MT
NORTHERN SEARCH ROUTE
WESTERN SEARCH ROUTE
EASTERN SEARCH ROUTE
SOUTHERN SEARCH ROUTE

FIG 43

उल्लेख करते हैं (वा०रा० 4·40·23)

क- चाँदी के खानों का देश -

इससे वर्मा के क्षेत्र (शान प्रदेश) का बोध होता है जहाँ चाँदी की खानें पायी जाती थीं। इसकी पुष्टि डाबो ने अपनी पुस्तक में भी की है।[29] इसके पश्चात सुग्रीव समुद्र के भीतर प्रविष्ट हुए पर्वतों, नगरों एवं मन्दराचल की चोटी पर बसे गाँवों में अन्वेषण का सुझाव देते हैं (वा०रा० 4·40·25) । यहाँ मन्दराचल से अभिप्राय वर्मा की प्रमुख अराकान योमा पर्वत श्रेणी से है। जायसवाल एवं तिवारी[30] ने इसे भागलपुर नगर के समीप स्थित मन्दार गिरि पहाड़ी से सम्बद्ध माना है जो कवि के विवरण की श्रृंखला के क्रम में ठीक नहीं लगता है।

तत्पश्चात आदि कवि ने किरात द्वीप वासियों की शारीरिक रचना एवं खान पान आदि का विस्तृत वर्णन किया है (4·40·26-28) ये वे नरमांस भक्षी आदिम जातियाँ थी जो दुर्गम पहाड़ी एवं वनाच्छादित वर्मा एवं तिब्बत के पूर्वी भागों में निवास करती थीं।[31]

ख- यवद्वीप-

इसके बाद सुग्रीव ने यवद्वीप (इण्डोनेशिया पहुँचने के लिए नावों का प्रयोग करने के लिए निर्देश दिया है। यह द्वीप सात राज्यों में बँटा हुआ था तथा इस पर सोने ,चाँदी आदि की खानों के अतिरिक्त विभिन्न रत्नों के भण्डार पाये जाते थे (वा०रा० 4·40·28)। जायसवाल एवं तिवारी[32] के अनुसार यवद्वीप जावा का पुराना नाम है जो सुमात्रा, बोर्नियो सेलीबीज आदि सात बड़े द्वीपों से बना है।

ग-शिशिर पर्वत-

यवद्वीप के आगे शिशिरपर्वत का उल्लेख मिलता है जिस पर देवता और दानव निवास करते थे। यह पर्वत अपने उच्च शिखर से स्वर्गलोक का स्पर्श करता जान पड़ता था (वा0रा0 4.40.31)। यह न्यूगिनी का एक पर्वत शिखर है। यह द्वीप को ओरियन भी कहते हैं जो आर्जन का बिगड़ा हुआ रूप जान पड़ता है।[33]

घ- शोण नदी[x]-

यह हिन्दचीन की एक प्रमुख नदी है जिसे रेडरिवर (य नोकियांग) कहते हैं। वाल्मीकि के अनुसार यह एक लाल जलवाली तीव्रगति वाली नदी थी जिसको पार करने पर सिद्ध चारणों के देश में पहुँचा जा सकता था (वा0रा0 4.40.33-34)। लेटराइट प्रदेशों के बीच से प्रवाहित होने के कारण रेडरिवर का जल हल्का लाल पाया जाता है एवं पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण इसका वेग काफी तेज होता है।

रेड नदी से उत्तर पूर्व जाने पर चीन की सीक्यांग नदी मिलती है जिसकी बहुत सी शाखाएं हैं तथा पहाड़ी क्षेत्रों से निकलती है। इसके पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक गुफाएं पायी जाती थी। उष्ण जलवायु एवं प्रचुर आर्द्रता के कारण इस क्षेत्र में घने जंगल हुए थे ~~एवं टाईफून आदि के प्रभाव के कारण इस क्षेत्र में घने जंगल हुए थे~~ एवं टाइफून आदि के प्रभाव के कारण यहाँ का सागर प्रायः अशान्त रहता था। यहाँ आदि जीव छाया देखकर शिकार करने वाले असुर एवं बड़े भयंकर सर्पों के निवास की बात करते हैं। (वा0रा0 4.40.35-38) वास्तव में यह विवरण फिलीपाइन एवं तैवान आदि द्वीपों का है जिस पर ऐसी असभ्य आदिम

---

x यह भारतीय प्रदेश में वर्णित शोणभद्र (गंगा की सहायक सोननदी नदी) से भिन्न दूसरी नदी है।

जातियाँ निवास करती थीं जो यात्रियों को मारकर उनके मांस का भोजन करती थीं। विशालकाय सर्पों से तात्पर्य प्लेसियोसोर नामक डायनासोरों से है जो अत्यन्त भयानक होते थे एवं इस क्षेत्र में विद्यमान थे। चीन सागर पार करने के बाद वानर सेना लोहित सागर (Yellow sea) में प्रवेश करती है जहाँ उन्हें विशाल शाल्मली वृक्ष एवं विश्वकर्मा द्वारा निर्मित गरुण का निवास स्थान दिखायी पड़ता है (वा०रा० 4·40·38-40)।

ङ- लोहित सागर-

रामायणकालीन लोहित सागर आज का "येलो सी" है जिसका जल ह्वांगहो के पीले लोयस मिट्टी के कारण पीला हो जाता है। इसी प्रकार कूटशाल्मली से आशय कोरिया के भू भाग से है जहाँ प्राचीनकाल में डायनासोर के वंशज निवास करते थे।[34] आगे श्लोकों में इन भीमकाय जीवों का विस्तृत वर्णन किया गया है (वा०रा० 4·40·41-42)।

च- क्षीरोद सागर-

क्षीरोद सागर से अभिप्राय आज के ओखोटस्क सागर से है। शीतल जल एवं हिमखण्डों से परिपूर्ण इस सागर में घने सफेद- बादल विशेषण का प्रयोग किया गया है (वा०रा० 4·40· 47-49)।

छ- ऋषभ पर्वत एवं सुदर्शन सरोवर-

क्षीरोद सागर से आगे ऋषभ पर्वत (सीडन्नी प्लेट) एवं सुदर्शन सरोवर (कोनोटीस्क्य लेक) का उल्लेख किया गया है जिसकेरमणीक स्थानों में देवता,

चारण, यक्ष एवं अप्सराएं विहार करते हैं (वा०रा० 4·40·44-46)। इस विवरण से कम्चटका प्रायद्वीप का बोध होता है।

ज- जलोद सागर-

सुदर्शन सरोवर के उत्तर पूर्व जलोद सागर का उल्लेख किया गया है जिसे आजकल बेरिंग सागर के नाम से जाना जाता है। यहाँ आदि कवि ने वडवामुख के माध्यम से समुद्र के नितल में फूटने वाले ज्वालामुखियों एवं उनके विध्वंसकारी प्रभावों के बारे में जानकारी दी है (वा०रा० 4·40·47-49)।

झ- स्वादु समुद्र-

जलोद सागर से आगे खोज दल को मीठे जलवाला स्वादु समुद्र प्राप्त होता है। यह क्षेत्र बेरिंग जलडमरूमध्य एवं उसके समीप स्थित दक्षिण आर्कटिक सागर पर फैला हुआ था। जहाँ महाकवि ने कनक पर्वत एवं उदयाचल का उल्लेख किया है जो अलास्का पहाड़ी के विवरण से मेल खाता है।[35]

ञ-ध्रुवतारा-

उदयाचल पर्वत के पास कवि ने प्रतीकों के माध्यम से प्राचीन ध्रुवतारा (ड्रैको) का वर्णन किया है जिसके चतुर्दिक तारा मण्डल परिक्रमा करते हुए उसी तरह दिखायी देते हैं जैसे सर्पराज धरणीधर को चारों ओर से सभी प्राणी प्रदक्षिणा करते हैं (वा०रा० 4·40·51-53)। इससे कवि के नक्षत्र ज्ञान का भी पता चलता है।

ट- आर्कटिक वृत्त-

रामायण में इस क्षेत्र का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं किया गया है परन्तु सुग्रीव पूर्वदिशा में खोज हेतु निर्देश देते हुए भूमण्डल के इस अंतिम छोर का जिक्र करते हैं जिसके आगे सूर्य एवं चन्द्रमा का प्रकाश नहीं पाया जाता है। सम्भवतः ध्रुवप्रदेशों की छः माह की रातों के बारे में वानर- राज को जानकारी थी। यही कारण है कि सुग्रीव वानरसेना को शीघ्रता से लौटने की आज्ञा देते हैं एवं आर्कटिक वृत्त पार कर आगे न बढ़ने का सख्त आदेश देते हैं [वा0रा0 4.40.66-68]।

2- दक्षिणी संसार-

वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड के 41 वें सर्ग में प्रस्रवण गिरि के दक्षिण दिशा के पर्वतों, नदियों, जनपदों एवं नगरों का संकेत दिया गया है। इनमें से कुछ की जानकारी इसी शोध- प्रबन्ध के पाँचवे एवं सातवें अध्यायो में दी गयी है जबकि शेष का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है। वानरराज सर्वप्रथम दक्षिण भारत के पर्वतों, नदियों जनपदों एवं प्रमुख नगरों का विवरण देते हैं [वा0रा0 4.41.8-22]। इस संदर्भ में विन्ध्य [विन्ध्याचल] अयोमुख [मलय] एवं महेन्द्र गिरि आदि पर्वतों, नर्मदा, महानदी, गोदावरी , कृष्ण वेणी [कृष्णा] महाभागा [तुंगभद्रा] वरदा [हगारी],कावेरी, ताम्रपर्णी [वैगाई] आदि नदियों [चित्र 5.2] दण्डकारण्य तथा मेकल [मैकाल श्रेणी के इर्दगिर्द छत्तीस गढ़ क्षेत्र] उत्कल [उड़ीसा] दशार्ण [धसान नदी के समीप का बुन्देलखण्ड का क्षेत्र] अवन्ती [उज्जैन] विदर्भ [सतपुड़ा पहाड़ियों के दक्षिण बरार का प्रदेश] ऋष्टिक [मध्यप्रदेश के खानदेश के चतुर्दिक का क्षेत्र] ,माहिषक [मध्य प्रदेश का दक्षिणी पश्चिमी भाग]

बंग , पूर्वी बंगाल, ,पुण्ड्र ,बांग्लादेश में बोगरा के समीप का क्षेत्र ,कलिंग (महानदी डेल्टा से गोदावरी डेल्टा तक का क्षेत्र) आन्ध्र, गोदावरी एवं कृष्णा का डेल्टा क्षेत्र, चोल (कावेरी बेसिन क्षेत्र),पाण्ड्य (तमिलनाडु का दक्षिण क्षेत्र) एवं करल आदि जनपदों का उल्लेख किया गया है (चित्र 7·1)।

क- लंका द्वीप-

ताम्रपर्णी (वैगाई) नदी के सागर संगमसे आगे लंका द्वीप के स्थित होने का संकेत दिया गया है। इसका विस्तार सौ योजन (1300कि·मी·) तक पाया जाता है। यह राक्षस राज रावण का निवास स्थान है एवं मनुष्यों के लिए दुर्गम है (वा0रा0 4·41·23-25)रामायण का यह विवरण वर्तमान की लंका द्वीप की ओर संकेत करता है। यद्यपि संकालिया आदि कुछ विद्वानों ने रामायणकालीन लंका को मध्य प्रदेश में स्थित माना है परन्तु समुद्र से घिरा होना ,दुर्गमता आदि इस विचारधारा को बल नहीं प्रदान करते हैं।

ख- हिन्द महासागर के लघुद्वीप-

लंका से दक्षिण वानरराज सुग्रीव हिन्द महासागर के लघु द्वीपों का संकेत देते हैं।

ख-1-पुष्पक पर्वत-

वाल्मीकि रामायण में इसकी निम्न विशेषताएँ बतायी गयी हैं -

1- यह द्वीप लंका से 100 योजन (1300कि·मी·) की दूरी पर समुद्र के बीच स्थित है।

2- इसे कृतघ्न, नृशंस और नास्तिक पुरूष नहीं देख पाते थे ﴾वा॰रा॰ 4·4·41·30﴿।

3- इस पर अर्द्धदैविक जातियाँ जैसे सिद्ध, चारण आदि निवास करते थे।

उपर्युक्त मिनिकोय द्वीप से मेल खाता है जो लक्षद्वीप श्रृंखला का अंग है एवं भारतीय गणराज्य के अधीन है। यह एक पहाड़ी द्वीप है जिसकी स्थिति अंतः सागरीय कटक पर है। यह भी लंका के तट से लगभग 1000 कि॰मी॰ दूर द०प० में स्थित है। चूँकि इसकी सागर तल से ऊँचाई बहुत कम है अतः यह सामान्य लोगों ﴾जो सामुद्रिक यात्राएं एवं गवेषणाएं नहीं कर सकते﴿ की दृष्टि से अशान्त सागर में ओझल हो जाता है केवल उत्साही एवं सामुद्रिक यात्राओं में आनन्द लेने वाले लोग ही इस तक पहुँच पाते हैं। रामायण काल में इस द्वीप पर अनार्य जातियाँ निवास करती थी जो गायन एवं वादन आदि क्रियाओं में दक्ष थी। इसीलिए आदि कवि ने इन्हे सिद्ध एवं चारण नामों से व्यवहृत किया है।

ख-2-सूर्यवान पर्वत एवं वैद्युत पर्वत-

रामायण में इस पर्वत श्रेणी की स्थिति पुष्पितक पर्वत से 14 योजन ﴾180 कि॰मी॰﴿ दक्षिण बतायी गयी है। इस पर जाने का मार्ग बड़ा ही दुर्गम बताया गया है ﴾वा॰रा॰ 4·41·31﴿।

सूर्यवान पर्वत के ही समीप वैद्युत पर्वत स्थित है जहाँ के वृक्ष सभी ऋतुओं में मनोरम शोभा से सम्पन्न ﴾सदाबहार﴿ रहते हैं ﴾वा॰रा॰ 4·41·32﴿।

ये दोनों पर्वत ओणयों मालद्वीप द्वीप समूह के पहाड़ियों के अंग हैं जिसकी दूरी वाल्मीकि रामायण में बतायी गयी है वर्तमान दूरी से मेल खाती है। भूमध्यरेखा के समीप स्थित होने एवं उष्णार्द्र जलवायु के कारण इन पर घने सदाबहार वन पाये जाते हैं जिनमें वर्ष भर फूल-फल लगे रहते हैं। यही कारण है कि वानरराज सुग्रीव अपनी सेना को वहाँ फलफूल खाने एवं मधु पीने का आदेश देते हैं।

ख-3-कुन्जर पर्वत-

रामायण में इसे नेत्रों और मन को अत्यन्त प्रिय लगने वाला अर्थात् प्राकृतिक शोभा से सम्पन्न सदा हरित आवरण से युक्त बताया गया है। इस पर महर्षि अगस्त्य का सुन्दर भवन स्थित है जिसका विस्तार एक योजन (13 कि०मी०) तथा ऊँचाई दस योजन (130 कि०मी०) है। इसी क्षेत्र में सर्पों के राजा वासुकि की राजधानी भोगवती पुरी स्थित है। जिसकी रक्षा महान भयंकर सर्प किया करते हैं (वा०रा० 4.41.34-38)। उपर्युक्त विवरण चैगोस द्वीप समूह का है जिस पर भूमध्यरेखीय जलवायु के कारण सदैव हरे भरे वन पाये जाते हैं जिससे वह द्वीप अत्यन्त रमणीय लगता है। पर्वतों में स्थित प्राकृतिक कन्दराओं को महाकवि ने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित अगस्त्य का भवन बताया है। भूमध्यरेखीय जलवायु के कारण जंगलों में बड़े-बड़े सर्प पाये जाते हैं।

ख-4-ऋषभ पर्वत-

रामायण के अनुसार यह पर्वत कुंजर पर्वत के दक्षिण स्थित है। यहाँ पर लाल चन्दन के वृक्ष पाये जाते हैं तथा क्षेत्र रत्नों से भरा पड़ा है। यहाँ पाँच गंधर्व

राक्षसों का देश है (वा०रा० 4.41.39-43)। उपर्युक्त विवरण मालदीव द्वीप का है जो प्राचीनकाल से ही भारतीय उपनिवेश रहा है। वहां की जलवायु सुहावनी है। आदि कवि ने यहां गंधर्वों का निवास बताया है सम्भवतः आजकल के हिप्पियों की तरह के लोग थे जो नृत्यगान में रुचि रखते थे। रामायण में इन्हें नृत्यगान में रुचि रखने वाला एवं कामुक बताया गया है। ये लोग प्रायः वन्य उपजों पर आश्रित थे जिनको नष्ट करने पर ये संघर्षशील हो जाया करते थे। इसीलिए कपिराज ने यहां फल आदि खाने के लिए मनाही की थी।

७-5-पितृ लोक (यमराज की राजधानी)-

इसकी स्थिति ऋषभ पर्वत के आगे बतायी गयी है (वा०रा० 4.41.44)। यह विवरण मेडागास्कर द्वीप का है जहां तक रामायण काल में पहुंचना एक कठिन कार्य था। यही कारण है कि इसे अगम्य बताया गया है। मेडागास्करकेदक्षिण अनन्त समुद्र के विस्तार के कारण ही इसके आगे के क्षेत्र को अन्धकारमय एवं दुर्गम बताया गया है।

मेडागास्कर की जलवायु आज भी मानव स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं है। रामायण काल में यह द्वीप मानव के प्रभाव से अछूता रहने के कारण सम्भवतः और भी अनुपयुक्त रहा होगा। आज भी अमेजन बेसिन एवं कांगोबेसिन आदि क्षेत्रों को " मानव का कब्र " बताया जाता है। मेडागास्कर की जलवायु में अत्यधिक उष्णता, अधिक आर्द्रता एवं घनी वनस्पति के कारण अनेक प्रकार की बीमारियों के फैलने की आशंका रहती है। यही कारण है कि इसे यमराज की

राजधानी (मृत्यु का घर) बताया गया है।

3- पश्चिमी संसार-

वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड के 42वें सर्ग में कपिराज सुग्रीव ने वानर यूथपति सुषेण के संरक्षण में पश्चिम दिशा में सीता के अन्वेषण हेतु वानरसेना को प्रेषित करते हुए मार्ग में पड़ने वाले भौगोलिक भूदृश्यों का संक्षिप्त परिचय देते हैं। इस संदर्भ में वानरराज सर्वप्रथम चन्द्रचित्र (उत्तरी महाराष्ट्र), सुराष्ट्र (गुजरात) ,अवन्ती (मालवा पठार) कुक्षि (धार क्षेत्र) बाह्लीक (बलूचिस्तान) अभीलीप (मकरान क्षेत्र) आदि जनपदों मुरचीपत्तन(मुजीरिस या क्रैंगनूर) जटीपुर (जेटपुर (गुजरात) आदि नगरों पुन्नाग (नागफनी) बकुल (मौलश्री) उद्दालक (लसोड़ा) तमाल,नारिकेल (नारियल),केतक (केवड़ा) के वृक्षों से सुशोभित पश्चिमी घाट क्षेत्र,पश्चिमी वाहिनी नदियां(नर्मदा, ताप्ती आदि के क्षेत्र, तपस्वियों के वास स्थलों, वनस्थली, अलक्षित वन, (अलेय,पहाड़ियों के क्षेत्र), सिन्धु डेल्टा क्षेत्र का उल्लेख करते हैं (वा0रा0 4·42·7-15)- जो भारत के पश्चिमी भाग में स्थित हैं।

क- सोम गिरि पर्वत-

रामायण काल में किरथर पर्वत को सोमगिरि पर्वत कहते थे। इस पर्वत की अनेक श्रेणियां हैं जिसके कारण कवि ने इसे शतशृंग वाला बताया है (वा0रा0 4·42·15)। हजारों वर्ष पूर्व यह क्षेत्र अत्यधिक आर्द्रता सम्पन्न एवं घने वनों से आच्छादित था। हिंगलाज देवी के मन्दिर - जो किरथर श्रेणी के

पश्चिम स्थित है- के चतुर्दिक का क्षेत्र प्राचीनकाल में गोपालन के लिए प्रसिद्ध था। सम्भवतः बल असुर, इन्द्र की गायों का अपहरण इसी क्षेत्र से किया था। गोपालन एवं दूध की अधिकता के कारण इस क्षेत्र को प्राचीनकाल में क्षीर क्षेत्र या क्षीरस्थल भी कहते थे जो धीरे-धीरे बिगड़कर किरथर बन गया।[36]

ख- सिंह नामक पक्षी -

सोमगिरि पर्वत के रमणीय शिखरों पर सिंह नामक पक्षी रहते हैं, जो तिमि नामवाले विशालकाय मत्स्यों और हाथियों को भी अपने घोसलों में उठा ले जाते हैं (वा०रा० 4·42·16-17)।

जायसवाल एवं तिवारी[37] ने अपने लेख में इन पक्षिराज सिंहों की तुलना रूक पक्षी से की है एवं बताया है कि ये पक्षी समुद्र की बड़ी-बड़ी मछलियों को भी अपने घोसलों में उठा ले जाया करते थे। धीरे-धीरे जलवायु के शुष्क हो जाने के कारण ये पक्षी या तो नष्ट हो गये या अन्यत्र प्रवास कर गये। इनका अंतिम प्रवास मेडागास्कर द्वीप था जिसकी पुष्टि मार्कोपोलो के यात्रा अभियान से होती है।[38]

ग- पारियात्र पर्वत (सुलेमान पर्वत)-

इसके बाद पारियात्र पर्वत क्षेत्र का वर्णन है जिसके सुनहले शिखर समुद्र के बीच से दिखायी देते हैं। इसका विस्तार सौ योजन (1300कि·मी·) है इस पर अत्यधिक मीठे फल पाये जाते हैं जिनकी रक्षा बलशाली गंधर्व करते हैं

जिनको जीतना कठिन कार्य है (वा0रा0 4·42·19-24)। उपर्युक्त वर्णन सुलेमानपर्वत से मेल खाता है जो ऋग्वैदिक काल में समुद्र के मध्य स्थित था। इन दिनों में सम्पूर्ण राजस्थान तथा दक्षिणी पंजाब का क्षेत्र समुद्र के जल से आप्लावित था।[39] विशालता के कारण इसे सौ योजन (1300 कि·मी·) लम्बा बताया गया है। इस पर्वत के पाद प्रदेश में गन्धर्व देश स्थित था। रामायणकाल में राम के भाई भरत गन्धर्वों को परास्तकर तक्षशिला एवं पुष्कलावती नगर बसाये थे (वा0रा0 7·101·10-11)। इन नगरों का संकेत प्राचीकालीन ग्रन्थों में मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि क्वेटा के समीप का शिखर ही पारियात्र पर्वत था[40] एवं कन्दहार प्रान्त ही प्राचीनकाल का गन्धर्व प्रदेश था। इस क्षेत्र के बलवान अफगान ही दुर्जय गन्धर्व थे। आज भी कलात पठार पर एक नगर पाया जाता है जिसे "गन्धाव" नाम से जाना जाता है। यह क्षेत्र आज भी अंगूर तथा मीठे रसदार फलों के लिए प्रसिद्ध है।[41]

घ- वज्र पर्वत (मकरान पहाड़ी)-

पारियात्र पर्वत के पास ही वज्रनाम से प्रसिद्ध एक बहुत ऊँचा पर्वत है जो नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं से ढका है। वज्रगिरि वैदूर्यमणि के समान नीलवर्ण का एवं वज्रमणि (हीरे) के समान कठोर है। यह पर्वत सौ योजन (1300 कि·मी·) के घेरे में प्रतिष्ठित है एवं इस पर बहुत सी गुफाएँ है (वा0रा0 4·42·25-26)।

यह समुद्र तटवर्ती मकरान पहाड़ी है जो ईरान के समुद्र तट के सहारे स्थित है। "कुह-ई-वज्रबन्द" पहाड़ी के चारों ओर का क्षेत्र सदा रसदार

फलों एवं घने वनस्पति आवरण से आच्छादित रहता है। संस्कृत शब्द वज्र का अर्थ,हीरा होता है। कुह-ई- वज्रवन्द" शब्द से भी यह आभास मिलता है कि अतीत में यह प्रदेश हीरे आदि कठोर धातुओं के लिए प्रसिद्ध था। आज भी ईरान का यह प्रदेश खाद और फिरोजा के निर्यात के लिए प्रसिद्ध है जो प्राय: इसी क्षेत्र से प्राप्त होता है।

ड- चक्रवान पर्वत {होरमुज जल सन्धि}-

समुद्र के चतुर्थ भाग में चक्रवान नामक पर्वत है। यहीं विश्वकर्मा ने सहस्त्रार चक्र का निर्माण किया था। वहीं से पुरूषोत्तम भगवान विष्णु पञ्चजन और हयग्रीव नामक दानवों का वध करके पान्चजन्य शंख और सहस्त्रार सुदर्शन चक्र प्राप्त किये थे { वा0रा0 4·42·27-29}।

उपर्युक्त विवरण फारस की खाड़ी एवं उसमें स्थित होरमुज जलसन्धि की ओर संकेत करते हैं । यहीं स्थित बन्दर- अब्बास नगर जिसे यूनानी लोग हरमुजिया कहते थे:, पश्चिम दिशा में जाने वाले दल के रास्ते में पड़ा था। प्राचीनकाल में यह प्रदेश काले रंग वाले दानवों से आबाद एवं प्राचीन संस्कृति के विकास का केन्द्र था।

होरमुज जलसंधि में होरमुज, हन्जम, क्यूशिम और लरक आदि द्वीप पाये जाते हैं जो निमज्जित पर्वत श्रेणियों के शिखर हैं। होरमुज द्वीप, मुख्य-स्थलखण्ड के बन्दर अब्बास नगर से बहुत समीप स्थित है। सम्भवत: हयग्रीव दानव जो प्रसिद्ध सुदर्शन चक्र का स्वामी था, के नाम पर इस स्थान का नाम हरमुजिया पड़ा।-

इसी प्रकार श्वेतवर्ण वाले पञ्चजन राक्षसों से प्राप्त होने के कारण विष्णु की शंख का नाम पाञ्चजन्य पड़ा।[42] यहाँ फारस की खाड़ी के गर्म जल में शंख उत्पन्न करने वाले समुद्री जीव रहते हैं। सामुद्रिक स्थिति होने के कारण इन क्षेत्रों की जलवायु स्वास्थ्य वर्धक एवं पर्यटन के लिए उपयुक्त है, इसलिए इन शिखरों को रमणीय बताया गया है। इसी प्रकार यहाँ के लोगों के घोड़ों से अधिक लगाव के कारण इन्हें हयग्रीव कहा गया है।[43]

च- वराह पर्वत [जैग्रोस पर्वत की कुह -ई- दीनार श्रेणी]-

चक्रवान पर्वत के आगे समुद्र की अगाध जल राशि में सुवर्णमय शिखरों वाला वराह नाम पर्वत है जिसका विस्तार चौसठ योजन [820 कि॰मी॰] है [वा॰रा॰ 4·42·30]। यह जैग्रोस पर्वत की कुह- ई- दीनार श्रेणी है जो ईरान के द॰ तट के सहारे फैली हुई है तथा आर्मीनिया गाँठ में मिलती है। अमरकोश में "वाराह" का एक पर्यायवाची "दन्स्त्री" भी होता है। दीनार इसी का बिगड़ा रूप लगता है।[44]

छ- प्राग्ज्योतिष पुर [नक्श- ए- रुस्तम]-

पश्चिमी दल ईरान के बुशीर और शीराज नगरों से होता हुआ पर्सेपोलिस [Persepolis] पहुँचता है जो सम्भवतः रामायणकालीन प्राग्ज्योतिष पुर है जो दुष्टात्मा नरक नामक दानव का निवास स्थान था [वा॰रा॰ 4·42·31]। पर्सेपोलिस से लगभग 6 कि॰मी॰ उत्तर नेक्रोपोलिस [Necropolis] जिसे आज नक्श-ए-रुस्तम कहते हैं, नरक की राजधानी थी।[45]

ज- मेघ पर्वत (एलबुर्ज पर्वत)-

पारात्र पर्वत से पश्चिम सुवर्णमय मेघ पर्वत स्थित है जिसमें दस हजार झरने है एवं जिसके चारो ओर हाथी, सूअर, सिंह और व्याघ्र आदि निवास करते हैं (वा0रा0 4·42·33-35)।

उपर्युक्त विवरण एलबुर्ज पर्वत की ओर संकेत करता है जिसकी स्थिति जैग्रास पर्वत के उत्तर एवं कैस्पियन सागर के दक्षिण में पायी जाती है। इसका सागर तटीय भाग सीधा ढालू नुमा है जिससे इसमें अनेक जलप्रपात पाये जाते हैं। इस पर्वत के उत्तरी किनारों के वर्ष भर बादलों से आच्छादित रहने तथा वृक्षों की हरीतिमा के कारण कवि ने इसे मेघवान नाम दिया है। भारतीय धर्मग्रन्थों में इन्द्र को वर्षा का स्वामी बताया गया है। सम्भवतः इसीलिए इसे मेघ पर्वत कहा गया है। देवताओं के प्रपितामह कश्यप ऋषि इसी क्षेत्र के निवासी थे जिनके नाम पर सागर का नाम कैस्पियन पड़ा। यही स्थान आर्यों की मूल भूमि है जहाँ से इनका प्रसार विभिन्न दिशाओं में हुआ। कश्यप की अनेक पत्नियों में से अदिति ने देवों, दिति ने दैत्यों, दनु ने दानवों तथा विनिता ने विशाल पक्षी गरुण को जन्म दिया। टर्की में आज भी "कश्यप" के नाम का एक नगर स्थित है जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है। प्राचीन काल में एलबुर्ज पर्वत एवं कैस्पियन सागर के मिलन बिन्दु पर घने जंगल पाये जाते थे जिसमें हाथी, सूअर, सिंह, व्याघ्र आदि जीव निवास करते थे। सागरीय प्रभाव के कारण यहाँ का दृश्य सुन्दर था जिसके कारण ही इसे रमणीय बताया गया है।

झ- सोने के साठ हजार पर्वत-

मेघ पर्वत के पश्चिम सोने के साठ हजार पर्वत स्थित हैं जो सूर्य के समान कान्ति से देदीप्यमान हैं और सुन्दर फूलों से भरे हुए वृक्षों से सुशोभित हैं (वा0रा0 4.42.36-37)। आर्मीनिया की गांठ पर एलबुर्ज, कैकस, टॉरस और पाण्टिक श्रेणियाँ कई ओर से आकर मिलती है तथा इसमें कई बर्फीली चोटियाँ हैं जिनपर सूर्य का प्रकाश पड़ने से स्वर्ण के समान दीप्त दिखायी देती है। विस्तृत पठारी क्षेत्र होने के कारण इनमें अनेकों चोटियाँ पायी जाती हैं।

ञ-मेरु पर्वत (माउण्ट अरारात)-

इन पर्वतों के मध्य में पर्वतों का राजा गिरि श्रेष्ठ मेरु विराजमान है जिसे पूर्व काल में सूर्य देव ने प्रसन्न होकर वर दिया था कि जो देवता, दानव गन्धर्व आदि उसके ऊपर निवास करेंगे, वे सुवर्ण के समान कान्तिमान और सूर्य के भक्त हो जायेंगे। विश्वदेव, वसु, मरुद्गण तथा अन्य देवता सायंकाल में इस पर्वत पर आकर सूर्यदेव की उपासना करते हैं। इनके द्वारा भली भाँति पूजित होकर भगवान सूर्य सब प्राणियों की आँखों से ओझल होकर अस्ताचल को चले जाते हैं (वा0रा0 4.42 38-42)।

उपर्युक्त वर्णन माउण्ट अरारात का है जिसकी सागर तल से ऊँचाई 16945 फीट (5165 मीटर) है। इसे आर्मीनियन मेसिस- लर्न (विशाल पर्वत), टारटार्स एवं तुर्क आग्रदाघ (उत्तुंग शिखर) और परसियन "कुह- इ-नूह" कहते हैं।[46] यह दिन में सफेद, शाम को गुलाबी तथा चन्द्रमा के प्रकाश में नीला दिखायी देता है[47]

~~प्रजातीय~~ प्रजातीय दृष्टि से आर्मीनियन भूमध्य सागरीय लोगों से मिलते जुलते हैं और इनका रंग एवं बनावट टार्टरों तथा पर्शियनों से नितान्त भिन्न है।[48]

ट- माउण्ट अरारात के आकाश में नक्षत्रों का वर्णन -

माउण्ट अरारात की ऊँचाई को देखकर वाल्मीकि इस पर विश्वेदेव, वसु, मरुद्गण तथा अन्य देवताओं द्वारा सूर्य की पूजा किये जाने का संकेत दिया है।

उपर्युक्त विवरण माउण्ट अरारात के आकाश में नक्षत्रों की स्थिति की ओर संकेत देता है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा के मार्ग को 27 बराबर भागों में बाँटा जाते हैं। इनमें से प्रत्येक भाग $13^0 20^1$ के बराबर होता है। प्रत्येक भाग एक मुख्य नक्षत्र से सम्बन्धित होता है जिसका एक स्वामी होता है।[49] उत्तर आषाढ़ नक्षत्र अपने देवता विश्वेदेव के द्वारा संगित्त रूप में रहता है। अभिजित का नक्षत्र समूह धनिष्ठा के स्वामित्व में चमकते हैं जिसका स्वामी वसु होता है। पश्चिमी क्षितिज बुद्ध के कई नक्षत्रों के साथ चमकते हैं जो मरुत देव से शासित होते हैं। माउण्ट अरारात की स्थिति $39^0 45^1$ उत्तर एवं 44^0 15^1 पूर्व पर है जहाँ पर गर्मी का सूर्य प्रायः 8·30 बजे शाम को अस्त होता है। सितम्बर और अक्टूबर के महीने में आर्मीनिया में ये तारे उसी समय दिखायी देते हैं जब सूर्य पश्चिमी क्षितिज में अस्त होने लगता है। इसे देखकर ऐसा लगता है मानों ये सभी नक्षत्रगण माउण्ट अरारात पर एकत्रित होकर सूर्यदेव की उपासना कर रहे हैं।

3- अस्ताचल पर्वत (अनातोलियापठार का पश्चिमी भाग)-

मेरु पर्वत से दस हजार योजन (129000 कि०मी०) की दूरी पर अस्ताचल पर्वत स्थित है जिसे सूर्यदेव आधे मुहूर्त (20 मिनट) में पूरा कर लेते हैं (वा०रा० 4·42·43)। इस पर्वत पर विश्वकर्मा का बनाया हुआ एक बड़ा दिव्य भवन है, जो सूर्य के समान दिप्तिमान दिखायी देता है (वा०रा० 4·42·44)। नाना प्रकार के पक्षियों से युक्त अनेक वृक्ष इसकी शोभा बढ़ाते हैं। यह पाशधारी महात्मा वरुण का निवास स्थान है (वा०रा० 4·42·45)।

उपर्युक्त विवरण टर्की के पश्चिमी तट के किनारे स्थित इजमिर नगर का है जो प्राचीन काल से ही एक प्रमुख बन्दरगाह रहा है। माउन्ट अरारात से स्मर्नी के बीच की दूरी 1450 कि०मी० है जिसे सूर्य लगभग एक घण्टे में पूरा करते हैं। यह क्षेत्र भूमध्यसागरीय फलों के वृक्षों से परिपूर्ण है जिससे वहाँ अनेक पक्षी चले आते हैं। भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार वरुण को पश्चिम दिशा का लोकपाल माना जाता है। एजियन सागर के तटों के किनारे रहने वाले लोगों द्वारा पश्चिमी भू- भाग को "एरब" (डूबते सूरज का देश) कहा जाता था[50] जिससे महर्षि वाल्मीकि के विचार की पुष्टि होती है। ऐसालगता है कि रामायणकाल में यूरोप के विशाल क्षेत्र पर सभ्यता का प्रसार नहीं था एवं इस भू-भाग के बारे में लोगों को जानकारी नहीं थी, यही कारण है कि वानरराज सुग्रीव अपने खोज दल को आगे न बढ़ने का निर्देश देते हैं (वा०रा० 4·42·50-51)।

4- उत्तरी संसार-

वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धाकाण्ड के 43वे सर्ग में महर्षि वाल्मीकि ने वानरराज सुग्रीव के माध्यम से उत्तरी दिशा में स्थित देशों, पर्वतों

नदियों आदि का वर्णन किया है। इस संदर्भ में सर्वप्रथम सुग्रीव भारत की सीमा में स्थित पुलिन्द (जबलपुर के पास का विन्ध्य क्षेत्र), पौरवा (निचला गंगा-यमुना द्वाबा), शूरसेन (मथुरा के पश्चिम का क्षेत्र), प्रस्थल (सिन्धु डेल्टा क्षेत्र), भरत (पंचनद का क्षेत्र), मद्र (झेलम से रावी के बीच का क्षेत्र) एवं दरद (गिलगित हुंजा के बीच का क्षेत्र) आदि जनपदों, हिमालय के क्षेत्र के लोध्र एवं पद्मक की झाड़ियों एवं देवदार के जंगलों में सोमाश्रम (बद्रीनाथ के पास का सोमकुंड एवं सोमतीर्थ क्षेत्र), कालपर्वत (बद्रीनाथ एवं माना दर्रे के बीच का क्षेत्र), सुदर्शन पर्वत (लक्ष्मीवान), देवसख पर्वत (माना दर्रे के समीप का क्षेत्र) एवं कैलाश पर्वत के समीप क्षेत्रों के अन्वेषण का सुझाव देते हैं। (वा०रा० 4·43·11-18)

क- निर्जन मैदान (तिब्बत का पठार)-

देवसख पर्वत से आगे जाने पर एक सुनसान मैदान स्थित है जो सब ओर से सौ योजन (1300 कि·मी·) विस्तृत है। वहाँ नदी, पर्वत, वृक्ष और सब प्रकार के जीव जन्तुओं का अभाव है। यह क्षेत्र दुर्गम एवं रोंगटे खड़े कर देने वाला है (वा०रा० 4·43·19-20)।

उपर्युक्त विवरण तिब्बत के पठारी प्रदेश का है। यह एक विस्तृत चौरस पठार है जिसकी समुद्र तल से ऊँचाई 3600 से 4850 मीटर तक पायी जाती है। यह एक ऊँची -नीची भूमि, अनुपजाऊ मिट्टी तथा विरल कटीली झाड़ियों वाला प्रदेश है (क्षेत्रफल 2100,000 वर्ग कि·मी·)। इसकी पश्चिम से पूर्व की लम्बाई 2400 कि·मी· तथा उत्तर से दक्षिण की चौड़ाई 600-800 कि·मी· है।[51] इस पर वर्ष भर तीव्रगति से बहने वाली रूखी हवाएं चलती हैं। इसी से इस क्षेत्र को

दुर्गम बताया गया है।

छ- कैलाश पर्वत (कैलाश मानसरोवर प्रदेश)-

निर्जन क्षेत्र के बाद श्वेत वर्ण का कैलाश पर्वत स्थित है जिस पर विश्वकर्मा का बनाया हुआ श्वेत बादलों सा दिखायी देने वाला कुबेर का रमणीय महल रहता है। इसके समीप ही एक बहुत बड़ा सरोवर है जिसमें कमल और उत्पल प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं तथा जिसमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी भरे रहते हैं एवं अप्सराएं जल क्रीड़ा करती हैं (वा०रा० 4.43.20-23)। उत्तर काण्ड के विवरण के आधार पर कैलाश पर्वत में नदियों में श्रेष्ठ मंदाकिनी बहती है, जिसका जल सूर्य के समान प्रकाशित एवं सुवर्णमय कमलों, कुमुदों ,उत्पलों और विभिन्न सुगन्धित पुष्पों से आच्छादित है। इस पर्वत पर देवता, गन्धर्व ,अप्सरा,नाग और किन्नर आदि दिव्य प्राणी निवास करते हैं।

उपर्युक्त वर्णन कैलाश मानसरोवर क्षेत्र का है जहां हिमानियों द्वारा निर्मित अनेक प्राकृतिक गुफाएं पायी जाती हैं जो हिम से आच्छादित होने के कारण श्वेतलगती हैं। सूर्य की किरणों के सम्पर्क से यह क्षेत्र सुवर्णमय हो जाता है। इसी पर्वत के समीप (जिसका नाम कवि ने नहीं बताया है) मानसरोवर झील है। इससे कई छोटी- छोटी नदियां निकलती हैं। कवि ने हिमालय के इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों को यक्ष,किन्नर एवं गन्धर्व आदि नामों से व्यवहृत किया है जो सम्राट अशोकके समय तक इसी नाम से जाने जाते थे [52] यहां की स्त्रियों को अप्सरा कहा गया है जो सम्भवतः इनके उन्मुक्त यौन सम्बन्ध तथा बहुपतित्व की प्रथा से सम्बन्धित है।

ग- क्रौन्च गिरि, काम शैल एवं मानस-

कैलास -मानसरोवर क्षेत्र में अन्वेषण के बाद वानरराज सुग्रीव अपनी सेना को क्रौन्च गिरि, (काम शैल) एवं मानस क्षेत्र में जाने का निर्देश देते हैं। इस क्षेत्र में बहुत सी गुफाएँ, चोटियाँ, कन्दराएँ एवं नितम्ब (ढाल) प्रदेश हैं तत्पश्चात वृक्षों से रहित कामशैल एवं पक्षियों से सुशोभित मानस का दर्शन होता है जहाँ भूतों देवताओं एवं राक्षसों का भी जाना नहीं सम्भव नहीं है (वा0रा0 4.43.27-28)।

उपर्युक्त विवरण कामेट शिखर (7756 मी0) एवं मानादर्रा (5611 मी0) की ओर संकेत करते हैं जिन्हें कवि ने क्रमशः कामशैल एवं मानस कहा है। यह क्षेत्र बहुत ऊबड़-खाबड़ है एवं हिमरेखा से ऊपर होने के कारण वनस्पति विहीन है। यहाँ जाड़ों में साइबेरिया क्षेत्र से प्रवासी पक्षियाँ आती हैं जिनमें क्रौन्च एक है। यह क्षेत्र अत्यन्त दुर्गम है एवं इससे यात्रा करना कठिन कार्य है। हिमालय की ऊँची ढाल श्रेणियों को कुछ निश्चित दर्रों के द्वारा ही पार किया जा सकता है जिनकी ऊँचाई भी 5000 मीटर से अधिक है। आज भी इन दुर्गम क्षेत्रों की प्राकृतिक गुफाओं में सिद्ध एवं योगी पुरुष निवास करते हैं।

घ- मैनाक पर्वत-

क्रौन्च पर्वत से पश्चिम मैनाक पर्वत स्थित है जो मय दानव का निवास स्थान है। यहाँ की स्त्रियाँ घोड़े की तरह मुख की हैं। यह पूर्व हिमाचल प्रदेश की शिवालिक श्रेणी का भाग है। जायसवाल एवं तिवारी[52] के अनुसार हिमाचल प्रदेश को प्राचीन काल में "किंपुरुष" अथवा "किन्नर देश" कहा जाता था। यहाँ की

स्त्रियाँ किन्नरी कहलाती थीं जो अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध थीं । अश्वाकार मुखाकृति के कारण कोश में इन्हें अश्वमुखी कहा है। स्थानीय मान्यताओं के आधार पर रामपुर बुशहर एक असुरराज की राजधानी थी। इन्हीं राजाओं ने अपनी ग्रीष्म कालीन निवास स्थल हिमाचल प्रदेश के रमणीय क्षेत्र में बनाया था।

ड- उत्तर भारत, पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान-

आदि कवि ने मैनाक पर्वत से आगे के मार्ग का वर्णन क्रमबद्ध रूप से नहीं किया है परन्तु प्रारम्भ में ही अरट्ट (पंजाब), मद्र (द0 पंजाब), दरद (उत्तरी काश्मीर), मिलिन्द (कुभा क्षेत्र) यवन (उत्तरी अफगानिस्तान), कम्बोज (पामीर क्षेत्र), ऋषिक (सिक्यांग), हूण (कोकोनार झील क्षेत्र), चीन एवं परम चीन (चीन) शकद्वीप (मंगोलिया) आदि के उल्लेख से उ0 भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, रूसी तुर्किस्तान, मध्य एशिया, पश्चिमी चीन एवं मंगोलिया आदि का बोध होता है।

जायसवाल एवं तिवारी[53] के अनुसार सुग्रीव वानरसेना को नागर-शिलोगत - कुक्का- ताश- करघन- काशगर मार्ग से जाने का निर्देश नहीं देते हैं जिसका अनुसरण चीनी यात्री ह्वेनसांग (624 ए०डी०) और इतालवी यात्री (मार्कोपोलो) ने किया था क्योंकि एक विशाल सेना का उस मार्ग से गुजरना कठिन था। अतः वानरों का दल पंजाब की पाँच नदियों को लाँघकर अटक के समीप सिन्धु को पारकर काबुल नदी (कुभा) के सहारे चलता हुआ काबुल (कुभा) पहुँचता है जो अफगानिस्तान का एक प्राचीन नगर है।

घ- मध्य एशिया-

बल्ख से उत्तर ओम्स दल आमू दरिया पारकर बुखारा- समरकन्द खोकन्द- फरगना-काशगर- यारकन्द- खोतान -करेवेन- गोलनो- कुलान होता हुआ कोकोनोर झील के तट पर पहुँचता है। वहाँ से चीन, मंगोलिया, [illegible], साइबेरिया होता हुआ, यह बालखश झील के किनारे पहुँचता है जिसे महर्षि ने वैखानस सर के नाम से व्यवहृत किया है।

ङ- वैखानस सर (बालखश झील)-

वाल्मीकि रामायण में वैखानस सरोवर का सुन्दर वर्णन किया गया है जिसमें सुवर्णमय कमल एवं प्रातःकालिक सूर्य के समान सुन्दर हंस पाये जाते हैं। इसके किनारे सिद्ध, वैखानस एवं बालखिल्य नामक तपस्वी निवास करते हैं तथा इसी क्षेत्र में कुबेर का वाहन सार्वभौम नामक हाथी हथिनियों के झुंड के साथ विचरण करता है (वा०रा० 4.43.32-34)।

उपर्युक्त विवरण बालखश झील से सम्बन्धित है जिसके तटों के सहारे रामायणकाल में बालखिल्यों एवं वैखानस नामक तपस्वियों के समुदाय रहते थे। आज के झील के दक्षिणी पश्चिमी तट के सहारे स्थित वैखानस नगर सम्भवतः इसी तथ्य की ओर संकेत देता है। इसी प्रकार प्राचीन काल में मध्य एशिया के क्षेत्र में हाथी पाये जाने के संकेत मिले हैं एवं मस्तोदन पिट (Mustodan Pit) में तो इनके जीवाश्म भी उपलब्ध हुए हैं।[54]

ख- ध्रुव ज्योति-

उस सरोवर को लांघकर आगे जाने पर सूना आकाश दिखायी देता है जिसमें सूर्य, चन्द्रमा तथा तारों के दर्शन नहीं होते हैं। वहाँ बादल भी नहीं दिखायी देते हैं तथापि उस देश में रहने वाले स्वतःसिद्ध देवोपम महर्षियों की अंगप्रभा से सूर्य का सी प्रकाश प्रस्फुटित होता रहता है (वा0रा0 4.43.35-36)।

उपर्युक्त विवरण रूस के साइबेरिया क्षेत्र की ओर संकेत करता है जहाँ शीतकाल लम्बा एवं ठण्डा होता है। वहाँ दिन में भी सघन कुहरा छाया रहता है एवं रात्रि में चन्द्रमा, तारे एवं बादल नहीं दिखायी देते हैं। आदि कवि ने यहाँ जिस प्रकाश का उल्लेख किया है, वह उत्तरी ध्रुव ज्योति (Aurore Boreals) है जो इस क्षेत्र के व्योममण्डल को प्रकाशित करती रहती है, यह पीले श्वेत रंग की प्रकाशपुंज है जिसमें कभी-कभी हरा, लाल, गुलाबी, एवं नीला रंग मिला होता है। (~~वोल्गा~~)

ग- शैलोदा (वोल्गा) नदी-

इसके उपरान्त शैलोदा (वोल्गा) नामक नदी का वर्णन मिलता है जिसके ~~कारण~~ तटों पर कीचक (वंशी की सी ध्वनि करने वाले) बाँस मिलते हैं। इनके सहारे सिद्ध पुरुष नदी को पारकर उत्तरी कुरु की पुण्य भूमि में प्रवेश करते हैं (वा0रा0 4.43.37-38)।

७- उत्तर कुरु-

शैलोदा (वोल्गा) नदी को पार करने पर उत्तर कुरु देश मिलता है जहाँ केवल पुण्यात्मा पुरुषों का वास है। महर्षि वाल्मीकि ने इस क्षेत्र के जलाशयों, नदियों, निवासियों एवं समृद्धि आदि का विस्तृत वर्णन किया है (वा० रा० 4.43.38-52)।

यह वर्णन सोवियत संघ के यूराल एवं मध्य यूरोपीय क्षेत्र की ओर इंगित करता है जो आज भी सोवियत संघ का सर्वाधिक खनिज सम्पन्न, जन संकुल एवं समृद्ध क्षेत्र है। अतीत में यह नार्डिक प्रजाति के लोगों का निवास स्थान था जिनकी परम्पराएं आर्यों से मिलती जुलती थी। महाकवि ने इसीलिए इसे पुण्य क्षेत्र की संज्ञा दी है एवं यहाँ के निवासियों के लिए आदर सूचक शब्दों का प्रयोग किया है।

८- पयसांनिधि एवं सोमगिरि (White sea एवं Somokovskaya) -

उत्तर कुरु के उत्तर जाने पर क्षीर सागर मिलता है जिसके मध्य में सोमगिरि नामक एक ऊँचा सुवर्णमय पर्वत स्थित है। स्वर्गलोक जाने वाले तथा इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक के वासी देवता आदि इस पर्वत का दर्शन करते है। यह देश सूर्य से रहित होता हुआ भी सोमगिरि की प्रभा से सदा प्रकाशित रहता है। (वा० रा० 4.43.53-55)

यहाँ पयसांनिधि से तात्पर्य क्षीर सागर से है जो श्वेत सागर (White sea) का द्योतक है तथा सोमगिरि कोलनप्रायद्वीप की सोमोकोवस्काया

(Somokovskaya) पहाड़ी है। पौराणिक मान्यताओं के आधार पर क्षीरसागर में भगवान विष्णु शेषनाग की शय्या पर शयन करते हैं। इसीलिए महाकवि ने इस क्षेत्र को स्वर्गलोक का द्वार कहा है। चूंकि स्वर्गलोक की कल्पना पृथ्वी से बाहर की गयी है। अतः आदि कवि की यह बात युक्ति संगत लगती है। चूंकि इस क्षेत्र की स्थिति आर्कटिक वृत्त के उत्तर में है, ध्रुवीय शीतकाल में इस समस्त क्षेत्र में अंधकार रहता है परन्तु ऐसा संभव है कि सूर्य की तिरछी किरणों की आभा से प्रकाशित हो उठते हों। इस क्षेत्र में सूर्य ऊँचाई क्षितिज में कभी-भी अधिक नहीं होती है एवं परावर्तन अधिक होने के कारण यह क्षेत्र गोधूलि आलोक से आलोकित होता रहता है। यहाँ आज भी समोयेड्स (Samoyeds) नामक एक घुमक्कड़ जनजाति निवास करती है।

8- ध्रुवीय तारामंडल-

महर्षि वाल्मीकि एक महान कवि के साथ-साथ भूगोलविद एवं नक्षत्रशास्त्री भी थे। यही कारण है कि इन्होंने वाल्मीकि रामायण में प्रतीकों के माध्यम से उत्तरी ध्रुव क्षेत्र के आकाश में दिखायी देने वाले नक्षत्रों के बारे में विवरण दिया है। आदि कवि के अनुसार इस क्षेत्र में विश्वात्मा भगवान विष्णु एकादश रुद्रों के रूप में प्रकट होने वाले भगवान शंकर तथा ब्रह्मर्षियों से घिरे हुए देवेश्वर ब्रह्मा भी निवास करते हैं (वा०रा० 4·43·56)।

उपर्युक्त श्लोक के माध्यम से कवि ने ध्रुवीय क्षेत्र में दिखायी पड़ने वाले प्रमुख तारा समूहों का संकेत किया है। यहाँ भगवान विष्णु से अक्विला (Aquila

तारा समूहों का बोध होता है जिसका मुख्य तारा अल्टैर (Altair) है जिसे हिन्दू लोग श्रवण नक्षत्र कहते हैं, इसके अधिष्ठाता भगवान विष्णु माने गये हैं। दूसरे तारामंडल ओरियन (Orion) का मुख्य तारा वेलाट्री (Bellatry) है जिसके संरक्षक देवता रूद्र हैं जिनकी संख्या ग्यारह बतायी जाती है। इसी भाँति उर्सा माइनर एवं उर्सा मेजर तारा समूहों के मुख्य नक्षत्र क्रमशः ध्रुवतारा एवं सप्तर्षि है जिन्हे ब्रह्मा का पुत्र एवं ब्रह्मचारी कहा जाता है। लीरा तारामण्डल का मुख्य नक्षत्र वेगा (Vega) है जिसके मुख्य देवता ब्रह्मा हैं।

ङ- ध्रुवीय रात्रि-

सोमगिरि से उत्तर के क्षेत्र को अंधकार मय, अनजाना एवं दुर्गम बताया गया है जिसके कारण वानरराज सुग्रीव अपने खोजदल को इससे आगे न बढ़ने की सलाह देते हैं (वा०रा० 4•43•58-59)। वानर राज सुग्रीव के उक्त कथन से उत्तरी ध्रुव के शीतऋतु की दशाओं का बोध होता है जब यह समस्त क्षेत्र छः माह तक अंधकार की चपेट में आ जाता है। इससे यात्रियों के भटक जाने की पूरी संभावना रहती है। दुर्गमता एवं बर्फीली तेज बहने वाली हवाओं के कारण इन क्षेत्रों में यात्रा करना एक दुष्कर कार्य है। चूँकि सुग्रीव द्वारा सीता की खोज का अभियान अगस्त-सितम्बर माह में सम्पन्न किया गया था। खोजदल के सोमगिरि तक पहुँचते -पहुँचते ध्रुवीय रात्रि के प्रारम्भ हो जाने की सम्भावना थी। यही कारण है कि वानर राज अपने दल के नेता को केवल सोमगिरि देखकर शीघ्रातिशीघ्र लौटने का आदेश देते हैं।

संदर्भ

1· वाल्मीकि रामायण {1950}: राम नारायण लाल, इलाहाबाद
7· प्रक्षिप्त सर्ग·1· 56·

2· Ali, S.M.(1966): The Geography of the Puranas, People, Publishing House, New Delhi, P.39.

3· विद्यालंकार, सत्यकेतु {1974}: दक्षिण, पूर्वी एवं दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति, सरस्वती सदन, नयी दिल्ली पृ0 11·

4· Ibid. P.11.

5· Ibid. P.14.

6· Ibid. P.14.

7· Ibid. P.17.

8· Op. cit.fn.2, P.45.

9· Jaiswal, A.P. And Tiwari, R.C.(1978): Valmiki's Knowledge of the Eastern world: A GeographicalTreatise on Ramayana, National Geographer, Vol XIII, No.1 P.23.

10· Op. cit. fn.9(a) P.23.

11· Ibid. P. 24.

12· जायसवाल, अयोध्याप्रसाद {1983}: रामायणकालीन कोरिया, भूसंगम, इलाहाबाद ज्याग्राफिकल सोसाइटी; अंक-1, संख्या-1 पृ0 38·

13· Ibid. P.25.

14· बृहत्संहिता ------ 14·24

महाभारत ------ 12·14·21-25

15· जायसवाल, मंजुला {1983}: वाल्मीकियुगीन भारत, महामति प्रकाशन, इलाहाबाद पृ0 301·

16. Macdonel: Vedic Index P.174

17. विद्यालंकार, जयचन्द्र §1942§: भारतीय इतिहास की रूपरेखा भाग-2, हिन्दुस्तानी एकेदमी, इलाहाबाद ,पृ0 679.

18. O. .Cit.fn9,P.30

19. Op.cit.fn.1.. 7.50.56

20. Opcit fn. 9 P.22

21. Ibid. p.22

22. शिव प्रसाद: पृथ्वी की परिक्रमा पृ0 8

23. Op. cit.fn. 9P.23.

24. Ibid. P.23.

25. Ibid. P. 24-25.

26. Op. cit. fn.22 P.9

27. Ibid. P.10.

28. Das,N.C.(1971): A note on the Ancient Geography of Asia Bharat Bharati Oriental Publisher and Book seller , Varanasi.

29. Dobby,F.H.G.(1956): South East Asia ,University Press Ltd.,London P.165.

30. Op. cit. fn.9 P.17.

31. Morrison, Cameron (1924): A new Geography of India Empire and Cylon,Thomas Nelson& Sons,London P.205.

32. Op. cit.fn.9.P.19.

33. Ibid. P.19

34. Ibid. P. 23-24.

35. Ibid. P. 27.

36. Jaiswal,A.P. & Tiwari ,R.C.(1980): Valmiki's Knowledge of the Western World: A Geographical Treatise on Ramayan, National Geographer, Vol XV.No.1 P.70.

37. Ibid.P. 71.

38. Marco Polo Travels(1950): Rutledge and Kegan Paul Ltd. London, P.344.

39. Das.A.C. (1911): Rig-Vedic India, University of Calcutta P. 558-560.

40. Op. cit., fn. 36,P.72.

41. Ibid. P. 72.

42. Ibid. P. 74.

43. Ibid. P. 74.

44. Ibid. P.75.

45. Ibid. P. 75.

46. Ibid.P.77.

48. Mikhailov, N.(1974): Across the Soviet Land(Hindi), Progress Publications, Moscow, P. 306.

48. सांकृत्यायन, राहुल (1956) हिमालय के दुर्गम भूखण्डों में ,नवभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 174

49. दीक्षित, एस0बी0 (1959): भारतीय ज्योतिष, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ पृ0 71

50. Spancer, J.E. and Thomas,W.L.(1971): Asia East by South : A Cultural Geography, John Weley & Sons,2nd Ed. London.

51. Swami, PranaVanand (1960):Exploration in Tibet, University of Calcutta, Page 57-58.

52. Jaiswal,A.P. and Tiwari,R.C.(1977): Valmiki's knowledge of the Northern World: A Geographical Treatise on Ramayan,National Geographer,Vol. XII,No.1 P.66

53. Ibid. P. 67.

54. Ibid. P. 68.

पंचम अध्याय

वाल्मीकि रामायण में भारत:प्राकृतिकतंत्र

रामायण में वर्णित घटनाओं की कार्यस्थली समूचा भारत रहा है। इसीलिए विभिन्न आख्यानों एवं यात्रा विवरणों आदि में देश के भौतिक स्वरूप आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। प्रस्तुत अध्याय में विभिन्न साक्ष्यों के माध्यम से वाल्मीकि रामायण में वर्णित भारत के आकार, विस्तार,उच्चावचन, जलवायु वनस्पति एवं मृदा प्रकारों आदि का विवरण दिया गया है।

5·1 भारत: नाम, क्षेत्र विस्तार,आकार एवं सीमाएँ -

भारत में रामायण ही प्रथम ग्रंथ है जिसमें देश के विभिन्न भागों के भौगोलिक तत्वों का परिचय दिया गया है।[1] रामायणकाल के पूर्व जिस क्षेत्र पर आर्यों का अधिकार था उसे "आर्यावर्त" या "मध्यदेश" कहा जाता था।[2] इसके उत्तर में हिमालय,दक्षिण में विन्ध्य पर्वत,पूर्व में गंगा एवं गंडक नदियाँ एवं पश्चिम में सिन्धु नदी थी।[3] रामायण में भारत नाम का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह नाम बाद में दिया गया है।[4]

रामायणकालीन भारत के आकार के विषय में भी कोई प्रमाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं होते हैं। रामायण के पूर्ववर्ती वैदिक ग्रन्थों में देश के

आकार का कहीं उल्लेख नहीं है परन्तु परवर्ती ग्रन्थों में जैसे पुराणों आदि में भारत का आकार एक बाण चढ़े हुए खिंचे धनुष के समान बताया गया है जिसमें प्रत्यञ्चा हिमालय है जबकि बाण का नुकीला भाग दक्षिण भारत का भाग है।[5] बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार भारत उत्तर में चौड़ा है जबकि दक्षिण में यह एक बैलगाड़ी के अगले भाग के समान है जिसे सात समान भागों में बांटा जा सकता है।[6] भारत वर्ष का यह आकार देश के वर्तमान आकार से बहुत कुछ मेल खाता है जो उत्तर में चौड़ा एवं दक्षिण में त्रिभुजाकार है।

भारत के क्षेत्र विस्तार एवं सीमाओं के सम्बन्ध में वाल्मीकि रामायण में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है। इन तथ्यों पर प्रकाश डालने से पूर्व रामायण के निम्न प्रसंगों का उल्लेख अत्यावश्यक है।

1- भरत को बुलाने के लिए अयोध्या से दूतों का कैकय देश जाना एवं वहां से आना (वा० रा० 2·68,69,70 एवं 77 सर्ग) एवं शत्रुघ्न का लवणासुर के यहां जाना (वा० रा० 7·68,69 सर्ग) इससे हमें भारत की पश्चिमी एवं उत्तरी पश्चिमी सीमा के बारे में जानकारी मिलती है।

2- राम का अयोध्या से लंका की ओर प्रस्थान जिससे देश की दक्षिणी सीमाओं के बारे में जानकारी मिलती है (वा० रा०) अयोध्या काण्ड से अरण्य काण्ड तक)

3- विश्वामित्र के साथ राम की यात्रा एवं यज्ञ की समाप्ति के बाद विश्वामित्र का हिमालय की तलहटी में जाना जिससे भारत के उत्तरी अंचलों के बारे में जानकारी मिलती है॥सम्पूर्ण बालकाण्ड॥

4- गंगा नदी का हिमालय से उत्पत्ति एवं उसका समुद्र में गिरना जिससे भारत के पूर्वी क्षेत्र विस्तार का पता चलता है।॥1·43पूरासर्ग॥

5- सुग्रीव द्वारा सीता की खोज के लिए बानरों को चारो दिशाओं में भेजने से भी भारत की सीमाओं का पता चलता है॥4·40, 41,42,43 सर्ग॥

6- राम द्वारा अश्वमेघ यज्ञ करना जिससे देश के विभिन्न भागों के भौतिक एवं सांस्कृतिक स्थलरूपों के बारे में जानकारी मिलती है।

7· महाराजा दशरथ के अश्वमेघ यज्ञ में देश के विभिन्न भागों से आने वाले राजाओं का उल्लेख मिलता है।॥1·13 पूरा सर्ग॥

उपर्युक्त प्रसंगों के अध्ययन से देश के सीमा एवं क्षेत्रविस्तार पर निम्न प्रकाश पड़ता है।

1- भारत की पश्चिमी सीमा पर पुष्कलावती॥पुरूषपुर,आधुनिक पेशावर॥तक्षशिला॥आधुनिक पाकिस्तान॥गिरिव्रज ॥विभाजन के पूर्व का पंजाब॥ आदि नगरों,सिन्धु,वितस्ता चन्द्रभागा,इरावती,विपाशा,

शतद्रु, सरस्वती, दृशद्वती आदि नदियों एवं गान्धार, केकय, मद्र, बाह्लीक, सौवीर, मरुभूमि आदि जनपदों का उल्लेख है। इससे स्पष्ट होता है कि रामायणकालीन भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा के अन्तर्गत वर्तमान पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान सम्मिलित थे।

2. भारत की पश्चिमी सीमा सौराष्ट्र तक फैली थी।

3. भारत के पूर्वी भाग में कामरूप, प्राग्ज्योतिष (असम) किरात मगध (बिहार) वंग (अविभाजित बंगाल) किरात वर्मा, जनपदों तथा लोहित (आधुनिक ब्रह्मपुत्र) नदी का वर्णन मिलता है। यह सीमा आधुनिक भारत की पूर्वी सीमा से बहुत कुछ मेल खाती है जिसके अन्तर्गत, बंगलादेश आदि सम्मिलित थे।

4. वाल्मीकि युगीन भारत की दक्षिणी सीमा वही थी जो आधुनिक भारत की है जिसके अन्तर्गत लंका का क्षेत्र समाहित था।

5. भारत की उत्तरी सीमा हिमवान पर्वत (हिमालय) बनाता था।

प्राप्त साक्ष्यों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उत्तरी वैदिक काल तक आर्यगण, गोदावरी नदी घाटी क्षेत्र तक पहुँच चुके थे किन्तु रामायण युग में कृष्णा, तुंगभद्रा, ताम्रपर्णी आदि नदियों के वर्णन द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि इस काल तक आर्यगण सुदूर दक्षिण तक पहुँच गये थे। दक्षिण भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित ऋषियों के आश्रम जो आर्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान करते थे। इसी तथ्य की ओर

BHARATA VARSA
AREA AND EXTENT
(RAMAYAN PERIOD)
68° E
76°
84°
92°
100° E
36° N
N 36°
28°
28°
20°
20°
12° N
N
72° E
80°
88°
92° E
PUSKALAVATI
SINDHU
SHATADRU
SINDHU
SAURASTRA
MADHUPURI
AYODHYA
VANGA
KIRAT
GODAVARI
KRISHNAVENI
CAUVERI
LANKA
100 0 100 300 500 Km

FIG 5 1

इंगित करते हैं। उन दिनों लंका का द्वीप एवं वहाँ का बलवान राजा रावण ही आर्य संस्कृति के प्रसार में प्रमुख रूप से बाधक था। इसी संदर्भ में यदि रामायण की घटना के अनुसार राम की रावण पर विजय को उत्तरी भारत के आर्यों द्वारा द्रविणों के अन्तिम गढ़ पर विजय प्राप्त करने के लिए किया गया सुनियोजित प्रयास कहा जाय तो यह अत्युक्ति नहीं होगी। इसी प्रकाररामायणकाल तक भारत के समस्त क्षेत्र पर आर्यों का प्रसार हो चुका था। ‹चित्र संख्या 5·1›

5·2 भारत के भौतिक विभाग-

रामायण में वर्णित आख्यानों के अनुसार भारत को भौतिक प्रदेशों में विभाजित करने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:

1- आर्यों की पुण्यभूमि आर्यावर्त वैदिक आर्यों का कार्यस्थल आर्यावर्त रहा है जो समतल एवं मैदानी क्षेत्र था एवं जिसमें प्रचुर मात्रा में कृषि की जाती थी। यही कारण है कि वैदिक ग्रन्थों में विन्ध्य के दक्षिण स्थित दक्षिणी भारत के क्षेत्रों का बहुत कम उल्लेख मिलता है परन्तु रामायण काल में आर्य लोग विन्ध्य पारकर दक्षिणी भारत के द्रविण बहुल क्षेत्र में प्रविष्ट हो चुके थे। के उत्तर एवं दक्षिण क्रमश: हिमालय एवं विन्ध्य पर्वत स्थित थे।

2- कोशल देश का विस्तृत वर्णन जो अयोध्यापुरी के वर्णन के साथ किया गया है यह स्पष्ट करता है कि इसकी स्थिति केवल मैदानी भागों में ही थी जिसमें विभिन्न प्रकार की फसलें उगायी जाती थीं। (वा0रा0 1·39,41 सर्ग)

3- हिमालय पर्वत के बारे में रामायणकालीन लोगों की जानकारी सीमित थी यही कारण है कि सुग्रीव किष्किन्धाकाण्ड के 41,48,49, 50,51,52,53,54,56 एवं 58 सर्गों में विन्ध्य पर्वत एवं दक्षिणी भारत का तो सूक्ष्म एवं स्पष्टवर्णन करते है जबकि उत्तर में स्थित हिमालय के वर्णन में कुछ चुनी हुई पहाड़ियों एवं उनके शिखर ही सम्मिलित हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि हिमालय पर्वत उन दिनों अलंघ्य था जबकि विन्ध्याचल पर्वत को पार करना आसान था।

4- हिमालय पर्वत पर ग्रीष्म ऋतु में हिम के पिघलने की चर्चा की गयी है जबकि विन्ध्य पर्वत में ऐसा संकेत नहीं मिलता है(देखिये अध्याय3 हिमनदी)

5- रामायण में दिये गये दक्षिणी भारत के भौगोलिक विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि यह क्षेत्र पठारी था जिस पर घने जंगल उगे हुए थे एवं संग्रहणीय जाति के वानर निवास करते थे।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम रामायणकालीनभारत को उच्चावच की दृष्टि से 3 भौतिक प्रदेशों में विभक्त कर सकते हैं।

BHARAT VARṢA
PHYSICAL DIVISIONS
(RAMAYAN PERIOD)
NORTHERN MOUNTAINOUS REGIONS
ARYAWARTA BHUMI
VINDHYA—SAHYA PLATEAU REGION
100 0 100 300 500 Km
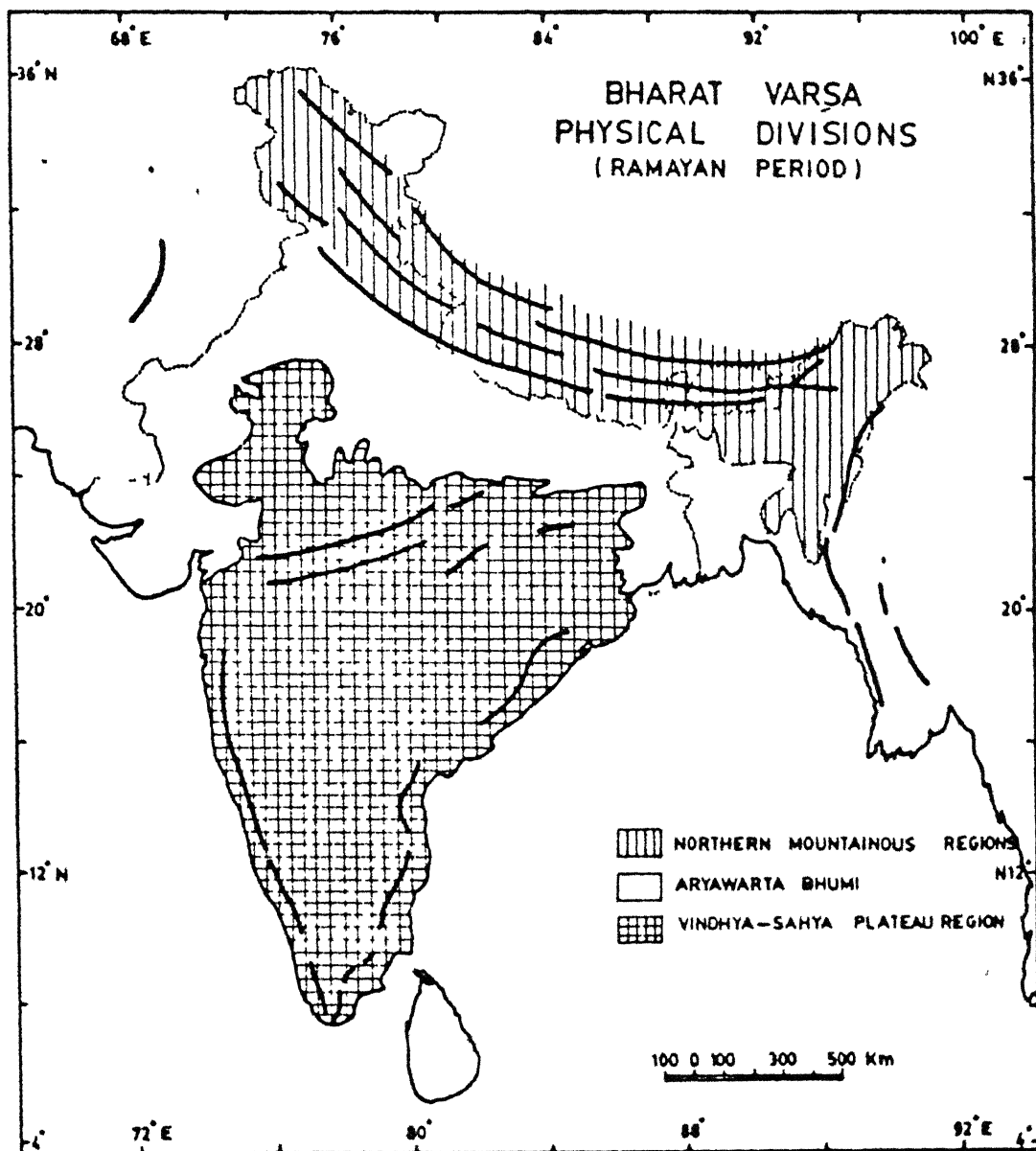
FIG 5 2

(अ) उत्तर में हिमालय पर्वत जो सदा बर्फ से ढका रहता है।

(ब) आर्यावर्त का मैदानी क्षेत्र जो गंगा एवं उसकी सहायक नदियों के जल से सिंचित था जो सिन्धु नदी से लेकर पूर्वी समुद्र अर्थात बंगाल की खाड़ी तक विस्तृत है।

(स) पठारी विन्ध्य प्रदेश एवं दक्षिणी भाग जिसमें छोटे-छोटे अवशिष्ट पर्वत विद्यमान हैं।

(3) उत्तरी पर्वतीय प्रदेश-

1- हिमालय -

आर्यावर्त के उत्तर में हिमालय पर्वत स्थित है(वा0रा0 4·33·4) जो समस्त पर्वतों का अधिपति है तथा विभिन्न प्रकार की धातुओं का बहुत बड़ा खजाना है(वा0रा0 1·35·14)। गंगा नदी इसी पर्वत से निकलती है (वा0रा0 1·35·16)हिमालय तपस्वियों का निवास स्थान है(वा0रा0 1·42·3)।विश्वामित्र का आश्रम इस पर्वत की तलहटी में स्थित है(वा0रा0 1·74·1)।प्राचीन भूगोल वेत्ताओं के अनुसार हिमवन्त का विस्तारपश्चिम में सुलेमान से लेकर पूर्व में अराकान पर्वत श्रेणियों तक फैली हुई समस्त पर्वत माला सेथा।[7] पुराणों में हिमवन्त को वृष पर्वत एवं मर्यादा पर्वत दोनों वर्गों में रखा गया है।[8] ऋग्वेद में भी इस पर्वत की चर्चा की गयी है।[9]

2- कैलाश पर्वत -

रामायण में कैलाश पर्वत के शिखर श्वेत वर्ण के बताये गये हैं। जिससे स्पष्ट होता है कि यह पर्वत हिमाच्छादित रहता था(वा0रा04·33·15)

कैलाश पर्वत हिमाचल का एक भाग है किन्तु मार्कण्डेय पुराण में इसे एक पृथक पर्वत बताया गया है।[10ए] मत्स्य पुराण में भी इसका उल्लेख मिलता है।[10बी] यह आधुनिक कैलाश शिखर ही है जो मान सरोवर के उत्तर में भागीरथी और अलकनन्दा के उद्गम -क्षेत्र के समीप स्थित है। इस पर कुबेर के रमणीय भवन के स्थित होने का प्रसंग मिलता है जो सम्भवत: इस क्षेत्र में प्राप्त प्राकृतिक गुफाओं की ओर संकेत है।

3- क्रौन्च गिरि -

यह पर्वत भी हिमालय का ही एक भाग है। जिसके आर-पार जाने के लिए एक दर्रा है (वा0रा0 4·43·35) इस दर्रे की चर्चा मेघदूत में कालिदास ने भी की है।[11] इसमें महान तेजस्वी (तपस्वी लोग) निवास करते हैं। क्रौन्च पर्वत क्षेत्र में अनेक गुफाएँ, घाटियाँ, शिखर, कन्दराएँ तथा ढालू प्रदेश स्थित है। इससे आगे वृक्ष नहीं पाये जाते हैं एवं इस पर जीव जन्तुओं का अभाव पाया जाता है। यह स्थान आज "कामशैल" अथवा "कामेट" शिखर के नाम से जाना जाता है (चित्र 53)

4- मैनाक पर्वत-

रामायण में क्रौन्च गिरि के बाद मैनाक पर्वत के स्थित होने का प्रसंग मिलता है। (वा0रा0 4·43·29) इसमें हिमनदी से निर्मित अनेक गुफाएँ पायी जाती हैं। यह क्षेत्र किन्नर एवं किन्नरियों का निवास स्थान है। वैदिक

BHARAT VARSA
MOUNTAINS
(RAMAYAN PERIOD)
MT KALA
MT SUDARSHAN
MT MAINAK
KAMSHIL
MT DEWSHAKH
KAILASH
MT YAMUN
MT KRAUNCH
CHITRAKUT
MT VINDHYACHAL
MT
RISHYAMUK
PRASRAWAN
GIRI
SHAHYA
MT
MALYAVAN
MT
DARDUR
MALAY
MAHENDRA
100 0 100 300 500 Km
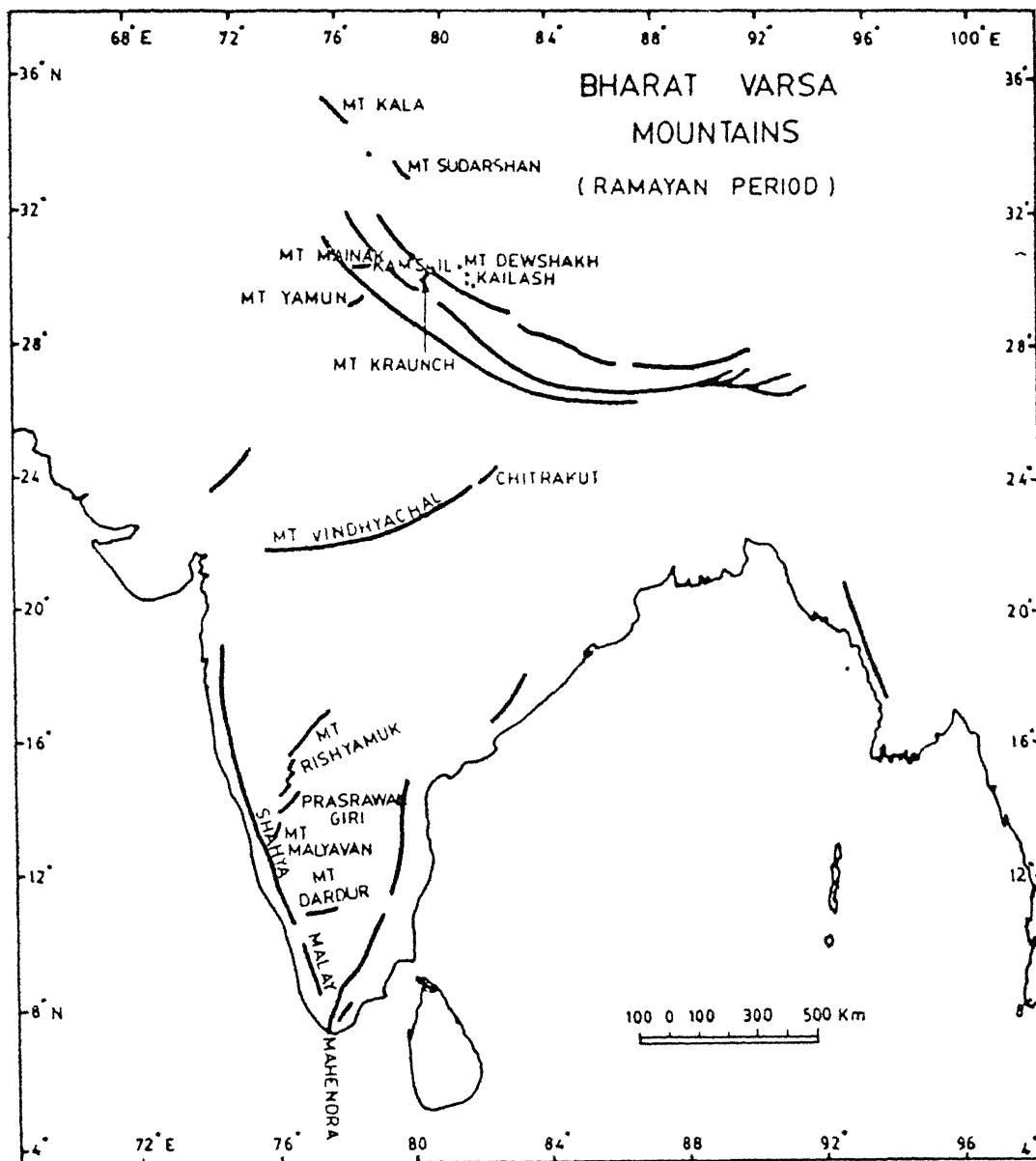
FIG 5 3

कालीन लोग भी इस पर्वत से परिचित थे। जायसवाल एवं तिवारी[13] ने इसे शिवालिक श्रेणी का अंग बताते हुए हिमाचल प्रदेश में स्थित माना है जबकि सक्सेना[14] ने इसे अलकनन्दा एवं भागीरथी के संगम के समीप उत्तर प्रदेश के टेहरी गढ़वाल जनपद से सम्बन्धित बताया है।

5- देवसख पर्वत-

यह पक्षियों का निवास स्थान माना गया है जिस पर वृक्ष पाये जाते हैं। विवरण के अनुसार उपरिस्थित मानस दर्रे के पास होना चाहिए जहाँ देवताल नामक एक झील का उल्लेख किया गया है।

6- काल पर्वत -

इसकी स्थिति सोमाश्रम से उत्तर पाई जाती है रामायण में इसके निकट सोने की खानों के पाये जाने का उल्लेख मिलता है। इसका विवरण वर्तमान काराकोरम पर्वत से मिलता जुलता है जिसे प्राचीन भूगोल वेत्ता कृष्णगिरि [काला पर्वत] के नाम से जानते थे।[15] यही काराकोरम पर्वत रामायण का काल पर्वत है।[16]

7- सुदर्शन पर्वत-

यह काल पर्वत के उत्तर स्थित श्रेणी है [वा0रा0 4·43·16]। सुदर्शन का अर्थ होता है सुन्दर दृश्यवाला यह हिमालय की एक सुन्दर पर्वत श्रेणी है जिसे वर्तमान में लक्ष्मीवान कहते हैं।[17]

(ब) आर्यावर्त भूमि-

वैसे रामायण में आर्यावर्त भूमि का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु इसकी चर्चा वैदिक काल से ही होती चली आ रही है। "आर्यावर्त" का अर्थ है "आर्यों का निवास स्थान" सप्त सिन्धु आर्यों का प्राथमिक आवास था जिसमें 7 नदियां बहती थीं जिनके किनारे वैदिक मुनियों के आश्रम स्थित थे। वैदिक काल में सप्तसिन्धु * या सप्त सैन्धव क्षेत्र आर्यों का निवास स्थान था जिसकी पूर्वी सीमा गंगा एवं सरयू नदियों तथा उत्तरी सीमा हिमालय एवं पामीर क्षेत्रों द्वारा बनाये जाते थे। धीरे-धीरे आर्यों ने अपने आवासों का पूर्व की ओर फैलाव एवं रामायण काल तक सप्त सैन्धव के अन्तर्गत गंगा एवं यमुना नदियों का मैदान भी समाहित हो गया और अब इसका विस्तार पूर्वी समुद्र तक फैला माना जाने लगा जिसमें कोशल आदि जनपद मुख्य भूमिका अदा करते थे। इस क्षेत्र में आर्यों के बसाव के मुख्य कारण थे- उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी, विस्तृत समतल मैदानी क्षेत्र का पाया जाना, उच्च अधोभौमिक जलस्तर, प्रचुर जल एवं जल परिवहन की सुविधा आदि। समतल भूमि के कारण नदियों की गति सर्वत्र समान थी जिससे इनका उपयोग न केवल संचार एवं आवागमन के लिए साधनों हेतु आसानी से हो सकता था वरन् समशीतोष्ण एवं आर्द्र जलवायु

---

* सिन्धु, चिनाब, रावी, व्यास, सतलज, चर्मवती एवं सरस्वती

कृषि एवं पशुपालन के लिए सर्वथा उपयुक्त थी। यही कारण है कि आर्यों के मौलिक आवास नदियों के आश्रित थे एवं "सप्तसिन्धु", "पंचनद", [illegible] आदि शब्द नदी घाटी क्षेत्रों के लिये प्रयोग किये जाते रहे हैं। रामायणकाल में राजा नगर का यह आर्यावर्त भूमि पर नदी के किनारे सम्पन्न हुआ था। राजा दशरथ ने भी इसी क्षेत्र में यज्ञभूमि का निर्माण किया था वा0रा0 1·8,15,1·39·5)। वास्तव में रामायणकाल में दक्षिण में विन्ध्य एवं उत्तर में हिमालय पर्वत के बीच स्थित क्षेत्र को आर्यावर्त कहा जाता था(वा0रा0 1·39·5)। पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तथा हिमालय एवं विन्ध्य पर्वतों के बीच स्थित यह उपजाऊ जलोढ़ मैदानी क्षेत्र रामायणकालीन संस्कृति एवं आर्थिक विकास का केन्द्र स्थल था। आर्यों के निवास इस क्षेत्र में छोटे-बड़े अनेकों गांवों में स्थित थे जिनमें यत्र तत्र अयोध्या, जनकपुरी ऐसे नगर स्थित थे।

(ख) विन्ध्य, सह्य आदि का पठारी प्रदेश-

इस प्रदेश की स्थिति भूमि एवं दक्षिण समुद्र के बीच पायी जाती थी (वा0रा0 5·55·69)। रामायण में प्राप्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इस पर संग्रहणीय एवं आखेटक लोग निवास करते थे जिनमें वानर एवं राक्षस प्रमुख थे। रामायण में इस प्रदेश के अन्तर्गत निम्न पर्वतीय क्षेत्रों का उल्लेख मिलता है।

1- विन्ध्याचल पर्वत-

रामायण में विन्ध्य पर्वत को हिमवान की ही भाँति ऊँचा बतलाया गया है। यह इतना ऊँचा था कि इसका शिखर बादलों में समाया हुआ सा जान पड़ता था तथा यह पर्वत पृथ्वी को विदीर्ण कर ऊपर उठा हुआ सा प्रतीत होता था विन्ध्य के गगनचुम्बी शिखर आकाश में रेखा खींचते से जान पड़ते थे। यह महान शैल अपने सहस्त्रों श्रृंगों से सुशोभित होता था जिसकी कन्दराओं में सिंह निवास करते थे(वा०रा० 7·31·14-15)। इसके शिखरों से नदियाँ निकलती थी तथा यह क्षेत्र पर्यटक केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था(वा०रा० 17·31·16) इस पर्वतीय क्षेत्र के मध्यभाग से ही नर्मदा नदी निकलती थी(वा०रा० 7·31·17-18)। विन्ध्य पर्वतीय क्षेत्र में चन्दन आदि के वृक्षों के पाये जाने का उल्लेख मिलता है। इस क्षेत्र में मानव बसाव कम था (वा०रा० 4·48·6) एवं अधिकांश क्षेत्र घने जंगलों से ढका हुआ था। इस पर्वतीय क्षेत्र की स्थिति नर्मदा नदी के किनारे से होकर कैमूर श्रेणी तक फैला हुआ था जो आधुनिक विन्ध्य क्षेत्र के विस्तार से मेल खाता है(चित्र 5·3)

2- चित्रकूट पर्वत-

चित्रकूट पर्वत की स्थिति रामायण में प्रयाग के दक्षिण बतायी गयी है(वा०रा० 1·1·31-32)। यह भरद्वाज आश्रम से दस कोस (लगभग 35कि·मी· की दूरी पर स्थित है(वा०रा० 4·54·28)। यह तपस्वियों का तपस्थली एवं

मानव निवास के अनुकूल था (वा0रा0 2·56·15,2·54·30-31)। रामायण काल में यह एक रमणीय पर्यटक स्थल था (वा0रा0 2·54·38-40) मंदाकिनी नदी इस पर्वत के समीप से होकर बहती है (वा0रा0 2·54,41-42)। महर्षि बाल्मीकि का एक आश्रम इस पर्वत के समीप भी स्थित था। (2·56·16) इस पर्वतीय अंचल में हाथी के अतिरिक्त,व्याघ्र ,चीते ,रीक्ष,सुअर ,हिरण आदि आदि जंगली पशु एवं पक्षी पाये जाते थे। (वा0रा0 2·94·7)। इस क्षेत्रके बनों में आम्र,जामुन ,असन, लोध्र ,प्रियाल,कटहल,धव अंकोल ,बेल,तिन्दुक,बाँस, अरिष्ट, महुक,तिलक,बेंत आदि के वृक्ष तथा अनेक औषधियां थी (वा0रा0 2·94·8-10)। इस क्षेत्र में अनेक सोते एवं झरने भी प्राप्त होते थे। पहाड़ियों में अनेक रंग की धातुओं के पाये जाने का भी संकेत मिलता है। चित्रकूट पर्वत को ब्लाक पर्वत कहा गया है। चित्रकूट पवर्त को उत्तर प्रदेश के बाँदा जनपद में स्थित काम्तानाथ गिरि से समीकृत किया जा सकता है जो पैसुनी नदी के तट पर स्थित अकेली पहाड़ी है यह स्थान सेन्ट्रल रेलवे के चित्रकूट स्टेशन से लगभग 6 कि·मी· दूर स्थित है।[18]

3- सह्य पर्वत-

यह पर्वत किष्किन्धा पर्वत के दक्षिण में स्थित बताया गया है (वा0रा0 7·4·70)। सह्य और मलय पर्वत रामायण में एक साथ स्थित बताये गये हैं: (वा0रा0 7·4·71)। इस पर्वत पर गैरिक धातुएं पायी जाती थी (वा0रा0 7·4·76)। साथ ही यह क्षेत्र केतकी,सिन्दुवार और बासन्ती लताओं से ढका

था।(वा0रा0 7·4·78)। सह्य और मलय पर्वत के दक्षिण में महेन्द्र पर्वत स्थित था।(वा0रा0 7·4·78)उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ,यह पश्चिमी घाट के सहारे स्थित एक पहाड़ी है वास्तव में प्राचीनकाल में लोग प0 घाट को ही सह्याद्रि कहते थे। यह कुण्डेबारीदर्रे से कन्याकुमारी तक लगभग 1600 कि·मी· की लम्बाई में फैला हुआ है एवं विभिन्न स्थानीय नामों से जाना जाता है।[19] प्राचीन भूगोलवेत्ता सह्य पर्वत को "कुलाचल" की संज्ञा भी देते थे।[20]

4- प्रस्त्रवण गिरि-

रामायण के अनुसार भगवान राम बालि के वध के लक्ष्मण सहित इसी पर्वत की कन्दरा में वर्षा ऋतु व्यतीत किये थे। यह पर्वत भी रामायणकाल में एक पर्यटक केन्द्र के रूप में विकसित था। इस पर जहाँ ऋक्ष, वानर,गोपुच्छ आदि जीव निवास करते थे वहीं यह क्षेत्र मालती,कुन्द,सिन्धुवार, अर्जुन आदि के वृक्षों से परिपूर्ण था। इस क्षेत्र में काले,लाल एवं श्वेत रंग के पत्थर पाये जाते थे(वा0रा0 4·26 पूरासर्ग)। भवभूति ने प्रस्त्रवण गिरि को गोदावरी नदी के समीप बताया है[21] परन्तु वाल्मीकि रामायण के वर्णन के अनुसार इसकी स्थिति तुंगभद्रा नदी के तट के समीप वर्तमान बेलारी स्थान के निकट मानी जा सकती है। इस क्षेत्र में फैली पहाड़ियों को आज इर्रमाला(Erramala) नाम से जानते हैं जिनकी ऊँचाई 1100 मीटर से अधिक नहीं है।

5- ऋष्यमूक- पर्वत-

यह पर्वत पम्पासरोवर के पूर्वी भाग में स्थित माना गया है। इस पर हाथी एवं आदि सर्प जीव पाये जाते थे(वा0रा0 3·37·31-32)। ऊँचाई अधिकतर होने के कारण इस पर रीछ,बाघ एवं हिरण आदि भी पाये जाते थे(वा0रा0 3·73·38-39)। इसकी स्थिति किष्किन्धापुरी के समीप मानी गयी है। ऋष्यमूक पर्वत से आशय मंजीरा और भीमा नदियों से कटी-फटी अहमद नगर से नलदुर्ग और कल्यानी तक फैली हुई श्रेणी से लगाया जा सकता है।[22] यह श्रेणी तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित अनगंडी से लगभग 13 कि0मी0 दूर स्थित है। इसी पर्वत से पंपा नामक एक छोटी नदी निकलती है जो पश्चिम की ओर बहती हुई तुंगभद्रा में मिल जाती है। वृहत्संहिता में इसे दक्षिण का एक पर्वत बताया गया है।[23]

6- माल्यवानपर्वत-

यह पर्वत किष्किन्धा के समीप- प्रस्त्रवण-पर्वतमाला का एक भाग था बालि के बध के पश्चात राम और लक्ष्मण इसी पर्वतीय भागपर निवास कर वर्षा ऋतु व्यतीत किये थे। यह क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुषमा एवं मनोहारी दृश्यों के लिए प्रसिद्ध था(वा0रा0 4·28·52)। रामायण में दिये गये विवरण के अनुसार यहपर्वत प्रस्त्रवण पर्वत माला का एक शिखर लगता है।

7- मलय पर्वत-

यह पर्वत भी दक्षिण के प्रायद्वीपीय क्षेत्र में स्थित था इस पर अनेक धातुएं पायी जाती थी एवं यह क्षेत्र मलय(चन्दन)के वृक्षों से ढका था

इसीलिए इसे मलय पर्वत कहते थे [वा०रा० 4·41·13-14]। मलय पर्वत की स्थिति दक्षिणी समुद्र तट के समीप बतायी गयी है एक अन्य प्रसंग में इसे लंका के समीप स्थित माना गया है. [वा०रा० 5·39·50,5·68·27]। इस पर्वत पर महर्षि अगस्त्य का निवास स्थान भी स्थित था. [वा०रा० 4·41, 15-16]। मलयपर्वत एवं ऋष्यमूक पर्वत शायद एक ही पर्वत के दो शिखर थे अथवा ऋष्यमूक मलय के एक शृंग का नाम था। प्राचीन भूगोलवेत्ता मलय पर्वत को "कुलाचल" के अन्तर्गत रखते थे।[24] पार्जिटर ने प्राचीन मलय पर्वत को पश्चिमी घाट की ट्रावनकोर हिल से समीकृत किया है।[25]

8- महेन्द्र पर्वत-

यह पर्वत दक्षिणी समुद्र में गहराई तक घुसा हुआ माना गया है [वा०रा० 4·41·20-21]। वाल्मीकि रामायण में इसके उद्भव में अगस्त्य ऋषि का योगदान बतलाया गया है वा०रा० 4·41·20·21]। परशुराम महेन्द्र पर्वत पर ही निवास करते थे। [वा०रा० 1·76·15] यह पर्वत भूमिक हलचलों से अप्रभावित रहा है [वा०रा० 3·47·33]। समुद्र के समीप स्थित होने के कारण इस पर अनेक धातुएँ पायी जाती थीं [वा०रा० 5·1·16] पार्जिटर के अनुसार ट्रावनकोर श्रेणी का धुर दक्षिणी भाग जो केपकमोरिन तक फैला है रामायणकालीन महेन्द्र पर्वत है।[26] परन्तु लाहा महोदय ने इसे पूर्वी घाट से सम्बद्ध माना है[27] । रामायण में प्राप्त विवरण के अनुसार पार्जिटर का कथन अधिक उपयुक्त लगता है क्योंकि आज भी महेन्द्र गिरि [ऊँचाई 1654मीटर]

नामक पर्वत कन्याकुमारी के क्षेत्र में स्थलों में दिखाया जाता है।

9- दर्दुर पर्वत-

यह पर्वत भारत के दक्षिणी भू भाग में स्थित था। (वा०रा० 3·36·38) महाभारत में पाण्ड्य एवं चोल राजा पाण्डवों को धूप और अगरु भेंट करते थे जो दर्दुर एवं मलय पर्वतों पर प्राप्त होता था। आज इसे नीलगिरि पहाड़ियों के नाम से जाना जाता है जिसकी सबसे ऊँची चोटी दादबेटा (2637 मीटर) कहलाती थी।[28]

10- मन्दराचल पर्वत-

रामायण के अनुसार इसकी स्थिति पूर्व के पठारी क्षेत्र में थी। इस पर्वतीय क्षेत्र में अनेक नगर बसे हुए थे जिसमें बानर राज सुग्रीव सीता की खोज के लिए वानरों को आदेश दिया था। इस पर सुवर्ण के रंगवाले लौहसदृश मुखवाले एवं वेग से दौड़ने वाले मनुष्यभक्षी किरात नाम जनजाति निवास करती थी; (वा०रा० 4·40·48-54)। जायसवाल एवं तिवारी[29] के अनुसार मन्दराचल की स्थिति बंका सबडिविजन में भागलपुर शहर से 48 कि·मी· की दूरी पर स्थित मंदारगिरि है जिसकी ऊँचाई 213 मीटर पायी जाती है। वास्तव में यह श्रृंखला राजमहल पहाड़ियों का ही एक भाग है जो संथाल आदि जनजातियों का आश्रय स्थल है किन्तु रामयण के विवरण के आधार पर इसे वर्मा के अराकान योमा पर्वत श्रेणी से समीकृत किया जा सकता है तब ही इसकी स्थिति उपयुक्त बैठ पाती है। (देखिये इसी शोध प्रबन्ध का अध्याय- 4 पृ० 115)।

11- यामुन पर्वत-

रामायण में इस पर्वत की स्थिति यमुना नदी के समीप बतायी गयी है। वानरराज सुग्रीव जब सीता की खोज हेतु पूर्व दिशा में बन्दरों को भेजते है तो उन्हें कालिन्दी, यमुना आदि नदियों के साथ महान यामुन पर्वत का जिक्र किया है। इस प्रकार इसकी स्थिति का अनुमान बुन्देलखण्ड एवं मध्यभारत के पहाड़ी क्षेत्रों से लगाया जा सकता है जिनके सिलसिले यमुना के दक्षिणी तट तक फैले हैं (वा0रा0 4.40.21)।

5.3. अपवाह तंत्र-

भारत छोटी-बड़ी असंख्य नदियों का देश है। यहाँ की इन नदियों ने देश की आर्थिक समृद्धि एवं विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतवर्ष की समूची संस्कृति को ही संक्षिप्त रूप में नदी घाटी संस्कृति कहा जा सकता है। ये नदियाँ देश की जीवन रूपी रक्त को वहन करने वाली धमनियाँ हैं जिनमें प्रवाहित जलराशि का उपयोग, कृषि, विद्युत उत्पादन एवं आवागमन आदि के हेतु किया जा सकता है। भारत की अधिकांश नदियां ऊँची पर्वतमालाओं से निकलकर मैदानी भागों में प्रवाहित होती है। इन नदियों की तटों एवं किनारे के क्षेत्रों में बड़े-बड़े नगरों एवं राज्यों की स्थापना हुई है। जिन्होंने आर्य संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। वैदिक एवं रामायणकालीन ऋषियों के आश्रम इन्हीं नदियों के किनारे स्थित थे।

वैदिक युग में आर्यक्षेत्र को सप्तसिन्धु नाम से व्यवहृत किया जाता था जिसमें सरस्वती एवं पंजाब की सात नदियां प्रवाहित होती थी। जब आर्य क्षेत्र का विस्तार सम्पूर्ण भारत पर हो गया तबदक्षिण की नदियां भी इस विवरण में शामिल की गयी[30] वाल्मीकि रामायण में दो स्थल ऐसे हैं जहां पर नदी तंत्र की विस्तृत परिचर्चा की गयी है। अयोध्याकाण्ड के 15 वे सर्ग में नदियों के बहने के दिशा के आधार पर इन्हे 3 वर्गों में विभक्त किया गया है। (वा०रा० 2·10·6)

(अ)प्राग्वाहा- पूर्व की ओर प्रवाहित नदियाँ।

(ब)ऊर्ध्ववाहा- ऊपर की ओर बहने वाली नदियां जिसमें झील (पम्पासर, मानसरोवर झील)आदि सम्मिलित किये जाते हैं।

(स)तिर्यग्वाहा- उत्तर एवं दक्षिण की ओर प्रवाहित होने वाली नदियां अन्यत्र जब सुग्रीव वानरों को विभिन्न दिशाओं में सीता की खोज के लिए भेजते हैं तो मार्ग में पड़ने वाले देशों, नगरों पर्वतों आदि के साथ नदियों का भी जिक्र करते हैं। रामायणकाल में देश के अपवाह तंत्र के वर्गीकरण में सरहिन्द एवं विन्ध्य के पठारी क्षेत्रों को आधार माना गया है जो आज भी बड़ा वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत लगता है।[31]

(अ) पूर्व वाहिनी नदियाँ-

सरहिन्द जल विभाजक के पूर्व एवं भारतीय प्रायद्वीप के उत्तर की ओर बहने वाली नदियों को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। ये सभी नदियां गंगा एवं उसकी सहायक नदियाँ है जो हिमालय पर्वत मालाओं से निकलकर पूर्वी समुद्र में गिरती हैं। इनमें से अधिकांश नदियाँ नियत वाही है।

जिनमें शुष्क ऋतु में भी हिमालय क्षेत्र से हिम के पिघलने के कारण विशाल जलराशि पायी जाती है(चित्र 5 4)।

(ब) पश्चिम वाहिनी नदियां-

वे नदियां जो सरहिन्द जल विभाजक से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हैं इनमें सिन्धु एवं उसकी सहायक नदियां सम्मिलित की जाती हैं जो पश्चिमी सागर (अरब सागर) में जाकर गिरती हैं(चित्र 5·4))।

(स) दक्षिणवाहिनी नदियां-

इस वर्ग के अन्तर्गत वे नदियां आती हैं जो दक्षिण भारत के प्रायद्वीपीय क्षेत्र पर प्रवाहित होती है। इनमें नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि नदियां आती है जिनका प्रवाह मार्ग पश्चिम एवं पूर्वी दोनों सागरों की ओर है(चित्र 5·4))।

(द) ऊर्ध्व वाहिनी- नदियां-

इनमें पम्पासर, मानसरोवर, एवं अन्य झीलों को सम्मिलित किया जाता है। या तो इन सरोवरों में गिरने वाली छोटी-छोटी नदियां थी जो इन्हीं झीलों में अपना जल प्रवाहित करती थीं।

(3) पूर्ववाहिनी नदियां:गंगा-यमुना नदी समूह-

1- गंगा नदी-

गंगा नदी भारत की एक सबसे पवित्र नदी मानी जाती है जिसका उल्लेख ऋग्वेद से लेकर वेदोत्तर कालीन अनेक धर्मग्रन्थों में मिलता है। इसे देवलोक

BHARAT VARSA
RIVERS
(RAMAYAN PERIOD)
68° E
76°
84°
92°
100° E
36° N
N 36°
28°
28°
20°
20°
12° N
N 12
4°
4°
72° E
80°
88°
96° E
PASHCHIMA
VAHINI
SINDHU
VIPASA
SATADRU
SARASWATI
SINDHU
HIMAVAN PARVATA
PURVA
VAHINI
YAMUNA
KAUSIKI
NARMADA
MAHANADI
GODAVARI
DAKSHIN
VAHINI
KRISNAVENI
KAUVERY
PASHCHIMA
SAMUDRA
PURVA
SAMUDRA
100 0 100 300 500 Km
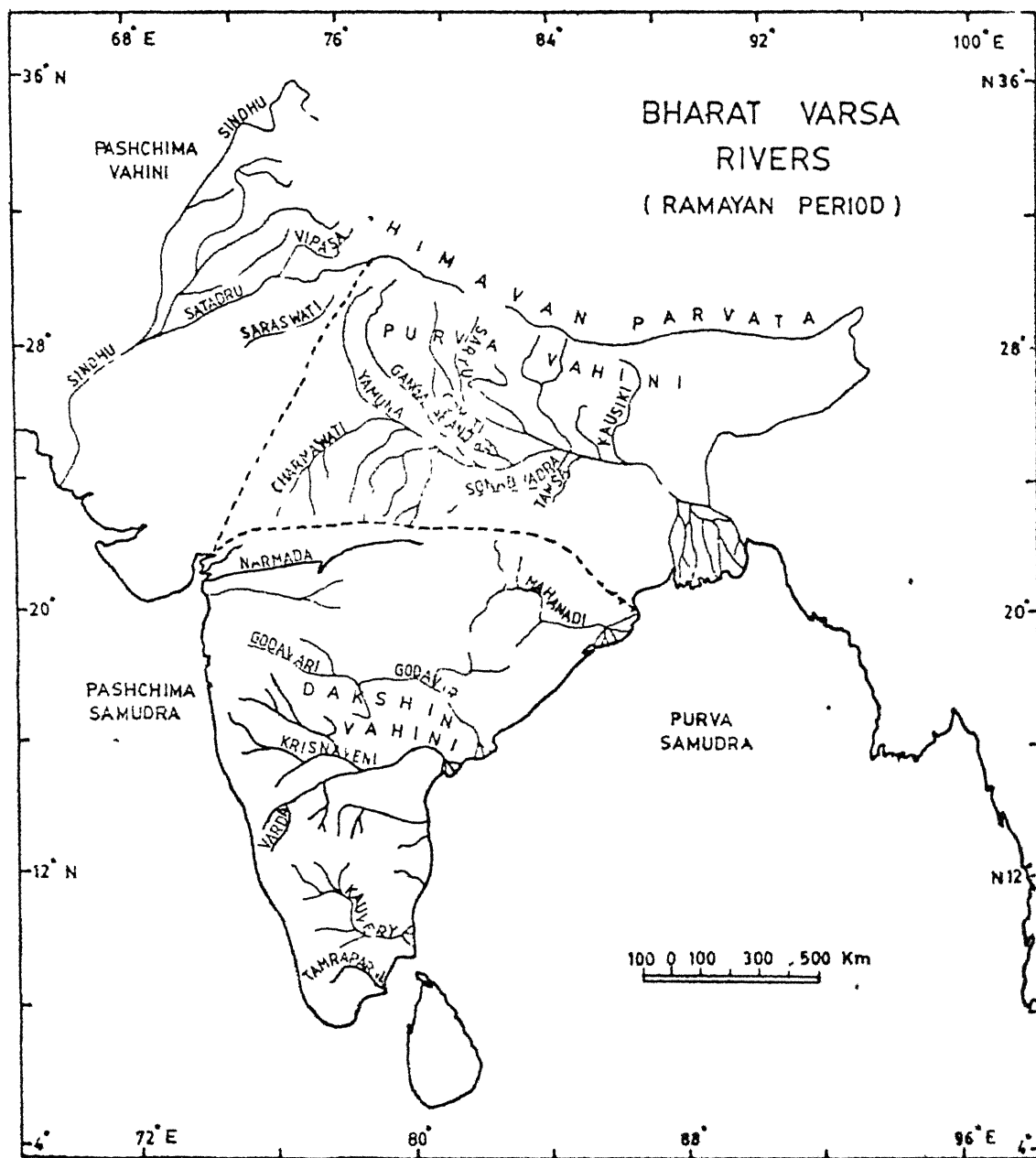
FIG 5.4

की नदी बताया गया है जिसे भगीरथ ने अपने तपस्या के बल से अपने पितृजनों के उद्धार हेतु धरातल पर उतारा था। रामायण एवं पौराणिक ग्रन्थों में गंगा की उत्पत्ति हिमालय से हुई मानते हैं [वा०रा० 1·37·8] जो भगवान शिव का निवास स्थान है। भगवान शंकर के मस्तक से निकलकर यह विन्दु सरोवर में गिरती है तथा फिर सात धाराओं [वा०रा० 1·43·14-15] ह्लादनी,पावनी, सुचक्षु,सीता,महानदी,सिन्धु एवं भागीरथी में विभक्त हो जाती है। रामायण एवं पुराणों के इस आख्यान से यह पता चलता है कि गंगा एक मानव निर्मित नदी है । ऐसी संभावना है कि हिमालय के उत्तरी ढालों के सहारे प्रवाहित नदी को भगीरथ ने अपने प्रयासों से दक्षिण की ओर मोड़ दिया जिससे उत्तरी मैदान की खुशहाली में अपार वृद्धि हुई। आज भी बड़ी नदियों से निकाली गयी बड़ी नहरें नदी का ही आभास देती हैं। गंगा को "त्रिपथगा" भी कहते हैं अर्थात् यह आकाश,पृथ्वी एवं पाताल लोकों में प्रवाहित होती है [1·3523-24] गंगा शब्द जिसकी व्युत्पत्ति [गम्] जाना धातु से हुई है इसके निरन्तर प्रवाहमान होने की ओर संकेत देता है। गंगा का उद्भव गढ़वाल क्षेत्र के स्थान से भागीरथी के रूप में होता है। देवप्रयाग में अलकानन्द इससे आकर मिलती है जहां से दक्षिण इसे गंगा नाम से जाना जाता है। मंदाकिनी अलकनन्दा की सहायक नदीहैइसे केदार पर्वत से निकलने वाली काली गंगा भी कहते हैं। गंगा नदी का प्रवाह मार्ग पर्वतीय एवं मैदानी क्षेत्रों से होकर गुजरता है। इन दोनों क्षेत्रों में इसके क्षेत्र में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। इसे जान्हवी ,दिव्या,भागीरथी,त्रिपथगा आदि अनेक नामों से जाना

है (वा0रा0 1·43·36-38)। रामायण काल में यह नदी कोशल देश की 4 दक्षिण एवं पश्चिमी सीमा बनाती थी (वा0रा0 1·150·12)। इसके किनारे के पर्वतीय क्षेत्र ~~पश्चिमी~~ पर्यटक केन्द्र के रूप में विकसित थे (वा0रा0 1·50·15)। श्रृंगवेर पुर गंगा की ~~कै~~ किनारे बसा था वा0रा0 1·50·26)। प्रयाग में गंगा यमुना नदियों के पवित्र संगम का वर्णन वाल्मीकि रामायण में अत्यन्त रोचक ढंग से किया गया है (वा0रा0 1·54·6)। प्रयाग में स्थित भरद्वाज आश्रम रामायण काल में अध्ययन एवं विद्वत सम्मेलन का एक प्रमुख केन्द्र था। वाल्मीकि का एक आश्रम गंगा नदी के किनारे बिठूर के समीप भी था (वा0रा0 2·47·16-17) रामायणकाल में गंगा नदी के किनारे के भाग बड़े ही समृद्धिशाली थे एवं इसके किनारे अनेक नगर, धार्मिक सांस्कृतिक एवं पर्यटन केन्द्र स्थित थे।

2- यमुना नदी-

यह नदी गंगा की प्रमुख सहायक नदी है (वा0रा0 2·54·2) श्री राम प्रयाग में भरद्वाज मुनि के आश्रम से दक्षिण चलकर यमुना नदी को पार किये थे (वा0रा0 7·66·15)। यमुना में गंगा की पश्चिमी वाहिनी होकर मिलती थी (वा0रा0 2·55·4)। गंगा यमुना संगम क्षेत्र के आस-पास की भूमि घने जंगलों से आच्छादित थी (वा0रा0 2·54·2)। यमुना को कालिन्दी भी कहते हैं (वा0रा0 4·40·21)। मधुपुरी (मथुरा) यमुना नदी के किनारे बसा था (वा0रा0 7·68·3)। यह वैदिक कालीन आर्यावर्त की पश्चिमी सीमा थी[32] ऋग्वेद में इसके समीपवर्ती क्षेत्रों में घोड़ों एवं गायों के पाये जाने का उल्लेख मिलता है।[33] चीनीलोग यमुना को "येन-मौ-ना" (Yen-Mou- Na) कहते हैं।

3- सरयू नदी-

रामायण में सरयू नदी की उत्पत्ति कैलाश पर्वत के समीप स्थित मानस सरोवर से बतायी गयी है* ब्रह्म सर से निकलने के कारण यह एक पवित्र नदी मानी जाती है. (वा0रा0 1·24·10)। सरयू नदी गंगा की एक सहायक नदी है(वा0रा0 1·28·5)। राजा सगर की राजधानी इसी नदी के किनारे स्थित थी (वा0रा0 1·36·19)। राजा दशरथ की राजधानी अयोध्या भी सरयू के तट पर बसी थी। इसी के उत्तरी तट पर उन्होंने यज्ञों का आयोजन किया था(वा0रा0 1·14·1)। सरयू नदी को आज घाघरा के नाम से जाना जाता है।

4- कौशिकी नदी-

यह नदी हिमालय से निकलती है (वा0रा0 1·34·9)। महर्षि कौशिक (विश्वामित्र) अपनी बहन मानकर इसी नदी के तट पर निवास करते थे। इसी कारण इसे कौशिकी नाम दिया गया(वा0रा0 1·34·10 और 1·34·8)। यह एक पूर्ववाहिनी नदी है(वा0रा0 1·40·9-10) जो आधुनिक कोसी का प्राचीन नाम है। यह नदी तिब्बत क्षेत्र से निकलकर भागलपुर और पूर्णिया जिलों से होती हुई अपना जल गंगा में विसर्जित करती है।[35] मिथिला जाते समय महर्षि विश्वामित्र एवं भगवान राम इस नदी को पार किये थे।

---

* ब्रह्मा के मानसिक संकल्प से उत्पन्न होने के कारण इसे "मानस सरोवर" कहते हैं ।

5- गोमती नदी-

वा0रा0 2·44·1 1- रामायण के अनुसार राम वन गमन के समय इस नदी को पार करते हैं जो कोशल देश की दक्षिणी सीमा का निर्माण करती थी। रामायण के अनुसार इसका जल अत्यन्त शीतल होता है एवं इसके किनारे गायों के झुण्ड पाये जाते थे। भरत भी नौनहाल से लौटते समय इस नदी को पारकर अयोध्या पहुँचते थे। वा0रा0 1·71·16 इसे आज भी गोमती नाम से जानते हैं जो शाहजहाँ पुर के पास से निकल कर लखनऊ एवं जौनपुर आदि जनपदों से होती हुई सैदपुर के पास गंगा में मिलती है।

6- सदानीरा नदी-

इसे वर्तमान राप्ती नदी से समीकृत किया जा सकता है।

7- वेदश्रुति नदी-

यह नदी कोसल जनपद में सरयू नदी के दक्षिण में स्थित थी जिसे राम ने अपनी वनयात्रा के दौरान पार किया था वा0रा0 2·49·10 यह वर्तमान कालीन बसुई नदी है।

8- स्यान्दिका नदी वा0रा0 2·49·12-

गोमती नदी से दक्षिण बढ़ने पर स्यान्दिका नदी स्थित है। रामायण काल में यह नदीभी कोशल जनपद में ही विद्यमान थी। इसमें राम अपने शीघ्रगामी घोड़ों द्वारा स्यान्दिका नदी पार करते श्रृंगवेर पुर पहुँचे थे। वर्तमान समय में

हम इसे गोमती एवं गंगा के मध्य प्रवाहित होने वाली सई नदी कह सकते हैं।

9- तमसा नदी-

वाल्मीकि रामायण में इस नाम की दो नदियों का वर्णन मिलता है।

प्रथम- बार तमसा का वर्णन राम के वन गमन के समय सरयू एवं गोमती नदियों के मध्य आता है जिसके किनारे राम अपनी पत्नी एवं सारथी सहित एक रात्रि विश्राम किये थे(वा0रा0 2·45·32-33)। पार्जिटर के अनुसार यह वर्तमान कालीन टौंस है जिसका उद्भव फैजाबाद जनपद में सरयू के दाहिने किनारे से लगभग 20 कि·मी· की दूरी से होता है[36](यह पूर्वी टोन्स है जो घाघरा के समानान्तर बहती हुई बलिया के पश्चिम में गंगा से मिल जाती हैं।

दूसरी- तमसा नदी वह है जिसके तट पर रामायण के रचनाकार महर्षि वाल्मीकि जी का आश्रम था। रामायण के अनुसार नारद के चले जाने पर वाल्मीकि जी अपने शिष्य भरद्वाज के साथ तमसा नदी के तट पर जो गंगा नदी से अधिक दूर नहीं था गये। इसका घाट कीचड़ से रहित था(वा0रा01·2·3-6) राम चित्रकूट जाते समय वाल्मीकि मुनि के आश्रम में जाते हैं और उनका आशीर्वाद ग्रहण करते हैं(वा0रा0 2·56-15-17)सीता जी निष्कासन के समय वाल्मीकि जी के आश्रम में ही रहती थीं।(वा0रा0 7·47·16-17) जहां उन्होने लव एवं कुश नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। रामायण के वृतान्त के अनुसार सीता जी गर्भिणी अवस्था में एक बार फिर तपोवन देखने की इच्छा व्यक्त करती हैं। लक्ष्मण गंगा नदी को पार कर उन्हे बाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ आते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि दूसरी तमसा गंगा नदी के दक्षिण में स्थित थी। वास्तव में यह आज की टौंस नदी है जो सतना की कैमूर पहाड़ियों से निकलकर उत्तर पूर्व को बहती हुई इलाहाबाद जनपद में गंगा से मिल जाती है। पठार से बहने के कारण इसके किनारे पर कीचड़ नहीं देखे जाते हैं एवं यह समस्त क्षेत्र वन से ढका था जहाँ वाल्मीकि आश्रम के स्थित होने की अधिक सम्भावनाएं हैं। कुछ लोग वाल्मीकि मुनि का आश्रम कानपुर से लगभग 23 कि0मी0 उत्तर पश्चिम बिठूर के पास मानते हैं (वा0रा0 7.71 पूरा सर्ग) यह बात रामायण के इस विवरण पर आधारित है कि शत्रुघ्न लवणासुर को मारकर वाल्मीकि आश्रम में रुके थे जहाँ उन्होंने लवकुश से रामायण सुना था। इसी प्रकार का एक वाल्मीकि आश्रम असम में गौहाटी के पूर्व स्थित है। इन तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि रामायणकाल में एक ही ऋषि के कई आश्रम देश के विभिन्न भागों में थे एवं ऋषि लोग भ्रमणकारी जीवन व्यतीत करते थे। आज भी तपस्वी एवं साधु एक जगह स्थायी रूप से नहीं रहते हैं बल्कि वे प्रायः भ्रमण किया करते हैं।

10-मंदाकिनी नदी-

रामायण में दो मंदाकिनी नदियों की चर्चा पहली नदी कैलाश पर्वत के क्षेत्रमें बहती थी (वा0रा0 7.11.42-43) जबकि दूसरी नदी चित्रकूट के पठारी क्षेत्र में प्रवाहित होती थी. (वा0रा0 2.96.15,2.99.14)।

रामायण में मन्दाकिनी के तटवर्ती भाग को बड़ा ही रमणीयबतलाया गया है जिसके किनारे तपस्वियों के आश्रम स्थित थे §2·95 पूरा सर्ग§। महाभारत में भी इस नदी की चर्चा है। प्रयाग के भरद्वाज आश्रम से 42 कि·मी· §3, 1/2योजन§ दूरी पर चित्रकूट के समीप मन्दाकिनी नदी बहती है§वा०रा० 2·86·11-12§ इस नदी को आज "त्रिकूट" में पयस्विनी" भी कहा जाता है। यह ऋक्षवान पर्वत से निकलकर चित्रकूट क्षेत्र में बहती हुई यमुना से मिल जाती है।

अन्य पूर्वी नदियों के अन्तर्गत चर्मवती§ चम्बल§ कीपवती, कुटिला, कुलिंगा, शिलावहनदी, स्थाणुमती, अंशुमती कर्मनाशा, दृषद्वती, शरदण्डा आदि नदियों का उल्लेख मिलता है इसमें से अधिकांश नदियां छोटी नादयां है जो उपर्युक्त नदियों की सहायिकाएं हैं।

§ब§ पश्चिमी वाहिनी नदियां- §सिन्धु-सरस्वती समूह§-

1- सिन्धु नदी-

विशाल नदी सिन्धु§वर्तमान सिन्धु नदी§ जो गंगा की सात धाराओं में से एक है हिमालय से निकलकर पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित होती है §वा०रा० 1·43·13§ रामायण के अनुसार सिन्धु नदी एवं समुद्र के संगम पर सोमगिरि नामक एक महान पर्वत स्थित है§वा०रा० 4·42·15§ ऋग्वेद में भी इस नदी का उल्लेख किया गया है।[37] ~~§वा०रा० 10·75·2§~~ ऋग्वेद में इसे धुवानारी के रूप में चित्रित किया गया है।[38] प्लिनी ने सिन्धु समूह में सिन्धु

सहित उन्नीस नदियों काउल्लेख किया है।[39] अलबरूनी के अनुसार चेनाव (चन्द्रभागा) नदी के संगम के पहले सिन्धु के ऊपरी प्रवाह को ही सिन्धु नदी कहा जाता है।[40] इसी नदी के आधार पर उस प्रदेश का जहाँ से यह बहती है सिन्धु देश कहा जाता है।[41]

2- विपाशा नदी-

यह नदी कुरुजांगल प्रदेश में इक्षुमती तथा शरदण्डा के दक्षिण मिलती थी जिसे भरत को ननिहाल से वापस लाने के लिए जाते समय दूत पार करते हैं (वा0रा0 1·68·19)। यह आज की व्यास नदी है जो रोहतंग दर्रे के समीप पीरपंजाल पर्वतमाला से निकलकर पहले उत्तर पश्चिम एवं बाद में दक्षिण पश्चिम बहती हुई सतलज से जा मिलती है।

3- शतद्रु नदी-

यह नदी भरत के ननिहाल (केकय प्रदेश के मार्ग में पड़ती है। इसका उल्लेख रामायण में केकय प्रदेश के पूर्वी दिशा में हलादिनी नदी के बाद किया गया है (वा0रा0 2·71·2) यह आज की सतलज नदी है जिसे यूनानी हाईफैसिस नदी कहते हैं। टालमी ने इसे जरद्रोस और प्लिनी ने हेसीद्रोस कहा है।[42] सतलज का उद्गम स्थल मानसरोवर के समीपवर्ती क्षेत्र से होता है। यह सिन्धु की सबसे महत्त्वपूर्ण आप्लाविका है जिसका उल्लेख ऋग्वेद में भी किया गया है। (वा0रा0 6·30·11) इन्दुमती (वा0रा0 2·68·17) और शरदण्डा (वा0रा0 2·68·16) नदी शतद्रु की सहायक नदियाँ हैं।

4- सरस्वती नदी-

यह पश्चिम की ओर बहने वाली एक नदी थी वाल्मीकि रामायण में गंगा एवं सरस्वती के संगम का उल्लेख मिलता है. (वा0रा0 2·71·5)। इस नदी का उल्लेख सीता की खोज के लिए पूर्व दिशा के सन्दर्भ में किया गया है। ऋग्वेद में इसे पर्वत से समुद्र तक एक पवित्र नदी के रूप में चित्रित किया गया है(मनु के अनुसारसरस्वती एवं दृषद्वती के बीच के क्षेत्र को ब्रह्मा ब्रह्मवर्त कहते थे[43]। यह नदी मिलिन्द पन्हो में हिमालय से निकलती है।[44] मनु के अनुसार सरस्वती के लुप्त होने वाले स्थान को विनशन कहा गया है। आज सरस्वती एक लुप्त सरिता है "ईसासे 2-3 हजार पूर्व हिमालय पर्वत मालाओं से निकलकर एवं राजस्थान के चुरू के समीप से बहती हुई यह अरब सागर में गिरती थी एवं लूनी इसकी सहायक नदी थी। बाद में सरस्वती पश्चिम की ओर खिसकती गयी एवं अहमदपुर के पास सिन्धु की सहायक सतलज से जा मिली। कालान्तर में इसके ऊपरी भाग काजल गंगा की एक सहायक नदी द्वारा अपहृत कर लिया गया जिससे सरस्वती की निचली धारा सूख गयी एवं यमुना नदी का प्रादुर्भाव हुआ। सरस्वती कापुराना मार्ग आज भी घग्घर की शुष्क घाटी के रूप में राजस्थान में विद्यमान है । चूँकि वर्तमान यमुना में सरस्वती की ऊपरी घाटी का जल भी प्रवाहित होता है यही कारण है कि प्रयाग(इलाहाबाद) में गंगा,यमुना एवं सरस्वती का संगम (त्रिवेणी) माना गया है। वाल्मीकि रामायण में इसी सरस्वती का उल्लेख किया गया है।[45]

(स) दक्षिण वाहिनी (प्रायद्वीपीय भारत) की नदियां-

इन नदियों को दक्षिण वाहिनी कहने की अपेक्षा दक्षिण की नदियां कहना उपयुक्त होगा क्योंकि इन नदियों का वर्णन या तो राम के चित्रकूट से दक्षिण की ओर जाते समय या वानरों को दक्षिण दिशा में सीता की खोज हेतु भेजते हुए हुआ है। इस वर्ग के अन्तर्गत दक्षिण की सभी प्रमुख नदियां सम्मिलित हैं।

1- महानदी-

इसका उल्लेख दक्षिण दिशा में खोज हेतु प्रेषित वानरों के समक्ष किया गया है। इसे चित्रोत्पला भी कहते हैं आज महानदी के नाम से जानी जाती है (वा0रा0 4·41·9) महानदी उड़ीसा की सबसे बड़ी नदी है जो मैकाल पहाड़ियों से निकलती है एवं पूर्व को बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

2- नर्मदा नदी-

वाल्मीकि रामायण के अनुसार नर्मदा नदी पथरीले भागों में बहती हुई पश्चिमी समुद्र में जाकर मिलती है (वा0रा0 7·31·20)। इसे नर्मदा, रेवा, समुद्रभवा एवं "मेकल सुता" आदि नामों से जाना जाता है। टालमी ने इसे नेमेडोस कहा है। "मेकलसुता" से इसके उद्भव क्षेत्र का बोध होता है जो मैकाल श्रेणी की अमरकंटक पहाड़ियों में स्थित है। नर्मदा के तटपर बड़े-बड़े नाग पाये

जाने की बात कही गयी है इस नदी के किनारे के दृश्य अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहारी थे जिसके तटों के सहारे रामायणकाल में अनेक मुनियों के अनेक आश्रम स्थित था (वा0रा0 7·31·36)। आज भी जबलपुर के पास धुआँधार प्रपात एवं संगमरमर की शिलाओं से युक्त तंग घाटी अपनी प्राकृतिक छटा के लिए अद्वितीय है। मत्स्य पुराण के अनुसार नर्मदा और समुद्र के संगम पर एक तीर्थ स्थल स्थित था।[46]

3- गोदावरी नदी-(वा0रा0 4·41-42)

गोदावरी नदी नासिक के पास से सह्याद्रि पहाड़ियों से निकलती है एवं पूर्व तथा दक्षिण पूर्व दिशा में प्रवाहित होती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है।। भवभूति ने 'उत्तर रामचरितम्' में इस नदी का वर्णन किया है।[47] रामायण में सुग्रीव ने दक्षिण दिशा में सीता की खोज हेतु, वानरों को भेजते समय इस नदी का वर्णन किया है। यह नदी "आर्यावर्त" के दक्षिण में स्थित थी जिसके किनारे पर अनेक ऋषियों के आश्रम स्थित थे। पंचवटी में भगवान राम गोदावरी के तट के पास ही निवास किये थे एवं इसी के समीप लक्ष्मण ने पर्णशाला का निर्माण किया था जहां से रावण ने सीता का अपहरण किया था। भारत में गोदावरी को भी पवित्र नदी माना जाता है और इसे दक्षिण की गंगा कहते हैं। इसमें रामायण काल में भी काफी स्नानार्थी स्नान करने आते थे एवं इनके किनारे पर सुन्दर घाट स्थित थे(वा0रा0 3·64 ।·।)।

4- कृष्ण वेणी (वा0रा04·41·9)

यह आधुनिक कृष्णा नदी है जिसे वाल्मीकि रामायण एवं पुराणों में कृष्ण वेणी नाम से जाना जाता है।[48] यह नदी महाबलेश्वर पहाड़ियों से निकलकर पूर्व को बहती हुई विजय वाड़ा के पास बंगाल की खाड़ी में गिरती है। बालि के वध के बाद भगवान राम लक्ष्मण सहित इसी नदी की सहायक तुंगभद्रा के समीप स्थित प्रस्त्रवण गिरि पर वर्षा ऋतु व्यतीत किये थे।

5- कावेरी-

कावेरी नदी जिसका उद्भव नीलगिरि पहाड़ियों से होता है। रामायण में इसे दिव्य,जलवाली एवं पुण्य सलिला बताया गयाहै जिसके तटों पर अप्सराएं विहार करती थीं(वा0रा0 4·41·15) उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि यह नदी अतीत काल से ही पर्यटकों का केन्द्र रही हैं। इस नदी का उल्लेख पुराणों में भी प्राप्त होता है।[49]

6- वरदा-

यह नदी तुंगभद्रा की एक सहायक नदी है यह अनन्तपुर के उत्तर में सह्याद्रि से निकलती हैं। रामायण में इसे सर्पों से युक्त बताया गया है। वा0रा0 4·41·9)

7- ताम्रपर्णी-

रामायण में इस नदी को घड़ियालों से परिपूर्ण बताया गया है(वा0रा0 4·41·17) एवं इसके तटवर्ती क्षेत्रों में चन्दन के वृक्ष पाये जाते थे। ताम्रपर्णी नदी

प्राचीनकाल में मोती निकालने के लिए प्रसिद्ध थी टालमी के अनुसार इसके मुहाने पर कोरकै बन्दरगाह स्थित था[50] यह नदी आज की वैगाई नदी है जो पलनी की पहाड़ियों से निकलकर दक्षिण पूर्व दिशा में बहती हुई मंडपम के पास समुद्र में गिरती है।

5.4 मिट्टी-

वाल्मीकि रामायण में मिट्टियों का वह वैज्ञानिक विश्लेषण एवं वर्गीकरण नहीं देखा जाता है जो आज उपलब्ध हैं। केवल मोटे तौर पर नदियों की काँपमिट्टी, पठारी मिट्टी एवं मरूस्थल की रेतीली मिट्टियों का संकेत यत्र तत्र दिया गया है।

(अ) जलोढ़ या काँप मिट्टी-

रामायणकालीन अधिकांश नदियां आर्यावर्त प्रदेश (सिन्धु-गंगा) क्षेत्र में बहती थी इन नदियों के जलोढ़ के जमावों से विशाल उत्तरी मैदान का निर्माण हुआ था जिसकी भूमि समतल एवं उपजाऊ थी एवं जिस पर अनेक फसलें उगायी जाती थी। रामायण काल में इस क्षेत्र में गहन कृषि की जाती थी।

(ब) पठारी मिट्टी-

दक्षिण भारत का क्षेत्र जहां पर खनिजों की अधिकता थी पठारी मिट्टी से बना था यहां की नदियों का अपवाह क्षेत्र सीमित था यह समस्त क्षेत्र पथरीला था जो ग्रेनाइट, स्फटिक, नीस आदि शिलाओं से बने थे। इनके विखंडन से लाल तथा ~~काली~~ पठारी मिट्टियां बनी थी जो अपेक्षतया कम उपजाऊ थी।

दक्षिण के पठारी क्षेत्र का अधिकांश भाग घने जंगलों से ढका था तथा सिंचाई के साधनों के अभाव में इन क्षेत्रों में सीमित खेती की जाती थी केवल नदियों के समुद्र तटीय डेल्टाई भागों में ही जलोढ़ मिट्टी के क्षेत्र पाये जाते थे जहां पर घने ज्वारीय वन उगे हुए थे। रामायण काल में दक्षिण भारत के क्षेत्र में गहन कृषि का संकेत नहीं मिलता है यहां के निवासी वन्य वस्तुओं के संग्रह कर एवं आखेट आदि कर अपना जीवन व्यतीत करते थे।

(स) मरुस्थलीय मिट्टी-

राम के बाणों से कुक्षि देश का निर्माण हुआ था जो आज थार के मरुस्थल के रूप में जाना जाता है। यहां की मिट्टी रेतीली थी यह क्षेत्र भी कृषि के उपयुक्त नहीं था।

5·5 जलवायु एवं वनस्पति-

रामायणकालीन भारत की जलवायु मुख्यत: मानसूनी थी और आज की ही भांति की जलवायु दशाएं पायी जाती थीं किन्तु उस समय देश के अधिकांश क्षेत्र पर घने वनस्पति का आवरण था। अच्छे परिस्थैतिक संतुलन के कारण वर्षा की मात्रा पर्याप्त एवं सुवितरित होती थी।अकाल एवं अनावृष्टि की संभावनाएं कम थीं। महाकाव्य के अनेक स्थलों पर मनचाहे वृष्टि की बात कही गयी है। वनस्पतियों के घने आवरण के कारण जल प्रवाह की गति भी धीमी थी एवं जल प्लावन का भय कम था। देश के समस्त भाग पर ~~जिससे देश के सम्पूर्ण क्षेत्र पर~~ मनसूनी पतझड़ के वन उगे हुए थे। केवल थार मरुस्थल में मरुस्थलीय एवं हिमालय

BHARAT VARSA
VEGETATION
(RAMAYAN PERIOD)
N
ICE CAPPED
DENSE FOREST
THIN FOREST
DESERT
200 0 200 400 600 800 Km
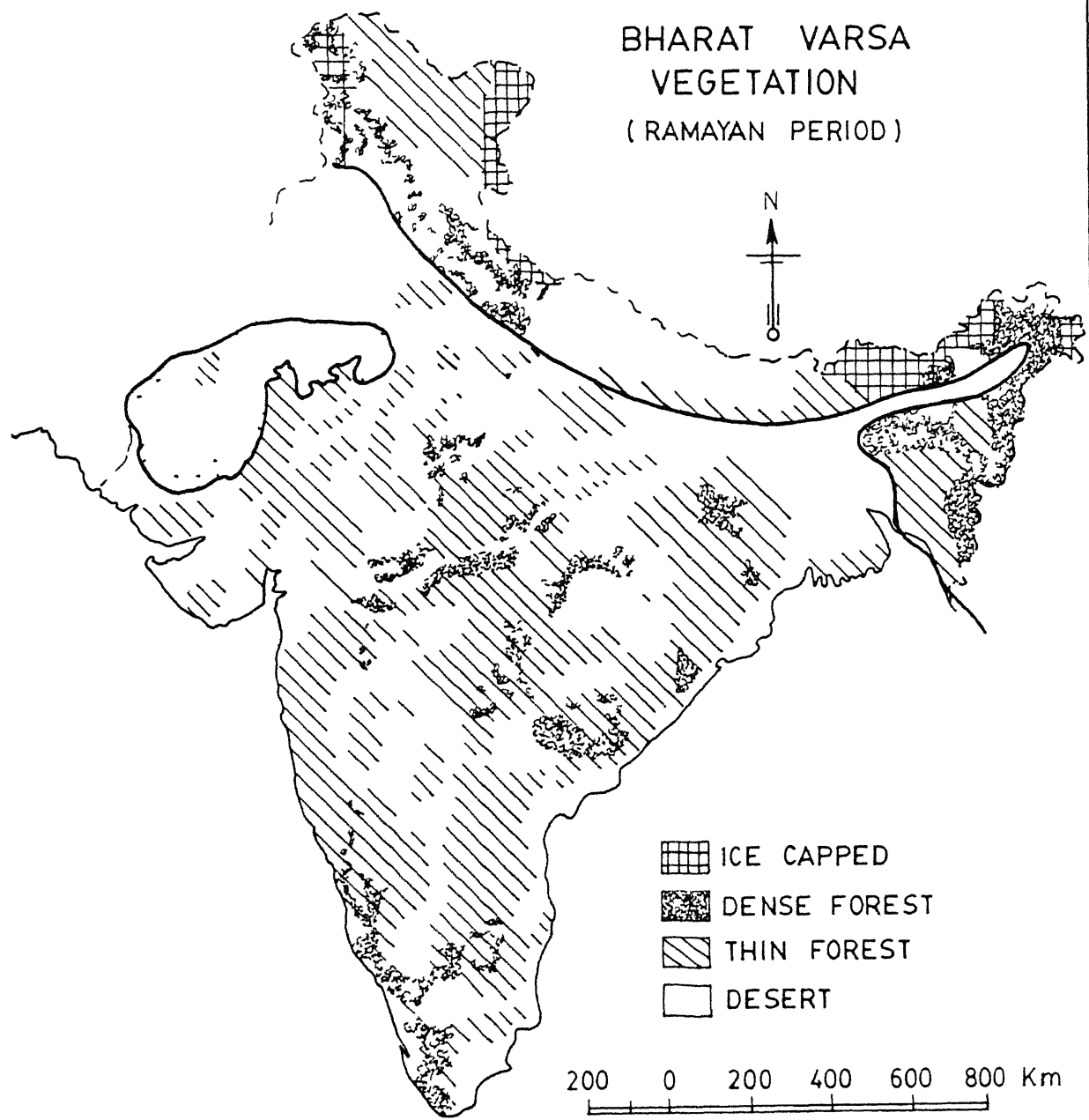
FIG. 5 5

के पर्वतीय अंचलों में पर्वतीय वनस्पति के संकेत मिलते हैं। रामायणकालीन वनस्पतियों को 3 प्रमुख वर्गों में बांटा जा सकता है(चित्र 5 5)।

(3) मैदानी एवं पठारी वन-

ये वन देश के उत्तरी मैदान एवं दक्षिण प्रायद्वीप के पठारी क्षेत्रों पर फैले हुए थे। ये पर्णपाती या पतझड़ के वन थे। रामायण काल में दक्षिण भारत का अधिकांश भू भाग इन्ही वनों से आवृन्त था जिसमें राम ने अपने वनवास का समय व्यतीत किया था। ये वन बड़े सघन एवं दुर्गम थे तथा इनमें अनेक क्रूर असुर एवं राक्षस, वनवासी एवं हिंसक पशु निवास करते थे (वा०रा० 1·24·13-15)/इन्ही वनों में कुछ आर्य ऋषि एवं मनीषी भी निवास करते थे जिनका कार्य स्वाध्याय, भगवद् भजन एवं आर्य संस्कृति का प्रचार करना था (वा०रा० 3·11·54-55)। इनमें कतिपय चुने हुए वन प्रदेशों का उल्लेख रामायण में किया गया है एवं शेष को "दुर्गमवन" कहकर अभिहित किया गया है। धव(खैर), अश्वकर्ण एक प्रकार का शालवृक्ष) ककुभ, अर्जुन, बेल, तिन्दुक, तेन्दु पाटल(पाडर) एवं बेर आदि इन वनों के प्रमुख वृक्ष थे(वा०रा० 1·24·13-15) रामायणकालीन अरण्य प्रदेशों में सालवन (वा०रा० 2·71·16) (आधुनिक कुशीनारा प्रदेश का वन), पिप्पलीवन(अगस्त्याश्रम के समीप का वन) दण्डकारण्य(3·1·1 एवं 13·1·4) (महाराष्ट्र प्रदेश की वनस्थली), चैत्ररथवन (वा०रा० 2·71·4, शिलावह नदी के समीपवर्ती हिमालपर्वतीयवन प्रदेश) नैमिषारण्य(वा०रा० 7·91·15-16)लखनऊ से 72 कि०मी० उत्तर पश्चिम का आधुनिक निमसर क्षेत्र) एवं मतंगारण्य(ऋष्यमूक पर्वत एवं पम्पासर के पश्चिमी

तट पर स्थितवन (वा0रा0 3·72·3-5) आदि प्रमुख हैं जिनमें आम, जामुन, प्रियाल, कटहल, बड़, पाकड़, तेंदू, पीपल, कनेर, धव, नागकेशर, तिलक, नक्तमाल, नीला अशोक, कदम्ब, करवीर, भिलावा, अशोक, लाल चन्दन तथा मन्दार आदि के वृक्ष पाये जाते थे। इसके अतिरिक्त विशालपुरी के समीप पुष्कर वन स्थित था (वा0रा0 1·61·3-4) जो वर्तमान पुष्कर के समीपवर्ती क्षेत्र पर फैला था। इसी प्रकार शरवन (जहाँ अधिकांशतः मूँज पाये जाते थे) हिमालय के तलहटी का वन प्रदेश था। उपयुक्त संकेतों के अभाव में इसे ठीक प्रकार से समीकृत नहीं किया जा सकता है पंचवटी (नासिक के पास का समस्त भू भाग) रामायणकाल में अपनी नैसर्गिक शोभा एवं रमणीयता के लिए विख्यात था। इसी वन से होकर प्रसिद्ध गोदावरी नदी बहती थी। इस वन में हंस कारण्डव, चक्रवाक आदि पक्षी पाये जाते थे। साथ ही यह क्षेत्र साल, ताल, तमाल, चन्दन, नीप, पनस, धव, अश्वकर्ण, खादिर (खैर) शमी, किंशुक, पाटल आदि वृक्षों से परिपूर्ण था (वा0रा0 3·14-46 पूरे सर्ग)।

(ब) मरुस्थलीय वन-

इन वनों में छोटे एवं ठिगने किस्म के वृक्ष तथा छोटी-छोटी कटीली झाड़ियाँ पायी जाती थी। इनमें अनेक प्रकार की औषधियां भी मिलती थी। यह क्षेत्र पशुपालन एवं पशुचारण के उपयुक्त था (वा0रा0 5-22·39-43) ए वन आधुनिक राजस्थान क्षेत्र के मरुस्थलीय भूभाग पर फैले हुए थे।

(स) पर्वतीय वन-

ये वन हिमालय प्रदेश(उत्तरी हिमालय एवं अन्य पर्वतीय क्षेत्र) में पाये जाते थे। इनमें कुबेर का नन्दन वन विशेष रूप से उल्लेखनीय था जिसमें चीड़ एवं देवदार के वृक्ष पाये जाते थे।

5.6 प्रमुख द्वीप समूह -

रामायणकालीन लोग भारत के समीपवर्ती द्वीपों जैसे मिनिकोय, अन्दमान निकाबार(नागद्वीप), मालद्वीव, , मारीशस आदि के बारे में जानकारी रखते थे। वे इन द्वीपों पर आते जाते रहते थे। लंका द्वीप तो राम के शासन में तत्कालीन भारत के अन्तर्गत समाहित कर लिया गयाथा। रामायण में पूर्वी द्वीप समूह जिसमें जावा(यवद्वीप) सुमात्रा, बोर्नियो आदि द्वीप सम्मिलित हैं-का विस्तृत वर्णन किया गया है। रामायणकालीन लोगों का विश्व के अन्य द्वीपों के बारे में कितना ज्ञान था इसकी चर्चा चतुर्थ अध्याय में विस्तृत रूप से की गयी है।

संदर्भ

1. Dubey (1967) Geographical concepts in Ancient India, N.G.S.I., Varanasi, . 89.

2. Das, N.C. (1971): A note on the Ancient Geography of Asia, Bharat, Bharati Oriental Publisher & Book Seller, Varanasi P.

3. Op.cit., fn. 2, .3

4. अभिज्ञान शाकुन्तल में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि राजा दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र "भरत" के नाम पर ही हमारे देश का नाम "भारत पड़ा है।

5. Op.cit., fn. 1, P. 90

6. लाहा, वि.च. (1972): प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, उ0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ पृ0 18-19

7. Ibid P. 26.

8. Ibid. P. 26.

9. ऋग्वेद- 10·121·4

10. Op.cit., fn. 6, . 27

11. कालिदास: मेघदूतम् ; पूर्व मेघ श्लोक 6।

12. Jaiswal, A.P. and Tewari, R.C. (1977): Valmiki 's Knowledge of the Northern World: A Geographical Treatise on Ramayan, National Geographer Vol XXII, No. 1, P. 65.

13. Ibid P 61

14. Saxena,D.P. (1976): Regional Geography of Vedic India,Granthamlambag, Kanpur .4.

25. Op.cit.,fn.6, P.29

16. Op.cit.,fn.12,P 61.

17. Ibid, P. 62

18. Op.cit. ,fn.6,P 33

19. Ibid P. 113

20. मार्कण्डेय पुराण- 57·10

21. भवभूति: उत्तर रामचरितम् तीसरे अंक के आठवें श्लोक के बाद का गद्यभाग

22. Pargeter, F.E.(1894): Geography of Rama's Exile, J.R.A.S., London, P. 253.

23. बृहत्संहिता- 14·13

24. Op.cit.,fn.20, 57.10

25. Op.cit.,fn 22,P 258.

26. Ibid P. 262

27. Op.cit.,fn.6,P 37.

28. Op.cit.,fn.22,P 263

29. Jaiswal,A.P. and Tiwari ,R.C.(1978): Valmiki Knowledge of Eastern World: A Geographical Treatise on Ramayan National Geographer Vol. XIII, N.1 .16.

30. गंगा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा: सिन्धु कावेरी- जलेहीस्मन् सन्निधम् कुरु ॥

31. Op.cit.,fn.1, P 93.

32. Op.cit.,fn.14,P12.

33. Op.cit.,fn.9,--5.52.17

34. Op.cit.,fn.-6, P-56

35. Op.cit.,fn; 2?.P.14.

36. Op.cit.,fn.22, P 235.

37. Op.cit.,fn.9----10.75.2

38. Ibid---10.72

39. Macdonel: Ancient India, P. 43 and 48.

40. Op.cit.,fn.6, 49.

41. Ibdi P.49.

42. Ibid P. 50

43. Ibid. P.51

44. Ibid P .51

45. Ghose,Bimal (1979):Shifting Courses of the Saraswati River, Geographical Journal Vol, 145,P. 447-449.

46. कल्याण (1985): मत्स्य पुराणांक, गीताप्रेस गोरखपुर अध्याय 193

47. Op.cit.,fn.21, 2.30

48. Ali,S.M.(1966):The Geography of the Puranas, People's Publishing House,New Delhi P.122.

49. Ibid P.122.

50. Op.cit.fn.6, . 64.

षष्टम् अध्याय

वाल्मीकि रामायण में भारत: आर्थिक तंत्र

मानव जब से इस भूतल पर अवतरित हुआ है, भोजन ,वस्त्र एवं आवास ऐसी मूलभूत आवश्यकताओं ने उसे कभी भी चैन से नहीं रहने दिया है। आदिम युग में जब उसके साधन सीमित थे, वह इन आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु प्रकृति पर अधिक निर्भर था परन्तु ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता गया एवं विज्ञान ने प्रगति की वह स्वनिर्मित साधनों पर अधिक आश्रित होता गया। रामायणकाल भारतीय इतिहास के ऐसे युग को प्रदर्शित करता है जबकि मनुष्य मध्ययुगीन काल से गुजर रहा था जिसके कारण जहाँ देश के एक बड़े क्षेत्र पर वह आदिम युगीन जीवन व्यतीत कर रहा था - जिसके अन्तर्गत वह आखेट या बन्य उपजों आदि का संग्रह कर अपना भरण पोषण करता था - वहीं दूसरी तरफ कृषि आदि साधनों का विकास करके उसने अपनी खुशहाली के नये द्वार खोल लिये थे। प्रस्तुत अध्याय में रामायण में वर्णित घटनाओं के आधार पर तत्कालीन भारत में आखेट,पशुपालन,कृषि, सिंचाई, खनिज, उद्योग,यातायात- संचार ,व्यापार, अधिवास आदि के बारे में सम्यक् जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

6.1 वार्ता {अर्थशास्त्र}-

प्राचीन भारत में अर्थशास्त्र को वार्ता के नाम से अभिहित किया जाता था {वा0रा0 2.100.47}। वार्ता {वृत्तिरस्त्यास्याम् वृत + णः संस्कृत

तदभव§ से अभिप्राय उन साधनों से है जिनके द्वारा मनुष्य अपना जीविकोपार्जन करता है। अतः यह शब्द उन सभी व्यवसायों§पशुपालन, कृषि ,खनन,उद्योग,व्यापार आदि की ओर संकेत करता है जो मनुष्य अर्थ उपार्जन हेतु अपनाता है।

6·11 अर्थ-

रामायण में अर्थ§वा0रा0 6·83·32§ या धन§वा0रा0 1·5·5§ का तात्पर्य केवल सिक्कों से नहीं है बल्कि इसके अन्तर्गत समस्त चल अचल सम्पत्ति,अनाज,पशु,वस्त्र,आवास ,भूमि आदि§वा0रा0 2·33·17-21§ सभी कुछ सम्मिलित करते हैं। इस प्रकार रामायण काल में"अर्थ" शब्द उन्हीं अर्थो में प्रयुक्त होता था जिन अर्थो में वह आज हो रहा है। रामायण में अर्थ की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए यह कहा गया है कि अर्थ से ही सब क्रियाएं प्रस्फुटित होती हैं। धनवान व्यक्ति ही पंडित ,पराक्रमी और बुद्धिमान कहलाता है। धर्म,काम,प्रसन्नता,दया,क्रोध,शम,दम ये सभी कार्य धन द्वारा ही पूर्ण होते हैं+§वा0रा0 4·83·31-40§)

6·2 प्रमुख व्यवसाय-

मानव सभ्यता के इतिहास के देखने से यह स्पष्टहोता है कि उसके सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ उसके व्यवसायों में परिवर्तन होता गया गया है। यही कारण है जहां आदिम मनुष्य केवल वन्य पशुओं के शिकार एवं

BHARAT VARSA
OCCUPATIONS
(RAMAYAN PERIOD)
COW & CATTLE REARING
AGRICULTURE
FOOD GATHERING
HUNTING
100 0 100 300 500 Km
68° E
76°
84°
92°
100° E
36° N
N 36°
28°
28°
20°
20°
12° N
N12°
4°
E 72°
80°
88°
96° E
4°
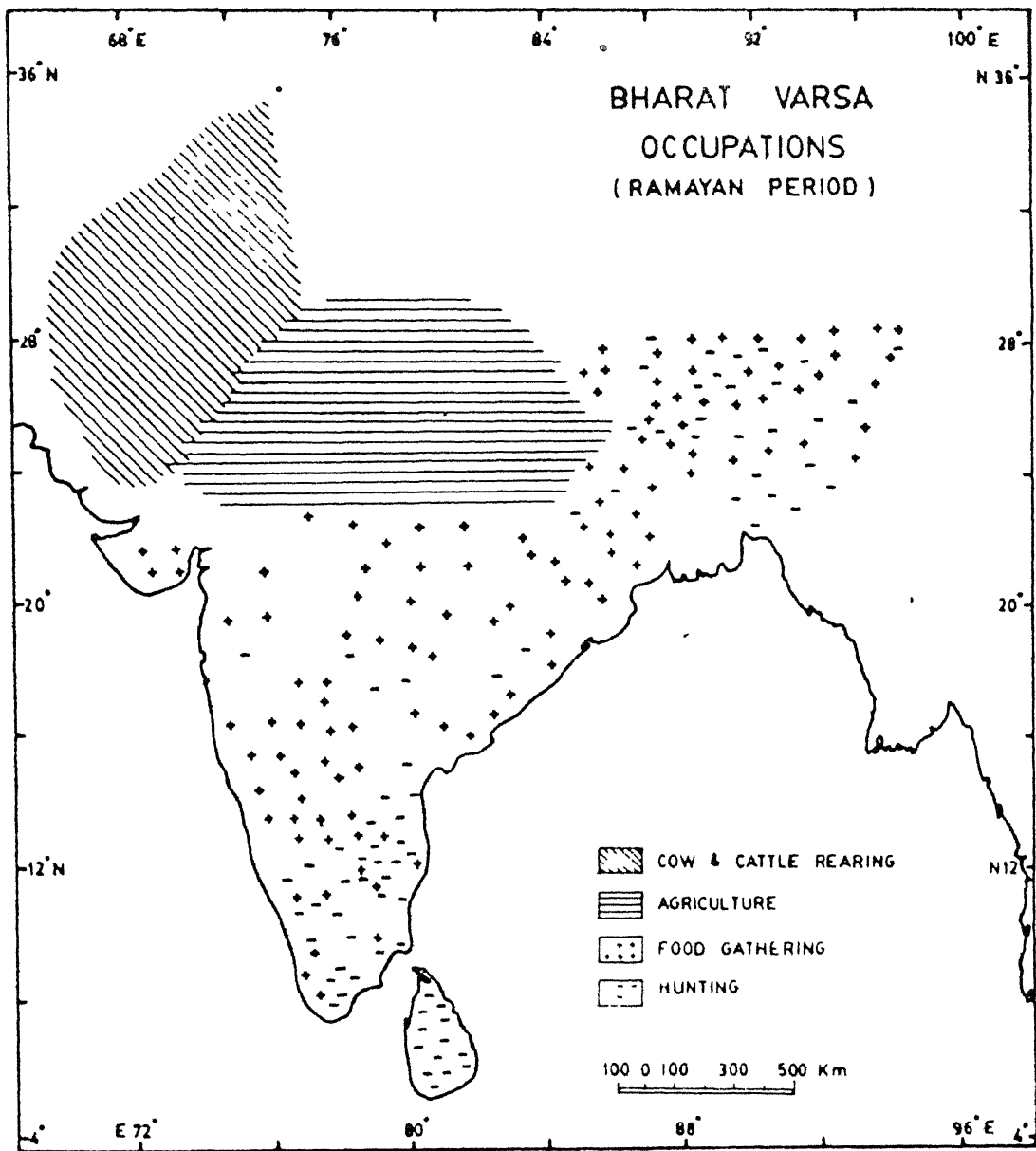
FIG 6 1

वन्य वस्तुओं के संग्रह पर ही निर्भर था वहां कृषि एवं उद्योग धन्धों के माध्यम से आज वह नये साधनों को ढूंढ निकाला है। रामायण काल में जहाँ राक्षस एवं वानरजाति केवल आखेट एवं वन्य उपजों पर आश्रित थे वहीं कोशल प्रदेश या सम्पूर्ण आर्यावर्त में कृषि एवं केकय प्रदेश में पशुपालन की प्रधानता थी। कोशल एवं लंकापुरी आदि नगरों में विभिन्न उद्योगों का भी विकास हुआ था। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि रामायणकालीन व्यवसाय एक विशिष्ट क्षेत्र में केन्द्रित थे। संक्षिप्त रूप में रामायणकालीन व्यवसायों को हम निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं ﴾चित्र 6.1﴿

﴾अ﴿ आखेट एवं वन्य वस्तु संग्रह

﴾ब﴿ पशुपालन

﴾स﴿ कृषि

﴾द﴿ बागवानी

﴾य﴿ खनन कार्य

﴾र﴿ उद्योग

﴾ल﴿ वाणिज्य एवं व्यापार

﴾अ﴿ आखेट एवं वन्य वस्तु संग्रह-

वाल्मीकि रामायण में प्राप्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि उन दिनों राक्षस जाति-जिसका निवास स्थान लंका एवं दक्षिणी भारत के विभिन्न

क्षेत्रों पर था, एक शिकारी जीवन व्यतीत करती थी (चित्र 6·1)। ये लोग सभी पशुओं का शिकार करते थे एवं मांस इनके दैनिक भोजन का मुख्य अंग (वा0रा0 3·2·7- 8, 3·2-12-14) था। यही कारण है कि राक्षसों को मांसभोजी बताया गया है। ये लोग जंगल से हिरन, गाय, भैंस आदि के साथ ही साथ, भालू, चीता, सिंह आदि हिंसक पशुओं का शिकार करते थे (वा0रा0 3·48·46)। रावण के महल में मुर्गों, भैंसों एवं सुअरों के मांस रखे जाने का विवरण मिलता है (वा0रा0 5·11·14)। मयूर, मुर्गा आदि पक्षियों के मांस भी त्याज्य नहीं था (वा0रा0 5·11·15-16)। रामायण काल में दक्षिण भारत का अधिकांश क्षेत्र घने जंगलों से आच्छादित था। ये जंगल राज्य की सम्पत्ति माने जाते थे जैसे मधुवन किष्किन्धा राज्य का जंगल था। रामायण में वृक्षों के काटने का संकेत कई जगहों पर मिलता है (वा0रा0 2·8·30, 32, 72, 22) वनोपजीवन (वा0रा02-8·30) या लकड़हारे आदि अनेक दैनिक उपयोग की वस्तुएं वनों से ही प्राप्त करते थे। जंगली वृक्षों से आवास, रथ, फरनीचर एवं यज्ञीय वस्तुएं प्राप्त की जाती थीं।

आरण्यक मधु वन का एक विशिष्ट उत्पादन था। लंका जाते समय वानरगण जगह-जगह रुककर वनों से ही फल आदि खाकर अपनी क्षुधा तृप्ति करते हैं। निर्यास (वा0रा0 3·20·23), गोंद एवं न्योगोध्र क्षीर (वा0रा0 3·55·23) जिसका उपयोग वनवासी जटा बनाने के लिए करते थे- वन उपजें ही थी। मलयवर्ती वृक्ष कालीमिर्च (वा0रा0 3·35·23), पिप्पली (वा0रा0 3·11·49) और तकोला

{वा0रा0 3.35-22} प्रदान करते थे। तृतीय क्षेत्र तमाल{वा0रा0 3.35.23}, खजूर{वा0रा0 3.15.16} एवं नारिकेल {वा0रा0 5.1.200} उत्पन्न करते थे । चन्दन{वा0रा0 7.42-2} जो मुख्य सुगंधित लकड़ी है दक्षिण भारत के वनों से प्राप्त की जाती थी। रामायण में ताम्रपर्णी नदी के तट परचन्दन के वन के पाये जाने का संकेत मिलता है। इसी प्रकार केसर{वा0रा0 7.42.5},अगुरू{वा0रा0 7.42.2} आदि अन्य सुगन्धित पदार्थ भी वनों से ही प्राप्त किये जाते थे।

वल्कल वृक्ष वनवासियों के लिए वस्त्र प्रदान करते थे{वा0रा0 2.99.26} एवं वन्य धन राजाओं के कोष की वृद्धि करता था{वा0रा0 3.43.33} वनों से मृग,सिंह आदि पशुओं की खाल प्राप्त की जाती थी जिसे बिछाने के काम लाया जाता था। प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों के अध्ययन से वनों की निम्न उपयोगिताओं के बारे में जानकारी होती है।[1]

1- जंगलों का उपयोग चारागाह के लिए किया जाता था।

2- लोग वनों से जलाऊ लकड़ी प्राप्त करते थे।

3- वनों से फर्नीचर, रथ, एवं गृह निर्माण हेतु लकड़ी प्राप्त होती थी साल,सागौन,उदुम्बर,बांस,ताल और देवदार आदि के वृक्ष इस दृष्टि से विशेष उपयोगी थे। चन्दन की लकड़ी से अनेक सुगंधित पदार्थो का निर्माण किया जाता था। जंगली वृक्षों से ही मधु,लाख,गोंद आदि पदार्थ प्राप्त किये जाते थे।

4. जंगली क्षेत्रों मे रहने वाले तपस्वी अपने भोजन हेतु फल-फूल वनों से ही प्राप्त करते थे। इन्ही वृक्षों से उन्हे पहनने के लिए वल्कल वस्त्र भी प्राप्त होते थे।

इस प्रकार रामायण काल में वनों का बड़ा महत्व था। एक तरफ जहां वे पर्यावरण को शुद्ध रखते थे वहीं दूसरी ओर इनका आर्थिक महत्व भी

काम
कुछ नहीं था।

(ब) पशुपालन-

रामायणकाल में पशुपालन लोगों का मुख्य व्यवसाय था इसके मुख्य कारण निम्न थे।

1- रामायणकाल में देश में जनसंख्या का घनत्व बहुत कम था एवं पशुचारण हेतु विस्तृत चारागाह उपलब्ध थे।

2- कृषि कार्य एवं पशुपालन एक दूसरे के पूरक व्यवसाय थे। एवं पशुपालन कृषि कार्य के सहायक धन्धे के रूप में अपनाया जाता था।

3- प्राप्त विवरणों से ज्ञात होता है कि आर्य लोग मुख्यतः पशुपालक थे एवं उन्होंने अपने इस व्यवसाय को उत्तरी भारत के मैदान में बसने के बाद भी जारी रखा।

4- वाल्मीकि कालीन लोगों के खाद्य पदार्थों में पशु उत्पाद पदार्थों की अधिकता थी एवं दूध, दही, घी आदि वस्तुएं दैनिक भोजन के अंग थे। पशुपालकों के गाँव "घोस" कहलाते थे (वा0रा0 2·83·15) ग्रामों के अतिरिक्त नगरों में भी पशु पाले जाते थे (वा0रा0 1·5·13) राम जब अयोध्या से वन को प्रस्थान करते हैं तो उनके विरह जनित दुःख से गाय बछड़ों को दूध न पिलाने की बात कही गयी है (वा0रा0 2·49·9)। रामायणकालीन पालतू पशुओं का विवरण निम्न सारणी 6·1 में दिया गया है।

सारणी 6·1

पशु	उपयोग	प्रमुख क्षेत्र
1· गाय	दूध, दही, घी आदि।	आर्यावर्त एवं तपस्वियों के आश्रमों। में पाली जाती थी।
2· अश्व	सवारी, रथ, युद्ध कार्यों में उपयोग।	केकय प्रदेश, सिन्धु प्रदेश आदि।
3· गज	सवारी एवं युद्ध के कार्यों में उपयोग।	विन्ध्य प्रदेश एवं पूर्वीभारत।
4· उष्ट्र	सवारी, बोझा एवं माल आदि ढोने तथा रथ में उपयोग।	केकय प्रदेश के समीपवर्ती मरू क्षेत्र में।
5·खर	रथ खींचने एवं बोझा ढोने।	लंकापुरी, कोशल पुरी।
6·श्वान	घर की रखवाली हेतु।	केकय प्रदेश।

- -

अन्य पशुओं में मृग, महिष, शल्यक, शश, वराह केयाह्टक सिंह आदि थे किन्तु ये वन्य पशु थे। पक्षियों में मयूर, कोकिल, हंस, चक्रवाक, भृंगराज एवं जलजीवों में मत्स्य, कच्छप एवं गोधा आदि का उल्लेख मिलता है।

1· गोपालन-

वैदिक काल में गोपालन का महत्वपूर्ण स्थान था। गाय और बैल आर्यों के मुख्य धन थे।[2] इनका ऋग्वेद तथा बाद के ग्रन्थों में बार-बार उल्लेख

मिलता है। गाय के दूध से दही, घी आदि भी बनाये जाने का उल्लेख वैदिक वाङ्मय में मिलता है।[3] रामायण काल में गाय को सर्वाधिक महत्व प्राप्त था एवं उसे आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

राम वन जाते समय तमसा (वा0रा0 2·46·17) और गोमती (वा0रा0 2·49·10) के तटों को गाय से भरा हुआ पाते हैं। राजा बड़ी संख्या में गोपालन को प्रोत्साहन देते थे। (वा0रा0 2·100·50) रामायण में लाखों एवं करोड़ों गायों का वर्णन कई बार आया है। (वा0रा0 1·53·9) राजा स्वयं भी पशुओं का स्वामी एवं पालक हुआ करता था। कोशल राजा गोधन से सम्पन्न था। (वा0रा0 2·100·50)। इसी प्रकार मुनियों के आश्रमों में भी गोपालन को प्रोत्साहन दिया जाता था।

गोशाला को पत्यागार (वा0रा0 2·40·43) एवं गायों के समूह को गोकुल गोयुत, गोव्रज कहा जाता था (वा0रा0 2·46·17, 2:49, 10, 2·32·38)।

उपयोग-

वाल्मीकि रामायण में प्राप्त विवरणों से पता चलता है कि गायें पारिवारिक एवं धार्मिक कृत्यों के लिए दूध, दही, घी और मक्खन आदि प्रदान करती थी (वा0रा0 1·53·13) जबकि बैल खेत जोतने (वा0रा0 2·74·23) बोझा ढोने एवं सवारी खींचने के काम आते थे (वा0रा0 2·83·16)। इन पशुओं का गोबर खाद एवं ईंधन हेतु प्रयुक्त होता था (वा0रा0 2·91·7) देश की समृद्धि में गायों का महत्वपूर्ण स्थान था इसीलिए राम भरत को गायों के पालन एवं उनकी

सुरक्षा हेतु सावधान रहने का परामर्श देते हैं(वा0रा0 2·100·47)। गोपशु प्रजनन के लिए भी रामायणकाल काल में अच्छा प्रबन्ध था अच्छी नस्ल के गोवृष (सांड) रखे जाते थे जो गायों के समूहों में विचरण किया करते थे।

वैदिक काल में गायों का अपहरण एक सामान्य बात थी जिसके कारण उनके स्वामियों में झगड़ा हो जाया करता था। इस प्रथा के रामायण काल तक प्रचलित रहने का संकेत मिलता है उदाहरणार्थ विश्वामित्र ने वशिष्ट की शबला गाय को बल पूर्वक ले जाने का प्रयास किया था किन्तु सुरक्षा हेतु नियुक्त शक,पहलव आदि वनवासी जातियों के तीव्र प्रतिरोध के कारण वे ऐसा न कर सके(वा0रा0 1·54 पूरासर्ग) । रामायण के अध्ययन से यह पता चलता है कि उन दिनों गोवध पर प्रतिबन्ध था।

गोवध कर्ता को नरकगामी एवं पाप का भागी बताया गया है एवं गाय को अत्यन्त पवित्र तथा पूज्या माना गया है। रामायण युग में गोपालन यद्यपि आर्यावर्त के समस्त क्षेत्र पर प्रचलित था परन्तु कोशल,मिथिला आदि राज्य इसके लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध थे।

2· अश्वपालन-

वैदिक साहित्य में"अश्व" शब्द का कई बार प्रयोग हुआ है।[4] घोड़ों को दौड़ाने वाला,शीघ्रगामी एवं भार वहन की क्षमता वाला बताया गया है। प्राप्त विवरणों से पता चलता है कि आर्यलोग घोड़ों के शौकीन थे एवं

इसका प्रयोग युद्ध कार्यों में खूब करते थे। रामायण काल में अश्व (घोड़ा) गो (गाय एवं बैल) के पश्चात सर्वाधिक उपयोगी पशु था। घोड़ों की अच्छी नस्ल पर विशेष ध्यान दिया जाता था। भरत के चित्रकूट गमन के समय उनके साथ पूर्ण प्रशिक्षित घोड़े एवं घुड़सवार जाते हैं। (वा० रा० 2.83.5)। राजकुमारों को घोड़ों पर सवारी करने एवं उन्हे युद्ध कार्यों में प्रयुक्त करने की शिक्षाएं दी जाती थी। (वा० रा० 2.1.28) युद्ध में प्रयुक्त घोड़ों को "संग्रामिकैर्हयैः" कहा जाता था (वा० रा० 2.43.43) जो युद्ध की हर परिस्थिति को समझ सकते थे एवं जोखिम उठाकर भी अपने सवार की रक्षा करते थे (वा० रा० 6.85.12)। इन्द्रजीत के रथ के कुशल "विधेयाश्व" सारथि हीन होने पर भी पूर्णशान्त भाव से विभिन्न प्रकार के पैतरे बदलते हुए एवं मंडलाकार गति से दौड़ लगाते हुए अपने रथी की रक्षा कर रहे थे। (वा० रा० 6.90.28) जिनके ऊपर रक्षा के लिए सोने के कवच लगे थे (वा० रा० 3.22.22)। विभिन्न प्रकार के कार्यों हेतु घोड़ों को भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता था। उदाहरणार्थ "स्यन्दनयायिभिः" (वा० रा० 5.6.4-5) (उत्तम रथ के घोड़े) पुष्परथ (वा० रा० 3.39.10) (भ्रमणोपयोगी घोड़े), औपवाह्यं रथे हयोत्तमैः (वा० रा० 3.39.10) (सवारी के योग्य रथ में जोते जाने वाले घोड़े) पर्वतीय तुरंगम (पर्वतीय क्षेत्रों में प्रयोग किये जाने वाले घोड़े) इत्यादि। उत्तम कोटि के घोड़ों को जवनाजात्यास्तुरंगम" (तेजगति वाले घोड़े) कहते थे। भरत को ननिहाल से बुलाने के लिए ऐसे ही घोड़ों का प्रयोग किया गया था जिन्हें "सम्मत हय" कहा गया है। रामायण काल में क्षेत्रानुसार घोड़ों की निम्न नस्लें उल्लेखनीय हैं।

कम्बोज देश	-	टरटरी नस्ल
वाह्लीक देश	-	वैक्ट्रिया नस्ल
नदीज देश	-	सिन्धी नस्ल
वनायु देश	-	अरबीय नस्ल

अच्छी नस्ल के घोड़े मुख्यत: भारत के समीप के देशों विशेषकर अफगानिस्तान, ईरान, मध्यएशिया, अरब आदि से आयात किये जाते थे एवं उन्हें प्रशिक्षित कर विभिन्न कार्यों के उपयुक्त बनाया जाता था। रामायणकाल में वर्तमान पाकिस्तान, अफगानिस्तान, पंजाब आदि क्षेत्र अश्वपालन के मुख्य स्थल थे।

3- खर-

रामायण में "खर" शब्द गर्दभ (गदहा) का द्योतक है।[5] रामायणकाल में गाय एवं घोड़ों की ही भाँति गदहा भी एक पालतू पशु था। केकय के राजा अश्वपति द्वारा भरत को सुशिक्षित खर देने का प्रसंग मिलता है (वा0रा0 2·70·23)गधा राक्षसों का प्रिय जानवर था। तभी तो एक राक्षसराजा का नाम "खर "था। रावण के रथ में पिशाचवन्दन* (पिशाचों के मुख वाले गदहे) जुते हुए थे. (वा0रा0 2·42·7)।जो आकाशगामी एवं तेजगति वाले थे। ये "उरश्छदों" (जिरह वख्त) से पूर्ण सुरक्षित थे।[6] रावण के मुकुट पर "खरमुख" होने की बात कही गयी है। ऐसा लगता है कि सवारी एवं बोझा ढोने के लिए घोड़े जितने ही अभिजात्य वर्ग (ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों) में प्रचलित थे, गदहे, वैश्यों एवं शूद्रों के लिए उतने ही लोकप्रिय थे। गदहे भारतीय क्षेत्रकी उपज थे एवं यहां की जलवायु इनके लिए अनुकूल थी।

---

* पिशाचों के मुखवाले धातु के बने कनटोप पहन रखे थे।

ये केकय प्रदेश {अविभाजित भारत के पंजाब }, पाकिस्तान एवं भारत के सम्पूर्ण भाग में पाले जाते थे। रावण के यहां के गदहे इसी क्षेत्र से आयात किये जाते थे।

4. अन्य पशु-

कुत्ते भी इस समय के पालतू पशु थे जो घर की रखवाली एवं सुरक्षा हेतु पाले जाते थे। ये व्याघ्र के समान भयंकर शरीर वाले तथा उन्हीं के समान पैने दांतों वाले होते थे। ये केवल शिकार करने में प्रयुक्त होते थे{वा0रा0 3.55.5} तथा सभ्य समाज में अपवित्र माने जाते थे {वा0रा0 7.18.6}। केकय प्रदेश में कुत्तो के पाये जाने का संकेत मिलता है।

राक्षसराज रावण की सेना में ऊँट के पाये जाने का भी संकेत मिलता है{वा0रा0 6.53.5}ऊँट बोझा ढोने के अतिरिक्त रथ आदि खींचने के कार्य में प्रयुक्त किया जाता था। इसे "उष्ट्र रथ" कहते थे। उन्हें पर्यटन एवं व्यापार हेतु प्रयोग में लाया जाता था।

हाथी भी लोगों द्वारा सवारी एवं परिवहन के अतिरिक्त सेनाओं में प्रयोग किये जाते थे। {वा0रा0 5.6.32} । राजा लोग हाथियों के पालन-पोषण के लिए सुरक्षित वन रखते थे। {वा0रा0 2.100.50}। कुछ पालतू हाथी जंगली हाथियों के पकड़ने के काम में भी लाये जाते थे। जंगली हाथियों को पकड़ कर पाला जाता था। {वा0रा0 3.56.31,6.16.6-8}। उनको पकड़ने के लिए घास फूस से ढके हुए कुँए का प्रयोग किया जाता था। {वा0रा0 5.47.20} तथा उनको उल्काओं {आग} के भय से उसमें गिराकर {वा0रा0 6.13.19,2.21.54} पकड़ लिया जाता था औरहाथी को"तोमर" एवं

"अंकुश" द्वारा वश में किया जाता था एवं प्रशिक्षित कर उनसे विभिन्न प्रकार के काम लिये जाते थे।

विन्ध्य एवं हिमालय पर्वत के पादप्रदेश हाथियों के निवास हेतु उपयुक्त स्थल थे।(वा0रा0 1·6·23)।ये बड़े शक्तिशाली एवं विशाल होते थे। "ऐरावत एवं इन्द्रशील पर्वत के हाथी बड़े ही सुन्दर माने जाते थे(वा0रा0 2·70·23)"ऐरावत""महापद्म""अन्जना एवं"वामन" आदि हाथियों की प्रमुख नस्लें थीं। उत्सवों,त्योहारों, धार्मिक आयोजनों तथा युद्धों में हाथियो को खूब सजाया जाता था।(वा0रा0 1·73 17-18) अश्वतरी (वा0रा0 3·34·41) युद्ध एवं शान्ति के समय बोझा ढोने वाली पशु थी।

उपर्युक्त विवेचन से रामायणकाल में निम्न बाते स्पष्ट होती हैं।

1- रामायण काल में पशुपालन एक प्रमुख व्यवसाय था। पशुउत्पाद लोगों के भोजन एवं व्यवसाय का अभिन्न अंग था। कुछ क्षेत्रों में तो यह कृषि से अधिक महत्वपूर्ण था।

2- परिवहन एवं संचार के साधनों के रूप में पशुओं का इन दिनों खूब उपयोग होता था। युद्ध में तो घोड़े हाथी आदि पशु निर्णायक भूमिका अदा करते थे।

(स) कृषि-

वैदिक युग से ही कृषि भारतवासियों का प्रमुख व्यवसाय रहा है। कृषि के अन्तर्गत खेत में बीज बोने से लेकर पके हुए अनाज निकालने की समस्त क्रियाएं वैदिक साहित्य में वर्णित है।[7]

वाल्मीकि काल में भी कृषि (वा०रा० 2·67·18) देश की अर्थव्यवस्था की आधारशिला थी। इसीलिए राजा को कृषकों को सुरक्षा प्रदान करना अनिवार्य था (वा०रा० 2·67·18)। अयोध्या के निवासियों के समृद्ध वर्णन में बगीचे, कृषि क्षेत्र, धन, मुद्रा एवं अनाज का वर्णन किया गया है। भरत को राम कृषि, गोरक्षा एवं व्यापार का महत्व बताते हुए इनके विकास से सम्पूर्ण लोक के सुख समृद्धि का उपदेश देते हैं (वा०रा० 2·100·47)। रामायण में अष्टवर्ग× के अन्तर्गत कृषि को भी शामिल किया जाता था (वा०रा० 2·100·68)। कृषि के कार्य मे लगे लोगों के धन की रक्षा एवं उनको विपत्तियों से छुटकारा दिलाना राजा का प्रमुख कर्तव्य था (वा०रा० 2·100·47-48)। राज्य अपना स्वयं का धान्यकोष रखता था (वा०रा० 2·36·7) जिसका प्रयोग दुर्भिक्ष एवं अकाल आदि के समय किया जा सकता था। रामायणकाल में कृषि सम्बन्धी प्रमुख तकनीकी शब्द निम्न हैं।

1- कृषक-

भूमि जोतने बोने का कार्य करने वाले को कृषक कहते थे। रामायण में कृषक, खेत जोतने बोने वाले का द्योतक है। राजा से प्राप्त सुरक्षा के कारण रामायण युग में कृषक गण अपने-अपने ग्रामों में स्थायी रूप से रहते थे एवं विभिन्न प्रकार की फसलें उगाते थे।

× अष्टवर्ग के अन्तर्गत खेती की उन्नति करना, जंगल से हाथी पकड़वाना, निर्माण कराना, व्यापार को बढ़ाना, दुर्ग बनवाना, खानों पर अधिकार है। प्राप्त करना, अधीन राजाओं से कर लेना, निर्जन प्रदेश को आबाद करना आदि सम्मिलित हैं।

II - लांगल-(वा०रा० 1·40·27)-

ऋग्वेद एवं वाद के साहित्य में लांगल शब्द का प्रयोग "हल" के लिये किया गया है।[8] इसीप्रकार "सीता" शब्द का अर्थ भी "फाल" होता है जो हल में लगाया जाता है। राजा जनक के अकाल के दौरान हल जोतते समय उत्पत्ति के कारण सीता जी का नाम "सीता" पड़ा। "बलिवर्द" शब्द से एक ही हल एक से अधिक बैल के प्रयोग का भी संकेत मिलता है। हल से बीज बोने एवं खेत को समतल करने, भूमि की तैयारी करने का कार्य किया जाता था।[9]

III - गो-

"बलिवर्द गो" शब्द का प्रयोग बैल के लिए हुआ है । रामायण काल में बैल हल खींचते थे एवं शकट (बैलगाड़ी) में भी जोते जाते थे। कृषि में बैलों की महत्ता के कारण ही धूप से संतप्त बैलों का कृषकों द्वारा पीटा जाना अपराध माना जाता था (वा०रा० 2·74·23)।

IV - क्षेत्र-

वैदिक युग में "क्षेत्र" का आशय खेत से था।[10] पतंजलि के महाभाष्य में भी क्षेत्र का अर्थ खेत, मैदान आदि से लगाया जाता था।[11] रामायण युग में खेत बड़े होते थे एवं इन्हे क्षेत्र, केदार आदि नामों से जाना जाता था। खेत को कृषि योग्य बनाने को "शोधन" एवं उसे जोतने को कर्षण कहते थे (वा०रा० 1·66·3) रामायण युग में दो प्रकार के खेतों का वर्णन

मिलता है।

1- अदेवमातृक या नदी मातृक [वा०रा० 2·100·45]-

ये खेत सिंचाई पर निर्भर रहते थे। कोशल देश के अधिकांश खेत अदेव मातृक थे।

2- देवमातृक-

जो वर्षा के जल पर निर्भर रहते थे।

4- कृषि विकास की दशा-

रामायण काल में कृषि विकसित अवस्था में थी। प्राप्त विवरणों के अनुसार ज्ञात होता है कि उन दिनों कृषि, धन, गोधन, तालाबों, बगीचों आदि से परिपूर्ण था [वा०रा० 2·49·पूरासर्ग] । राज्य में भोजन दूध, दुग्ध पदार्थों की कहीं कमी नहीं थी [वा०रा०3·16·7]। इसी प्रकार वत्स देश भी सुन्दर धन धान्य से परिपूर्ण था [वा०रा० 2·52·101]। मागधी नदी के दोनों तटों पर हरीभरी खेती सुशोभित थी [वा०रा० 1·32·10]। लंका की जलवायु समुद्री हवाओं से प्रभावित होने के कारण समशीतोष्ण थी तथा वहां की भूमि पर्याप्त वर्षा के कारण उपजाऊ थी [वा०रा० 5·3·3, 5·2·12-14]। इसी तरह भारत का दक्षिणी समुद्र तट एक रमणीय वन क्षेत्र था जहां तक्कोल नामक सुगन्धित फलों, तमाल पुष्पों तथा मिर्च आदि की झाड़ियाँ पायी जाती थीं [वा०रा० 3·35·23]। रामायण काल में कृषि विकास का

मुख्य कारण इक्ष्वाकु वंशी राजाओं का उत्तम प्रशासन एवं कृषि को बढ़ावा देना था। कृषि गाँवों को "ग्राम" [वा0रा0 2·57·4] कहते थे जबकि कृषि उपजों के बाजार "नगर" कहलाते थे। सुमंत्र राम को जंगल छोड़कर जब वापस आते हैं तब विभिन्न नगरों से होकर गुजरते हैं [वा0रा0 2·57·4] राम भी वन जाते समय ऐसे गाँवों को पार करते हैं जहाँ की भूमि जोत दी गयी थी [वा0रा0 2·49·3]। रामायण काल में नगरों एवं उनके समीपवर्ती क्षेत्रों में गहन निर्वाहक कृषि की जाती थी। किसान मेघों की प्रतीक्षा करते थे [वा0रा0 2·112·12]। इससे यह स्पष्ट होता है कि मानसून की वर्षा का कृषि के लिए विशेष महत्व था। दशरथ के समय कोशल का समीपवर्ती राजा रोमपाद [अंग देश का राजा] के राज्य में सूखा पड़ा था। तब ऋष्यश्रृंग मुनि के उनके यहाँ आगमन से वहाँ वर्षा हुई थी [वा0रा0 1·9 एवं 10पूरेसर्ग] इससे स्पष्ट होता है कि रामायण काल में लोगों को कृत्रिम वर्षा की प्रक्रिया के बारे में भी पर्याप्त जानकारी थी। आज की भाँति उन दिनों भी शुष्क कृषि का अवलंबन उन क्षेत्रों में लिया जाता था जहाँ वर्षा की मात्रा संतोषप्रद नहीं थी [वा0रा0 4·14·16 और 6·33·34]।

VI - सिंचाई के साधन-

वर्षा के मौसमी तथा असंयमित वितरण एवं अधिक वाष्पीकरण के कारण भारत में कृषि हेतु सिंचाई अनिवार्य है। रामायण काल में भी खेती में सिंचाई का आश्रय लिया जाता था। सिंचाई के मुख्य साधनों में तालाब, झील, कुएँ और सिंचाई का आश्रय लिया जाता था।

रामायण काल में अधिकांश कृषि वर्षा पर निर्भर करती थी किन्तु शुष्क ऋतु में एवं अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष आदि से बचने के लिए सिंचाई के कृत्रिम साधनों का प्रयोग होता था। विशेषकर नदी मातृक या अदेवमातृक क्षेत तो सिंचाई के साधनों पर ही निर्भर करते थे (वा0रा0 6·5·11)। वर्षा ऋतु में नदी बाढ़ द्वारा लायी गयी उपजाऊ मिट्टी के कारण तटवर्ती क्षेत्र उर्वर हो जाते थे(वा0रा0 2·20·47)। जिन पर नदी जल का सिंचाई हेतु उपयोग कर भरपूर फसलें उगायी जाती थीं।

VII· प्रणाली-

वैदिक साहित्य में इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है[12] रामायण में प्रणाली का अर्थ है नहर या नाली। इसका उपयोग सिंचाई हेतु किया जाता था। नदियों एवं जलाशयों पर बांध बनाकर और जल पथ को परिवर्तित कर प्रणालियों का निर्माण किया जाता था इसके अतिरिक्त राज्य द्वारा कुएँ, तालाब आदि का भी निर्माण कराया जाता था। अयोध्या से श्रृंगवेर पुर तक सड़क बनाते समय अल्प जलवाली नदियों के जल को रोककर बाँधों के बनाने का उल्लेख मिलता है जिससे ये छोटी नदियाँ विविध आकारवाले बड़े जलाशयों में परिवर्तित हो गयी थीं(वा0रा0 2·30·11)। नदियाँ जल संग्रह के लिए बाधित कर दी जाती थी(वा0रा0 5·19·16)। वर्षा के समय नदी के वेग से प्राय: ये बांध टूट जाया करते थे(वा0रा0 2·105·5,6·128·4)। चित्रकूट क्षेत्र मे लगातार दस वर्ष सूखा पड़ने से उत्पन्न परिस्थितियों से निपटने के लिए अत्रि की पत्नी अनुसूया ने अपने तपोबल से गंगा की एक

नयी धारा बहाकर इस क्षेत्र के लोगों के प्राणों की रक्षा की थी (वा0रा0 2·117·10)। उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि बाल्मीकि युगीन लोग सिंचाई एवं जल संग्रह के तरीकों के बारे में पूर्णतया अवगत थे जिनका उपयोग वे कृषि उत्पादन को बढ़ाने में करते थे।

VIII - कृषि यंत्र-

बाल्मीकि रामायण में कृषि में प्रयोग किये जाने वाले यंत्रों का उल्लेख मिलता है इनमें से दत्र (वा0रा0 2·80·7) हल (वा0रा0 1·39·19), कलश (2·63·38) खनित्र (1·40·27, 2·31·25), काष्ठ (वा0रा0 2·55·17) क्षुर (वा0रा0 2·12·10·) कुदाल (वा0रा0 2·32·29), कुम्भ (वा0रा0 2·64·15) लांगल (वा0रा0 1·40·27), परशु (वा0रा0 2·32·32), कुठार (वा0रा0 2·80·7), पिटक (वा0रा0 2·31·35), फाल (वा0रा0 2·32·29) शूल (वा0रा0 1·39·19) एवं टंक (वा0रा0 2·80·7) आदि प्रमुख हैं।

IX - प्रमुख कृषि उपजें-

रामायण में धान के लिए "कलम" शब्द का प्रयोग किया गया है। यह फसल वर्षा के ऋतु के प्रारम्भ में बो दी जाती थी तथा बौछार के साथ वर्षा इसके पौधों की वृद्धि हेतु उपयोगी होती थी। धान की एक फसल शिशिर (वा0रा0 4·30·53) ऋतु (अक्टूबर) में तैयार होती थी जबकि दूसरी फसल की कटाई हेमन्त ऋतु (वा0रा0 3·16·17) जनवरी में की जाती

थी। रामायण में धान की इन दोनों फसलों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। (वा०रा०4.30.47) जौ एवं गोधूम (गेहूँ आदि) जाड़े की फसले थीं[13] इसके अतिरिक्त रामायण काल में गणक (चना) (वा०रा० 9.91.20) इक्षु (वा०रा० 1.5.17), कुल्थी (वा०रा० 7.91.20) मासा (वा०रा० 7.91.20) शालि (वा०रा० 1.5.17) तण्डुल (वा०रा० 1.6.17) तिल (वा०रा० 7.91.19) यव (वा०रा० 3.16.16) आदि फसलों के उगाये जाने का संकेत मिलता है।

(द) बागवानी-

कृषि की ही तरह बागवानी भी रामायणकालीन व्यवसाय था। रामायण में अनेक रमणीय उद्यानों का उल्लेख मिलता है (वा०रा० 2.67.12) लंका से लौटते समय अंगद के नेतृत्व मे वानरगण मधुवन में मधुपान करते हैं जो उन दिनों किष्किन्धा की एक सुरक्षित वाटिका थी (वा०रा० 5.61 एवं 62 पूरे सर्ग) । लंका की अशोक वाटिका भी एक ऐसी ही रोपित वाटिका थी (वा०रा० 5.6 पूरा सर्ग) । रामायण काल में वृक्षारोपण विशेषकर फलदार वृक्षों के लगाये जाने को प्रोत्साहन दिया जाता था। स्वयं भरत राम को लौटा लाने के लिए अयोध्या से चित्रकूट जाते समय रास्ते में विभिन्न किस्म के वृक्षों को लगवाया था। हरे वृक्षों के अनावश्यक काटे जाने पर भी प्रतिबन्ध था।

(य) खनिज एवं धातु संग्रह-

रामायण में अनेक खनिजों एवं धातुओं का वर्णन मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन लोग विभिन्न धातुओं से भली प्रकार परिचित

थे। विभिन्न खनिजों के प्राप्ति स्थलों को ढूंढ निकाला गया था। रामायण में विन्ध्य, चित्रकूट, कैलाश प्रस्रवण, सह्य, मलय आदि पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक खनिजों के पाये जाने की सम्भावना व्यक्त की गयी है। कोशल क्षेत्र को भी धातुओं की दृष्टि से सम्पन्न बतायागयाहै जिससे यह स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में खनिज संग्रह, परिष्करण एवं विक्रय के अनेक केन्द्र स्थापित थे (वा0रा0 5·1·5)। पर्वतों में प्राप्त खनिज मिश्रित एवं विभिन्न रंग वाले होते थे। (वा0रा0 2·94·5-6)

धातु बहुल शिलाओं का संकेत भी रामायण में मिलता है। वास्तव में रामायण में "शिला" शब्द (वा0रा0 6-27·8 एवं 6·97·15) ग्रेनाइटएवं बालुका प्रस्तर के लिए प्रयुक्त हुआ है जबकि "स्फटिक" शब्द एक विशिष्ट धातु के लिए प्रयोग किया गया है (वा0रा0 6·11·14)। इसीप्रकार मैनशिला औषधा का पर्याय है जो महेन्द्र पर्वत पर पायाजाता था (वा0रा0 2·95·18)।

नदियाँ भी धातुओं का स्त्रोत मानी जाती थी। जम्बूनद से सोने के कण प्राप्त किये जाते थे (वा0रा0 1·14·54)। रामायण में ऐसे नदी स्त्रोतों का भी संकेत मिलता है जिनके जल में खनिज मिले थे (वा0रा0 5·1·61)। रामायण काल में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा आदि धातुओं एवं उनके परिष्कार की पूर्ण जानकारी लोगों को थी।

1- खनिज गवेषणाएं-

बाल्मीकि रामायण में खनिज गवेषणा के भी संकेत उपलब्ध होते हैं।

राजा सगर के पुत्रों ने अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को खोजने के लिए पृथ्वी का भेदन किया एवं प्रतिव्यक्ति एक योजन भूमि का बंटवारा करके उसे खोद डालापरन्तु साठ हजार योजन भूमि खोजने के बावजूद किसी महत्त्वपूर्ण खनिज के मिलने के संकेत नहीं मिलते हैं।

दूसरा संकेत देवताओं एवं दैत्यों द्वारा मिलकर किये गये क्षीर सागर के मन्थन में है। इस प्रयास में उन्हे हलाहल विष§वा0रा0 1·45·20§, धन्वन्तरि वैद्य,अप्सराएं §वा0रा0 1·45·31-32§ वारूणी §वा0रा0 1·45·37 उच्चैश्रवा,कौस्तुभमणि;शंख,लक्ष्मी,अमृत§वा0रा0 1·45·39§ आदि की प्राप्ति हुई। उक्त प्रसंग से समुद्र के रत्नों एवं खनिजों के भण्डार होने का संकेत मिलता है।

अयोध्या आदि नगरों की समृद्धि के वर्णन के समय, मणि,माणिक्य, मुक्ता तथा सुवर्ण ,लोहा आदि का उल्लेख मिलता है जिससे यह ज्ञात होता है कि इन बहुमूल्य धातुओं एवं खनिजों के बारे में रामायणकाल के लोगों को जानकारी थी। बाणों के फल,लोहे,आदि के बने होते थे जो इस धातु के प्रयोग की ओर स्पष्ट संकेत हैं।विभिन्न मानव उपयोग योग्य खनिजों की जानकारी अनार्यों को भी थी जिनमें राक्षस सबसे आगे थे।

§र§ उद्योग एवं औद्योगिक विकास-

रामायण के अध्ययन से यह स्पष्टहो जाता है कि उस समय ऐसे गृह शिल्पों एवं लघु कुटीर उद्योगों की प्रधानताथी जिसमें गृहस्वामी अपने

परिवार या कुछ मजदूरों के साथ विभिन्न औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन करता था। इन उद्योगों में निम्न का उल्लेख किया जा सकता है।

1- वस्त्र उद्योग-

ऋग्वेद में वस्त्र उद्योग का संकेत मिलता है।[14] वस्त्र निर्माण कला का विकास वैदिक काल में हो गयाथा परन्तु इस उद्योग में वास्तविक विकास वैदिक काल के बाद ही हो पाया। रामायण काल तक तो यह उद्योग काफी विकसित अवस्था में पहुँच गया था। इस दौरान वस्त्रों के नये प्रकार भी विकसित हुए।[15] रामायण काल में वस्त्र उद्योग के विकसित होने के निम्न कारण हैं:

1- रामायण काल तक भारत सभ्यता एवं संस्कृति के क्षेत्र में काफी प्रगति कर चुका था जिसके कारण न केवल कपड़े की खपत बढ़ गयी थी वरन् अभिजात्य वर्ग में नये एवं अच्छे किस्म के वस्त्रों का प्रचलन भी बढ़ रहा था।

2- कृषि एवं पशुपालन के विकास के साथ-साथ वस्त्र उद्योग के लिए कच्चा माल देश में ही प्राप्त हो जाता था इन दिनों कपास की पूर्ति कृषि से एवं ऊन भेड़ों से प्राप्त हो जाया करताथा।

3- वस्त्र व्यवसाय हेतु कुशल मजदूर उपलब्ध थे जिनके साथ कई पीढ़ियों का अनुभव था एवं वे उत्तम किस्म के वस्त्रों का निर्माण करने में सक्षम थे।

4- कारीगरों एवं व्यवसायियों को राजा की तरफ से संरक्षण एवं प्रोत्साहन दिया जाता था।

रामायण के सर्वेक्षण से हमे निम्न वस्त्र उद्योगों के विकास के बारे में जानकारी मिलती है।

1- कार्पासिक पट ‖सूती वस्त्र‖

2- कौशेय- क्षौम पट ‖ रेशमी वस्त्र‖

3- आविक पट ‖ऊनी वस्त्र‖

4- अजिन पट ‖चर्म वस्त्र‖

5- वल्कल पट ‖ वृक्ष की छाल का वस्त्र‖

अभ्यस्त बुनकरों को रामायण में "सूत्र कर्म विशारद" कहा गयाहै ‖वा0रा0 2·80·1‖ और दर्जी के लिए तुंतु वाय" शब्द का प्रयोग किया गया है‖वा0रा0 2·83·15‖। ऊनी वस्त्र उद्योग भी इन दिनों अपने उन्नत अवस्था में था। भेड़ों के ऊन को आविक ‖वा0रा0 6·75·9‖ एवं इन से बने वस्त्र और्व कहे जाते थे ‖वा0रा0 6·75·9‖। कम्बल बनाने वाले‖कम्बलकारका:‖ राम को चित्रकूट से वापस लाने के लिए जाने वाले भरत के साथ जाते हैं‖वा0रा0 2·83·45‖। लंका में आग लग जाने के बाद क्षौम‖सन आदि से बना‖ तथा कौशेय ‖रेशमी वस्त्र‖ जल जाते हैं। ‖वा0रा0 6·75·9‖ हनुमान की पूँछ में "कार्पासिक पटै:" ‖सूतीवस्त्र‖ लपेटे जाते हैं‖वा0रा0 5·93·6‖ । राम वन

जाते समय चीर वस्त्र धारण करते हैं8वा0रा0 2•37•4,1•4•22-238।
वल्कल वस्त्र मुनि या तपस्वी लोग धारण करते थे जिनकी चर्चा महाकाव्य
में कई बार हुई है8वा0रा0 1•4,20-218। रामायण में "अजिन" का अर्थ
पशुओं की खाल से लगाया गया है। यह खाल सिंह, हाथी औरविशेषकर
काले मृग की होती थी। रामायण में कृष्णाजिन मृगचर्म का उल्लेख हुआ
है जिसे राम,लक्ष्मण वनवास के समय धारण करते हैं8वा0रा0 1•4•20-228
तूलाजिन एक मुलायम मृगचर्म होता था।

रामायण काल में कपड़ों की रंगाई का कार्य भी होता था। इस
कार्य को करने वाले लोग रजक कहलाते थे8वा0रा0 2•83•158 । रामायण
में रंगीन कपड़ों का कई बार संकेत कियागया है। कपड़ों के रंग को "वर्ष"
कहा जाता था8वा0रा0 5•15•488 ।रामायण में नीलपीत8वा0रा04•1•88,
रक्त 8वा0रा0 6•40•68,श्वेत 8वा0रा0 4•30•468,शुक प्रभा8वा0रा0 6•28
248,कषाय 8वा0रा0 3•46•38,कृमिराग8वा0रा0 4•23•148 एवं लाक्षाराग
8वा0रा0 4•28•248 रंग के वस्त्रों का उल्लेख किया गया है।

2- धातु उद्योग-

रामायणकाल में धातु उद्योग भी विकसित अवस्था में था
यद्यपि यह आधुनिक वृहद उद्योग के रूप में तो नहीं था परन्तु यह लघु एवं
कुटीर उद्योग के रूप में फैला हुआ था। रामायण में विभिन्न धातुओं के शोधन
एवं परिष्करण का कई स्थानों पर वर्णन मिलता है जिससे विभिन्न प्रकार के

अस्त्र-शस्त्र एवं सौन्दर्याभूषण बनाये जाते थे। लोहे से चौकी, {वा0रा0 2·69·14}, तीखी कीलें {वा0रा0 2·26·11} आदि विभिन्न वस्तुएँ बनायी जाती थीं। रामायण में लोहा एक कठोरधातु मानी जाती थी। {वा0रा0 2·40·23}वज्र लोहे {सारमयं}से बनाया गयाथा {वा0रा0 2·61·9} जिसे इन्द्र धारण करते थे तथा जो कभी टूटता नहीं था। इसीप्रकार कवच, तरकस, तलवार आदि अन्य शस्त्र भी लोहा एवं अन्य धातुओं से बनाये जाते थे। {वा0रा0 2·52·11}

रामायण में सोने के आभूषण बनाने का भी वर्णन मिलता है जो मुख्यत: राजा एवं धनिक वर्ग के प्रयोग की वस्तु थी। उन दिनों सोने एवं चाँदी की मुद्राओं का भी प्रचलन था/ {वा0रा0 1·14·50}|सोने के कलश भी बनाये जाते थे {वा0रा0 2·3·8-12}| स्त्रियां स्वर्णाभूषण पहनती थीं {वा0रा0 2·67·17})सोने चांदी के पलंगों का प्रयोग राजा के महलों में किया जाता था+ {वा0रा0 2-88·5-7} । अस्त्र-शस्त्र में भी सोने के प्रयोग का विवरण रामायण में मिलता है/ {वा0रा0 2·26·10·2·31·18-19}। रावण के मुकुट, कुण्डल एवं उनके गधों के छाती के कवच आदिसोने से बने थे। सोने के अतिरिक्त पीतल, शीशा आदि धातुओं के प्रयोग के बारे में रामायण में जानकारी मिलती है{वा0रा0 3·51·1,3·51·15}/

{ख} वाणिज्य एवं व्यापार-

रामायण के काल में व्यापार एवं वाणिज्य का समुचित विकास हुआ था। व्यापारियों के लिए "वणिक" {वा0रा0 2·67-22} शब्द का प्रयोग किया

जाता था। प्रमुख करदाता होने के कारण व्यापारी राजकीय संरक्षण के अधिकारी थे। अयोध्या में अनेक व्यापारियों के निवास का वर्णन है जो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते थे। वहाँ का राजपथ विभिन्न विक्रय योग्य वस्तुओं से परिपूर्ण था। रामायण काल में व्यापारी एक स्थान से दूसरे स्थान दूर-दूर तक वाणिज्य हेतु जाते थे। इसीलिए इन्हें "दूरगामिनः" शब्द से अभिहित किया जाता था। योग्य एवं कुशल राजा के संरक्षण में व्यापारी निर्विघ्न दूर-दूर की यात्रा करते थे किन्तु कमजोर राजा के राज्य से गुजरने में इन्हे ठगी, चोरी आदि का भय रहता था एवं वे अपने को असुरक्षित महसूस करते थे। रामायणकालीन नगर व्यापार एवं वाणिज्य के अच्छे केन्द्र थे। राज्य की अर्थव्यवस्था में व्यापारी लोग विभिन्न प्रकार से सहयोग देते थे। राजा दशरथ राम के साथ व्यापारियों को भेजने का आदेश देते हैं (वा0रा0 2·36·3)। इसी प्रकार भरत के चित्रकूट जाते समय भी अनेक व्यापरी उनके साथ जाते हैं (वा0रा0 2·83 पूरासर्ग)।

रामायणकालीन व्यापार को तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

1-	अन्तर्राज्यीय व्यापार	थल एवं जल मार्ग द्वारा
2-	अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार	
3-	समुद्री व्यापार	जल मार्ग द्वारा

1- अन्तर्राज्यीय व्यापार-

रामायण काल में अन्तर्राज्यीय व्यापार का पर्याप्त विकास हुआ था। ~~इसमें व्यापारियों का समूह लगा हुआ था।~~ इसमें व्यापारियों का समूह

लगा हुआ था (वा0रा0 3·60·34)। राजा एवं राज्य, राजमार्गों एवं व्यापार मार्गों का निर्माण एवं देख रेख करता था और व्यापारी के सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करता था। यही कारण है कि राजा दशरथ के मृत्यु के बाद महर्षि वशिष्ठ राजा से रहित कोशल जनपद में व्यापारियों के सामानों की सुरक्षा पर आशंका व्यक्त करते हैं (वा0रा0 2·65·22)। कुछ क्षेत्रों में तो राजा के बिना वैश्यों का घर का दरवाजा खोलकर सोना भी दूभर था (वा0रा0 2·65·18)।

व्यापार के नियमित केन्द्रों को "आपण" कहते थे जबकि व्यापार की वस्तु को "पण्य" एवं व्यापार से प्राप्त लाभ को "पण्य लाभ" कहते थे। व्यापार की वस्तुओं में चन्दन, अगरु, गन्ध , क्षौम, कौशय, अम्बर, मुक्ता, स्फटिक माला आदि सम्मिलित थे परन्तु आर्यों के लिए मधु, मांस और विष का व्यापार निषिद्ध था (वा0रा0 2·75·38)।

2- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-

रामायण में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भी उल्लेख मिलता है परन्तु किन-किन देशों से व्यापार किये जाते थे इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं उपलब्ध होता है प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस काल तक आर्यों का व्यापारिक सम्बन्ध विदेशों तक हो चुका था। अयोध्या में विभिन्न देशों के व्यापारियों के आने की बात कही गयी है।

3- समुद्री व्यापार-

रामायण में ऐसे व्यापारियों का भी वर्णन मिलता है जो समुद्र पार देशों से व्यापार करते थे एवं अयोध्या के सम्राट को रत्नों के उपहार लाकर भेंट

करते थे। ये व्यापारी नावों एवं जहाजों द्वारा समुद्र यात्रा करते थे। ऐसे जहाजों एवं नौका मार्गों को "नौपथ" कहा जाता था। लंका के चारो ओर नौपथ विद्यमान थे एवं समुद्री व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था [वा0रा06·7·20]। लंका में स्थित सीता की उपमा समुद्र में हवा के आघातों से डगमगाती हुई माल भरी जहाज से दिया गया है [वा0रा0 5·25·14] ।

6·3 यातायात एवं संचार के साधन-

वाणिज्य एवं व्यापार का विकास उपयुक्त परिवहन मार्गों पर निर्भर करता है। संचार के साधन आर्थिक तंत्र की नाड़ी है एवं इन्हीं पर किसी क्षेत्र के आर्थिक विकास की प्रगति निर्भर करती है। समतल मैदानी क्षेत्र होने के कारण भारत में स्थलमार्ग सदैव परिवहन एवं संचार का मुख्य साधन रहा है। रामायण में अयोध्या के वर्णन के समय सड़कों की सफाई का उल्लेख किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि नगर में अच्छी एवं सदैव उपयोग हेतु चौड़ी सड़कों का जाल बिछा था। कुछ बड़ी एवं अन्तर्राज्यीय सड़के भी थी जो देश के विभिन्न भागों को एक दूसरे से जोड़ती थीं [चित्र सं0 62] ।

रामायण काल में परिवहन एवं संचार के मुख्य तीन मार्गों का संकेत दिया गया है।

[अ] स्थल मार्ग

[ब] जल मार्ग

[स] वायु मार्ग

BHARAT VARSHA
MAJOR ROUTES
(RAMAYAN PERIOD)
68°E
76°
84°
92°
100°E
36°N
N36°
28°
28°
20°
12°
12
4°N
72°E
80°
88°
96°E
N4°
PUSHKALAVATI
TAXILA
GIRIBRAJ
HASTINAPUR
INDRAPRASHTHA
KAMPILYA
SANKASHYA
MADHURAPURI
NANDIGRAM
AYODHYA
MITHILA
PUSHKAR
GAUTAM ASHRAM
VALMIKI
ASHRAM II
CHAMPA
PRAYAG
VISHALA
SUTIKSHNA ASHRAM
VALMIKI ASHRAM I
AGASTYA ASHRAM I
MAHISHMATIPURI
AGASTYA ASHRAM II
PANCHVATI
KISHKINDHAPURI
AGASTYA
ASHRAM
III
LANKA
MARGA
ASHRAM & TOURIST PLACES
NAGAR
RIVERS ROUTES
100 0 100 300 500 Km

FIG. 6.2

(अ) स्थल मार्ग-

ये मार्ग अन्तर्राज्यीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के होते थे जो किसी राज्य के विभिन्न भागों को राजधानी से जोड़ते थे अथवा देश के विभिन्न अंचलों को सम्बद्ध करते थे। रामायण में वर्णित उस काल के प्रमुख मार्ग इस प्रकार हैं।

1- अयोध्या मिथिला मार्ग-

यह मार्ग जिससे होकर राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ अयोध्या से विश्वामित्र मुनि के आश्रम में होते हुए मिथिला जाते हैं। (चित्र 6·2) इस मार्ग मेंसरयू नदी अंगदेश* एवं पुनः सरयू एवं गंगा का संगम पड़ता है। तदुपरान्त ये लोग मलद एवं करूष देश[16] होते हुए विश्वामित्र के आश्रममें(वर्तमान वक्सर)पहुँचते हैं। मिथिला की ओर प्रस्थान करने पर इन्हे सोन (वर्तमान सोननदी) एवं विदर्भ देश पार करने पड़ते हैं बीच में मगध , कोसी एवं विशालापुरी[17] से गुजरते हुए ये गौतम ऋषि के आश्रम पर पहुँचते हैं एवं बाद में मिथिला पहुँच जाते हैं । रामायण में प्राप्त विवरण के आधार पर यह ज्ञात होता है कि उपर्युक्त मार्ग पहले घाघरा एवं गोमती दाब के बीच से गुजरता था एवं यह नेपाल की सीमा तक फैला हुआ था। जंगल एवं अनेक बड़ी नदियों के कारण इस पर यातायात कम होता था।

---

*राप्ती एवंगंडक नदियों के मध्य स्थित दक्षिणी क्षेत्र को अंग देश कहते थे।

2- अयोध्या-गिरिव्रज मार्ग-

यह मार्ग कोशल की राजधानी अयोध्या को गिरिव्रज (केकय की राजधानी) से जोड़ता था (चित्र 6.2) इसी पर चलकर, दशरथ की मृत्यु के बाद, संदेश वाहक भरत तक पहुँचे थे एवं इसी का अनुसरण करते हुए वे शीघ्रतापूर्वक आये थे। यह मार्ग वर्तमान फैजाबाद- लखनऊ, लखनऊ- दिल्ली ग्रैण्ड ट्रंक रोड का अनुसरण करते हुए अविभाजित भारत के पंजाब राज्य में, झेलम एवं चिनाव नदियों के दोआब में स्थित केकय (जो अब पाकिस्तान में है) राज्य की राजधानी गिरिव्रज तक जाता था (चित्र6.2) यह अपेक्षतया अधिक प्रचलित मार्ग था जिसके कारण इस पर द्रुतगति से यातायात संभव था।

3- अयोध्या-चित्रकूट मार्ग-

इस मार्ग से होकर राम अपनी पत्नी सीता एवं भाई लक्ष्मण सहित वन के लिए प्रस्थान करते हैं। बाल्मीकि रामायण में इस मार्ग का विस्तृत विवरण दिया गया है। यह मार्ग टौंस (तमसा), गोमती, स्यंदिका (सई) आदि नदियों को पार करता हुआ श्रृंगवेर पुर पहुँचता था (चित्र 6.2) जो गंगा जी के किनारे बसा था एवं कोशल जनपद की सुदूर दक्षिणी सीमा पर स्थित निषादों की राजधानी थी। यह मार्ग जो वर्तमान फैजाबाद-इलाहाबाद रेल लाइन के करीब-करीब समानान्तर गुजरता था -रथों एवं सेना के उपयोग योग्य था। श्रृंगवेरपुर से आगे (दक्षिण) यह मार्ग घने जंगलों से गुजरता था एवं इस पर अनेक बाधाएं थी। यही कारण है कि राम गंगा जी को पारकर जंगल के मध्य

से गुजरते हुए भरद्वाज आश्रम पहुँचे थे जहां से दक्षिण यमुना जी को (इलाहाबाद नैनी पुल के समीप) पारकर चित्रकूट पहुँचते थे।

4- चित्रकूट -लंका मार्ग-

यह मार्ग चित्रकूट से किष्किन्धापुरी आदि होता हुआ रामेश्वरम् एवं लंका तक जाता था (चित्र 6.2)। पहाड़ी, ऊबड़-खाबड़ एवं जंगली क्षेत्रों से गुजरने के कारण इस पर अनेक बाधाएं थीं। नदियों पर पुलों आदि के अभाव के साथ-साथ इस क्षेत्र में उन दिनों अनेक अनार्य जनजातियां निवास करती थीं जिनसे यात्रियों को प्राण का भी संकट उत्पन्न हो जाता था। आर्य ऋषियों ने इन वनों के बीच-बीच में छोटे- छोटे आश्रम बना रखे थे जो एकान्त चिन्तन के अतिरिक्त आर्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार के प्रमुख केन्द्र थे। परन्तु इस केन्द्रों को भी अनार्य जनजातियां (राक्षस आदि) द्वारा प्रायः क्षति पहुँचाई जाती थी एवं आश्रमवासी उत्पीड़ित होते रहते थे। रामायण में प्राप्त विवरण के अनुसार राम इन्हीं ऋषियों के आश्रमों से चित्रकूट में अत्रि आश्रम, शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि के आश्रमों में होते हुए पंचवटी (वर्तमान नासिक) पहुँचे थे। यह मार्ग सम्भवतः कटनी, जबलपुर, नागपुर, अकोला आदि होता हुआ पंचवटी (नासिक) तक जाता था। जो घने जंगलों एवं दुर्गम पर्वतों के मध्य से गुजरता था। पंचवटी से यह मार्ग पश्चिमी घाट पर्वतों के पूर्वी ढालों के सहारे होता हुआ गुजरता था एवं दुर्गम होने के कारण इस पर आवागमन कम होता था। पंचवटी से यह मार्ग किष्किन्धा पुरी तक जाता था जिसकी स्थिति कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों

के मध्यवर्ती क्षेत्र में थी। यहाँ से दक्षिण भी यह मार्ग पर्वतीय एवं पठारी क्षेत्रों से गुजरता हुआ रामेश्वरम् पहुँचता था। रामायण में दिये गये वृतान्त से यह सुस्पष्ट होता है कि नासिक (पंचवटी) से रामेश्वरम् तक का मार्ग बहुत कुछ उसी राजमार्ग का अनुसरण करता था जो आज नासिक को पूर्णे, बेलगाम, बंगलौर, मदुराई, रामानाथपुरम् एवं धनुष्कोटि को जोड़ता है। यह उत्तरी भारत एवं प्रायद्वीपीय क्षेत्र के बीच एक मुख्य सम्पर्क मार्ग था। रामेश्वरम् से लंका तक पहुँचने के लिए रामायण में राम द्वारा निर्मित पुल की बात कही गयी है जो सम्भवतः इस क्षेत्र में सागर के उथले होने एवं विभिन्न द्वीपों के उपस्थित होने (जो सम्भवतः अतीत में और अधिक थे) के कारण सम्भव हो पाया था।

इन प्रमुख राजमार्गों के अतिरिक्त बाल्मीकि रामायण में अनेकों ऐसे मार्गों का भी विवरण मिलता है जिससे यह ज्ञात होता है कि देश के पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी एवं दक्षिणी सिरे आपस में जुड़े हुए थे। विशेषकर सुग्रीव ने सीता के अन्वेषणार्थ चारों दिशाओं में बन्दरों को भेजते समय ऐसे ही अनेक मार्गों का वर्णन किया है।

(ब) जल मार्ग-

1- गंगा नदी जो हिमालय से निकलकर पूर्वी समुद्र में गिरती है रामायणकाल में पूर्णतः नाव्य थी एवं इसका उपयोग यातायात तथा व्यापार हेतु होता था। कुछ पर्वतीय भागों को छोड़कर नदी का शेष भाग नावों द्वारा नाव्य था एवं इसके किनारे जगह-जगह घाट बने हुए थे। राम के वन एवं भरत

के चित्रकूट प्रस्थान के समय श्रृंगवेरपुर के पास इसी प्रकार का एक बड़ा घाट था जिस पर नावों से पूरी सेना को पार उतारने की व्यवस्था थी। गंगा के अतिरिक्त, यमुना, सरयू, गोदावरी आदि नदियों में नौका परिवहन की सुविधाएं प्राप्त थीं जिसके माध्यम से यातायात एवं समान के परिवहन में सहायता मिलती थी।

2- रामेश्वरम्- लंका मार्ग-

यह समुद्री मार्ग था जिसकी विस्तृत चर्चा किष्किन्धा काण्ड एवं लंकाकाण्ड में की गयी। रामायण में इस पर एक वृहदपुल के निर्माण की चर्चा है जिस पर होकर राम की सेना ने लंका पर चढ़ाई की थी।

{स} वायु मार्ग-

रामायण में पुष्पक विमान आदि यानों ~~आदि~~ की चर्चा से वायु यातायात के बारे में भी संकेत मिलता है परन्तु इस प्रकार के यातायात की सुविधा केवल कुछ ही लोगों को प्राप्त थी। हनुमान जी का उड़कर समुद्र पार करना, लक्ष्मण के लिए संजीवनी बूटी लाना अथवा भरत को राम के अयोध्या लौटने की सूचना देना, जटायु एवं सम्पाति{गृध्र जाति} का सूर्य को स्पर्श के लिए अस्ताचल जाना इत्यादि इस तथ्य की ओर संकेत देते हैं कि उनको आजकल की भाँति ग्लाइडिंग आदि की ट्रेनिंग थी जिसके जरिये वे छोटी उड़ान कर सकते थे।

6.4 रामायणकालीन अधिवास-

रामायणकालीन सभ्यता तक आर्य लोग यायावरी प्रवृत्ति को त्याग

कर समूहों में बसना प्रारम्भ कर दिये थे जिससे अधिवासों एवं उनको जोड़ने वाले सम्पर्क मार्गों का विकास हुआ। तत्कालीन अधिवासों को ग्रामीण एवं नगरीय वर्गों में विभाजित करने के अतिरिक्त एक भिन्न वर्ग में भी बाँटा जाताथा जिन्हें "आश्रम" एवं पर्यटक स्थल कहते थे। ये अधिवास, मुख्यतया नदियों, सरोवरों या सुरक्षित स्थलों पर विकसित किये गये थे। कुछ अधिवास जो आदिवासियों से सम्बद्ध थे विरल जंगलों के मध्य विकसित हुए थे। जहाँ जीवनोपयोगी वस्तुएं आसानी से उपलब्ध हो जाया करती थीं।

§अ§ ग्रामीण अधिवास-

इस प्रकार के अधिवास मुख्यत: कृषकों के निवास स्थान थे जिनमें कृषि कार्यों की प्रधानता थी। इन अधिवासों के चारो ओर कृषि कार्यों के कृषि क्षेत्र पाये जाते थे। रामायण में ऐसे अधिवासों का संकेत कई बार किया गया है। इन अधिवासों को "ग्राम" कहते थे। अयोध्या के समीप स्थित नन्दिग्राम अयोध्या-गिरिव्रज मार्ग के बीच के अंशुधान ग्राम §वा0रा0 2·71·9§ धर्मवर्धन ग्राम §वा0रा0 2·71·10§, तोरणग्राम §वा0रा0 2·71·11§ वस्थ ग्राम §वा0रा0 2·71·77 §, सर्वतीर्थ ग्राम §वा0रा0 2·71·14§ हस्तिपृष्ठक ग्राम §वा0रा0 2·71·15§ एवं लौहित्य ग्राम §2·21·15§ विनत ग्राम §2·71·16§ तेजोभिभवन ग्राम §2·68·17§, अभिकाल ग्राम §2·68·17§ आदि ग्रामीण अधिवासों के उदाहरण हैं।

§ब§ नगरीय अधिवास-

रामायण काल में नगरों का पर्याप्त विकास हुआ था। इस काल के प्रमुख नगर या तो जनपदों के राजधानी थे या तो सुरक्षा केन्द्र थे §चित्र6·3§। इन केन्द्रों में प्रशासनिक एवं व्यापारिक कार्यों की प्रधानता थी। इसमें राज्य के अभिजात्य वर्ग जैसे -मंत्रियों, राजपरिवारों, बड़े-बड़े व्यापारियों एवं इनके सेवकों के आवास बने थे। आधुनिक नगरों के समान ही ये विभिन्न सुविधा से सम्पन्न थे। रामायणकालीन नगरों में अयोध्यापुरी §अयोध्या§, जनकपुरी §नेपाल में जनकपुर§, किष्किन्धापुरी §बेलारी के समीप§, लंकापुरी, §वर्तमान लंका में स्थित§, मथुरापुरी §मथुरा§, महिष्मतीपुरी §नर्मदा नदी के किनारे स्थित§ §वर्तमान पाकिस्तान में स्थित§, आदि प्रमुख है §चित्र 6·2§ जो विभिन्न जनपदों §राज्य§ की राजधानियाँ थी। इनके अतिरिक्त प्राग्वट §वा0रा0 2·71·10§ उज्जिहानानगर §वा0रा0 2·71·12§, एक साल नगर §वा0रा0 2·71·16§ एवं कलिंग नगर §वा0रा0 2·71·16§ हस्तिनापुर, §वा0रा0 2·68·13§ आदि अन्य छोटे नगर थे। रामायणकाल में बड़े नगरों को "पुरी" की संज्ञा दी जाती थी जबकि छोटे नगरों को केवल "नगर" कहा जाता था।

1- नगर नियोजन-

वैदिक एवं ब्राह्मणकाल की संस्कृति ग्रामीण थी जबकि रामायणकाल में नगरीकरण प्रारम्भ हो चुका था। रामायणकाल में उत्तरी भारत में असम से

अफगानिस्तान तक अनेक भव्य नगर बसे हुए थे। यही कारण है कि रामायण में स्थापत्यकला {वा0रा0 1·13·6} का संकेत मिलता है। रामायण में विश्वकर्मा को एक महान स्थापत्य विद {नगर निर्माण करने वाला अभियांत्रिक} बताया गया है। मनु {वा0रा0 1·5·6} तथा मय{वा0रा0 5·7·4} को रामायण काल में महान स्थापत्यविद{ Architect } बताया गया है। प्राचीनकाल में नगर एवं दुर्ग एक दूसरे के पर्यायवाची[18] शब्द थे।इसीलिए रामायणकाल के प्रमुख नगर चारो ओर से दीवालों से घिरे थे तथा वे सभी दुर्ग युक्त, सामग्रियों,धन-धान्य,अस्त्र शस्त्र,जल यंत्र{मशीन}शिल्पी एवं धनुर्धर सैनिकों से परिपूर्ण रहते थे{वा0रा0 2·100·53}

II. रामायणकाल में नगर निर्माणकला-

रामायणकालीन नगर लोगों के बसाव के लिए थे किन्तु इनका मुख्य उद्देश्य आक्रमण के समय शत्रु से रक्षा थी। रामायणकालीन नगर चतुर्दिक गहरी खाइयों {परिखा} एवं ऊँची दीवारों {प्रकार} से सुरक्षित होते थे जिससे शत्रु आसानी से नगर में प्रवेश न कर सके एवं आक्रमणकारी पर आसानी से प्रहार किया जा सके। नगर के प्रमुख द्वारों पर सुरक्षा का पर्याप्त प्रबन्ध रहता था।

III-स्थान चयन-

अधिकांशतः नगर समतल भूमि, स्वस्थ एवं स्वच्छ वातावरण जल तथा खाद्य पदार्थों की प्रचुरता वाले स्थानों पर बनाये जाते थे। नदियों का तटवर्ती प्रदेश नगर के विकास के लिएउपयुक्त था। यहां नदियों का जल पीने के लिए

तथा अन्य कार्यों में प्रयुक्त होता था तथा नगरों का कूड़ा करकट इन नदियों में आसानी से प्रवाहित कर दिया जाता था। युद्धकाल में नदियां शत्रुओं से रक्षा करती थी। रामायणकालीन नगर जैसे अयोध्या {सरयू नदी के तट पर} लंका {समुद्र तटपर तथा {किष्किन्धा {पम्पा सरोवर के तटपर स्थित थे।

4- बाह्य रचना प्रणाली {वा0रा0 5·2·14}

नगर की सुरक्षा हेतु इसके चारों ओर जल से भरी एवं जलजन्तुओं से युक्त एक खाई पायी जाती थी जिसे परिखा कहते थे{वा0रा0 6·3·15} यह परिखा काफी चौड़ी एवं गहरी होती थी ताकि शत्रु आक्रमणकारी आसानी से न पार कर सके एवं नगर की बाहरी आक्रमण से रक्षा की जा सके। रामायणकाल के प्रमुख नगरों जैसे लंका, अयोध्या, गिरिव्रज एवं किष्किन्धा आदि के चतुर्दिक इसी प्रकार की गहरी खाई के पाये जाने की बात कही गयी है। कुछ नगर सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गम घने जंगलों {वा0रा0 2·71·16} में बनाये जाते थे। रामायणकालीन लंकापुरी को प्राकृतिक सुरक्षा प्राप्त थी। क्योंकि वह चारों ओर सागर से घिरी थी। लंका का राजा रावण इसी कारण अजेय था।

4.1- प्राकार-

प्राचीनकाल में नगरों की सुरक्षा हेतु नगर के चारों ओर ऊँची-ऊँची चहारदीवारी बनायी जाती थी जिसे "प्राकार" कहते थे{वा0रा0 5·2·16} ये प्राकार बहुत ऊँचे -ऊँचे होते थे जिसके कारण शत्रुगण आसानी से नगर के भीतर नहीं पहुँच सकते थे। इस प्राकारको तोड़ना बहुत कठिन होता था। {वा0रा0 6·3·14}

लंका नगरी इसी प्रकार के ऊँचे प्राकारों से घिरी थी जिसे हनुमान जी सीता-न्वेषण के समय जला डाला था। इसी प्रकार का प्राकार किष्किन्धापुरी के भी चतुर्दिक विद्यमान था जिसे पारकर ही शत्रुसेना वानर सेना युद्ध करती थी। इन प्राकारों में निर्व्यूह (कंगूरे) बने हुए थे। नगर के चारो ओर बड़े-बड़े यंत्र लगाए गये थे जिससे शत्रुओं का निवारण हो सके। (वा0रा0 1·70·3)

2- द्वार-

रामायणकालीन नगरों के चारो ओर घिरी दीवारों के बीच-बीच में द्वार लगे रहते थे। इन द्वारों के समीप बड़ी मात्रा में अस्त्र-शस्त्र संचित रहते थे। (वा0रा0 1·5·10)। लंकापुरी के चारो ओर चार विशाल द्वार बने हुए थे। (वा0रा0 5·3·8)।इन द्वारों पर मजबूत अर्गलाएँ (वा0रा0 6·3·11) पत्थर के गोले बरसाने वाले विशाल यंत्र(वा0रा0 6·3·12) तथा लोहे की शतघ्नियां (तोपें) लगी थीं। (वा0रा0 6·3·13) इन दरवाजों पर बड़े -बड़े लकड़ी के पुल बने थे। जब शत्रु सेना इन पुलों पर पहुँचती थी तोबड़े-बड़े यंत्रों द्वारा पुल को घुमाकर सम्पूर्ण शत्रु सेना को परिखा(खाई) में गिरा कर नष्ट कर देते थे(वा0रा0 6·3·17)।

उपर्युक्त वर्णन से रामायणकालीन नगरों में किये जाने वाले सुरक्षा प्रबन्धों पर प्रकाश पड़ता है और यह ज्ञात हो जाता है कि इन नगरों की सुरक्षा व्यवस्था एक दुर्ग से मिलती जुलती थी। रामायणकाल के बाद के समय में भी ऐसे ही बड़े-बड़े किले बनाये जाते थे जिनमें युद्ध के समय सेनाओं सहित

नागरिकों को महीनों तक घिरे रहकर भी युद्ध करने की सुविधा रहती थी।

४ - आन्तरिक रचना प्रणाली-

रामायणकालीन नगरों का निर्माण अनेक दृष्टियों को ध्यान में रखकर किया जाता था। इनके आकारभी वर्गाकार,आयताकार,अष्टकोणाकार,वर्तुलाकार, अंडाकार,कमलाकार तथा धनुषाकार होते थे। इनमें से प्रत्येक प्रकार के नगर की अपनी एक विशिष्ट शास्त्रीय संज्ञा होती थी प्रत्येक नगर के मार्गों ,सार्वजनिक स्थानों तथा भवनों के निर्माण में विशिष्ट शैली अपनायी जाती थी। उदाहरण-स्वरूप किष्किन्धापुरी वृत्ताकार रूप में बसायी गयी थी जो शत्रुसेना के लिए एक भूल-भुलैया का कार्य करती थी।

1- परिवहन संचार व्यवस्था-

रामायणकालीन नगरों की परिवहन एवं संचार व्यवस्था बड़ी ही वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित थी। नगर का हृद प्रदेश जिसमें राज प्रसाद स्थित होता था सड़कों के माध्यम से नगर के विभिन्न भागों से जुड़ा होता था। इन्हे मुख्यतः निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है।

§क§महापथ-

नगर से अन्य नगरों एवं राज्य के दूसरे स्थानों को जोड़ने वाली सड़कों को महापथ कहते थे। ये महापथ आज के राष्ट्रीय मार्ग§ National Highways) के समान ही थे। इनके दोनों ओर विविध प्रकार के वृक्ष लगे रहते थे।- §वा0रा0

।

1·5·7}। नगरीय क्षेत्रों में इनके दोनो ओर ऊँचे-ऊँचे भवन बने होते थे तथा इनपर जल का छिड़काव होता रहता था ताकि धूल एवं गन्दगी को कम किया जा सके।

{ख} राजपथ-

ये सड़के राजा के महल की ओर जाने वाली सड़के थीं। ये सड़के आधुनिक नगरों के आन्तरिक मार्गों के समान थी जो उत्सवों के समय य सड़के फूलों, तोरणों आदि से खूब सजायी जाती थी {वा0रा0 2·7·2} विशेष उत्सवों के समय तो ये सड़के झुंड के झुंड मनुष्यों के खचाखच भरी होती थी। {वा0रा0 2·5·16} राजमार्गों के दोनों ओर राज्य के मुख्यसचिवों तथा प्रधान लोगों का घर होता था {वा0रा0 4·33·9-12} लंका में हनुमान जी ने रावण के महल की ओर जाते हुए चार राज मार्गों को देखा था।

{ग} चतुष्पथ-

रामायण में चार सड़कों के मिलन विन्दु पर विस्तृत चतुष्पथ {चौराहा} बनाये जाते थे। अयोध्या नगरी में ऐसे अनेक चतुष्पथ बने हुए थे {वा0रा0 2·6·11} इन चौराहों को उत्सवों एवं विशेष अवसरों पर बड़े ही कलात्मक ढंग से सजाया जाता था।

{घ} रथ्या-

रामायणकाल में पतली सड़कों को रथ्या {गली} कहते थे जो राजमार्गों से सम्बद्ध होती थी। इनके दोनों ओर नगरवासियों के भवन स्थित होते थे। राम के राज्याभिषेक के समय अयोध्या की इन रथ्याओं को भली भाँति स्वच्छ करके, पानी से सींचकर वनमालाओं से सुसज्जित किया गयाथा तथा उनके वन से

अयोध्या आगमन के समय भी ये गलियां खूब सजायी गयी थीं(वा0रा0 7·127·8)।

(ङ) उपरथ्या-

पतली गलियों को उपरथ्या कहा जाता था। हनुमान जी ने लंका दहन के समय लंका में इन उपरथ्याओं को देखा था।

2- राज प्रासाद-

नगर के मध्य में राजप्रासाद स्थित होता था जो चौड़ी सड़कों द्वारा चारों ओर से नगर के सभी भागों से जुड़ा होता था। नगर के सभी मुख्य राजमार्ग इसी प्रासाद से आरम्भ होते थे और बाहर नगर द्वारों पर समाप्त होते थे। नगर का विकास सदैव इस केन्द्र स्थल से होता था जो आर्थिक एवं प्रशासनिक सेवाओं का केन्द्र होता था।

3- मनोरंजन स्थल-

नागरिकों के मनोरंजन के लिए नगर में विविध प्रकार के साधन उपलब्ध होते थे। अयोध्या नगरी में वधुओं" के लिए नाट्यशालाएं बनी हुई थीं(वा0रा0 1·5·12)। नगर में कूटागार(क्रीड़ागृह) भी बनाये जाते थे। जिसे क्रीड़ागृह कहते थे वहां स्त्रियां जाकर मनोरंजन करती थीं(वा0रा0 1·5·15) यत्र तत्र इन नगरों में सभागार भी पाये जाते थे।

4- धार्मिक स्थल-

नगर में पूजा के निमित्त देवायतन अर्थात देवमन्दिरों का निर्माण

करवाया जाता था। अयोध्या में अनेक देवमन्दिरों का वर्णन प्राप्त होता है जिसे राम के राज्याभिषेक के समय सजाया गया था (वा0रा0 2·6·11)। नगरों में स्थान-स्थान पर धार्मिक कृत्यों के संपादनार्थ वेदियां बनायी जाती थीं जो बहुमूल्य मणियों से सजायी जाती थीं (वा0रा0 5-3-8)।

नगर में स्थान-स्थान पर चैत्य* भी बने रहते थे। अयोध्या में अनेक चैत्यों का विवरण प्राप्त होता है जिन्हे राम के अभिषेक के समय सुन्दर ध्वजा एवं पताका से सजाया गया था (वा0रा0 2·6·11)। ये धार्मिक स्थल प्रायः नगर के विभिन्न भागों में फैले रहते थे जिससे नगरवासी धार्मिक अनुष्ठान सुविधापूर्वक सम्पादित कर सकें।

5- व्यावसायिक क्षेत्र-

रामायण काल के नगरों में स्थान-स्थान पर मूल्यवान वस्तुओं को बेचने वाले वणिर्यों (बनियों) के बाजार लगा करते थे। अयोध्या में इसी प्रकार के एक महत्वपूर्ण समृद्धशाली बाजार का वर्णन प्राप्त होता है जिसे बड़े ही सुनियोजित ढंग से लगाया जाता था (वा0रा0 2·6·13)। ये व्यावसायिक क्षेत्र आधुनिक नगरों के व्यावसायिक क्षेत्रों के ही समान थे। रामायणकाल में प्रायः सभी व्यावसायिक प्रतिष्ठान एक जगह पर ही संकेन्द्रित न होकर जगह-जगह बिखरे हुए थे।

6- प्रशासनिक क्षेत्र-

सभा भवन-

नगर में स्थान-स्थान पर सभा भवन बने हुए थे जिनमें सार्वजनिक सभाएं

---

* रामायण में धार्मिक चैत्यों से तात्पर्य विभिन्न धर्मावलम्बियों के धार्मिक केन्द्रों से है

आयोजित हुआ करती थीं। पर्यटक इसमें आकर ठहरते थे। अयोध्या नगर में अनेक सभाभवन बने थे जिन्हे राम के राज्याभिषेक के अवसर पर सुन्दर ध्वजा एवं पताकाओं से सजाया गयाथा [वा० रा० 2·6·13]

रामायण काल में स्वच्छता का पूर्ण ध्यान दियाजाता था। राजा की ओर से नगर को स्वच्छ करने वाले नियुक्त किये जाते थे जो नियमित रूप से नगरों की सफाई करते थे। यद्यपि रामायण में नगर की सफाई करने वालों कावर्णन नहीं प्राप्त होता है किन्तु रामायण में प्राप्त "स्वच्छ" एवं अपांसु" विशेषणों से यह सिद्ध होता है कि नगरों के सफाई का पूरा ध्यान दिया जाता था एवं सड़कों पर पानी का छिड़काव किया जाता था।

6-प्रमुख नगर-

1·अयोध्या-

अयोध्या कोशल जनपद की राजधानी थी जो सरयू [घाघरा] के किनारे बसी हुई थी। महाराज मनु ने इस नगरी का निर्माण कराया था। यह नगरी 12 योजन [90कि·मी·] लम्बी एवं 3 योजन [38कि·मी·] चौड़ी थी। इस नगरी के चारों ओर गहरी खाई बनी थी तथा यह चारो ओर से गहन साखू के वनों से आच्छादित थी। इसके प्रधान दरवाजे, महल उपयुक्त अन्तराल पर बने हुए थे [वा० रा० 1·5 सम्पूर्ण सर्ग] । अयोध्या नगरी चारों ओर से ऊँची चहारदीवारी से घिरी हुई थी। नगर के द्वार पर फाटक लगे रहते थे जिस पर सदा पहरेदार पहरा दिया करते थे। [वा·रा·2·88·24-95]।

नगर की परिवहन प्रणाली (सड़क आदि) बड़ी ही व्यवस्थित थी। यह नगर चौड़ा राजमार्गों द्वारा अन्य जनपदों से जुड़ा हुआ था जिनके दोनों ओर छायादार वृक्ष लगे हुए थे जिससे ये अन्य मार्गों से भिन्न मालूम होते थे (वा० रा० 2·5·7)। अयोध्या को कई भागों में बांटा गया था। प्रत्येक क्षेत्र में पृथक-पृथक बाजारें थी जिनमें सब प्रकार की उपभोक्ता सामग्रियां संचित रहती थीं (वा० रा० 2·5·10)। इस नगरी में पेयजल के वितरण के लिए प्रपा (पौसाले) बने हुए थे। स्थान-स्थान पर सभागार (Town Hall) भी बने हुए थे जहां पर सामाजिक नगरीय समस्याओं पर नागरिकों में आपस में विचार-विमर्श हुआ करता था (वा० रा० 2·6·13)। इस नगर के मार्ग सर्वदा स्वच्छ तथा दीपों से सुसज्जित रहते थे (वा० रा० 2·6·18)। अयोध्या में मार्गों के मिलन विन्दु पर चौड़े एवं विस्तृत चौराहे बने थे। (वा० रा० 2·6·15)

अयोध्यापुरी में घरों की आबादी इतनी घनी थी कि उसमें कहीं थोड़ा सा भी अवकाश नहीं था (वा० रा० 2·7·17)। इस नगरी के महल रंग विरंगे बहुमूल्य पत्थरों से बने हुए थे (वा० रा० 2·7·15) नगर के प्रासाद गगनचुम्बी तथा पर्वतों के समान ऊँचे थे (वा० रा० 2·7·15) कुछ भवन तो सात मंजिल तक ऊँचे थे। नगर में आवासों का बनाव पंक्तिबद्ध था (वा० रा० 6·123·54) अयोध्या नगरी का वाह्य स्वरूप (Lay Out) अष्टपदाकार था (वा० रा० 1·5·16)। इस प्रकार के Chess-Board पद्धति रूप वाले नगर के निर्माण कला को शिल्पशास्त्र में दण्डक-प्रकार कहते हैं। इस आकार में

दो मुख्य दरवाजों वाली प्रत्येक इकाई आयताकार होती है। नगर के चारो तरफ से सड़के राज प्रासाद में आकर मिलती थी। अयोध्या नगर के अधिकांश भवन सफेद रंग से रंगे होते थे।

2- लंका-

लंका दक्षिण समुद्र के मध्य स्थित त्रिकूट पर्वत पर बसी नगरी थी जो 1200 कि॰मी॰ {100 योजन} लम्बी तथा 360 कि॰मी॰ {30 योजन} चौड़ी थी। इसके चारो ओर सोने की चहारदीवारी थी जिसमें सोने* के ही फाटक लगे हुए थे{वा०रा० 7·5·24-26} । चारों ओर सागर से घिरी होने के कारण यह शत्रुओं से पूर्णतया सुरक्षित थी {वा०रा० 7·5·27}। नगर के चारो तरफ घने जंगल एवं बगीचे पाये जाते थे। यह नगरी चारो ओर से नदी, पर्वत एवं कृत्रिम खाई परकोटे आदि से सुरक्षित थी जिसके कारण लंका देवताओं के लिए भी अगम्य थी। नगरी के चारो ओर ग्राह एवं भयंकर मत्स्य से परिपूर्ण, गहरी, ठण्डे जल से भरी हुई, शत्रुओं का महान अमंगल करने वाली भयंकर खाइयां बनी हुई थी{वा०रा० 6·3·15} लंका के चारो ओर ऊँची दीवाले भी थी जिनमें 4 मुख्य द्वार थे इसमें ऊँची मीनारें बनी हुई थी जिस पर रक्षक नियुक्त रहते थे जिन्हें चैत्यपाल कहा

---

* यहां सोने से अभिप्राय या तो दीवालों के पीले रंग से पुते होने से है अथवा ये ग्रेनाइट जैसी चट्टानों से बनी थी जो इन क्षेत्रों में बहुलता से पायी जाती है।

जाता था(वा0रा0 5·43·13)।लंका के दरवाजों पर लोहे की बनी हुई सैकड़ों शतघ्नियां (एक किस्म का हथियार) लगाकर रखे गये थे। नगरी में सुव्यवस्थित मार्ग,रथ्याएं,उपरथ्याएं एवं चौराहे बने थे। लंका के मध्य स्थित मुख्य मार्ग(राजमार्ग) हरी दूब,फल -पुष्पों से लदे सुगन्धित वृक्षों तथा रमणीय उद्यानों से सुशोभित थे।(वा0रा0 5·2·6)।इस नगरी में पृथक-पृथक सुन्दर चबूतरे बने हुए थे। नगर में मकान पंक्ति बद्ध रूप से बसे हुए थे तथा बसाव घना था। लंका के महल एक दूसरे से सम्बद्ध थे। महानगरी बगीचों ,वाटिकाओं से सजी हुई थी(वा0रा0 2·48·112·6·41·31·5·3·34) प्रत्येक गृह में गृहवाटिकाएं थीं(वा0रा0 5·12·14)। इस नगरी के मकानों का उर्ध्वाधर प्रसार भी था। (वा0रा0 5·2·52)।लंका एक समृद्ध नगरी थी (वा0रा0 6·39·26) जो अनार्य सभ्यता के स्थापत्य को प्रतिनिधित्व करती थी।

3· किष्किन्धापुरी-

वानरों की नगरी किष्किन्धा को रामायण में पुरी कहा गया है। यह पर्वतीय क्षेत्र (प्रस्त्रवण गिरि) की उपात्यका में बसी हुई थी। इस नगरी के चारों ओर हिंस्त्र पशु,नदी नाले गहरी खाई तथा घने जंगल थे (वा0रा0 4·23·5-12) जिससे यह पुरी पूर्णरूपेण सुरक्षित थी। इस नगरी में सुन्दर वाटिकाएं थी(वा0रा0 4·27·26) यह नगरी हर्म्यों(धनिकों की अट्टालिकाओं) तथा प्रासादों (देवमन्दिरों एवं राजभवनों) से युक्त थी। नाना प्रकार के भवन इसकी शोभा बढ़ाते थे। (वा0रा0 4·33·5)।

इस नगरी की सड़के लम्बी तथा चौड़ी थीं जिनसे मैरेय तथा मधु की सुगन्ध आती थी (वा० रा० 4·33·7)। इसमें मुख्य राजमार्गों पर प्रधान यूथपतियों के गृह बने हुए थे (वा० रा० 4·33·9-12)

(स) आश्रम केन्द्र/पर्यटन केन्द्र-

रामायणकालीन इस प्रकार के अधिवासों का विकास मुख्यत: शिक्षा केन्द्रों के रूप में हुआ था। रामायणकालीन संस्कृति पर आश्रमों का बहुत प्रभाव था (अध्याय 8 देखें) ये आश्रम स्थल ही रामायणकाल न पर्यटक केन्द्र तथा तीर्थस्थली थे। इनमें ऋषियों एवं उनके शिष्यों के निवास स्थान पाये जाते थे। ये लोग ग्रामों एवं नगरों के कोलाहल से दूर रहकर अध्ययन, चिन्तन आदि किया करते थे। इन्हीं केन्द्रों में किये गये परीक्षणों आदि से तत्कालीन समाज को दिशा मिलती थी। रामायण काल में ऐसे अनेक आश्रम केन्द्र अनार्यों के जनजातियों वाले क्षेत्रों में स्थित थे जो आर्य संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में प्रमुख भूमिका अदा करते थे। यहाँ निवास करने वाले तपस्वी लोग प्रकृति को खूब सजाते एवं संवारते थे जिससे स्वास्थ्य हेतु शुद्ध नैसर्गिक वातावरण का निर्माण हो सके। यही कारण है कि नगर के संभ्रान्त वर्ग के लोग तथा अन्य यायावरी प्रवृत्ति के लोग इन केन्द्रों पर भ्रमण हेतु जाया करते थे।

रामायणकालीन समाज में ऋषियों एवं तपस्वियों का इतना अधिक वर्चस्व था कि राजा लोग इन स्थलों में निवास करने वाले जीवजन्तुओं

एवं वनस्पतियों को नष्ट नहीं करते थे। कुछ पर्यटन केन्द्र, तीर्थस्थलों एवं धार्मिक केन्द्रों रूप में स्थित थे जहां सर्वसाधारण लोग विश्राम एवं मानसिक शान्ति हेतु जाया करते थे। इन सभी केन्द्रों का प्राकृतिक वातावरण अत्यन्त मोहक होता था। इन केन्द्रों पर पहुँचकर मानव पूर्णरूपेण स्वस्थ हो जाता था। वह यहां केवल शारीरिक स्वास्थ्य लाभ ही नहीं प्राप्त करता था। बल्कि मानसिक एवं आध्यात्मिक शान्ति भी करता था। इन स्थलों की महत्ता इस बात से भी स्पष्ट हो जाता है कि वैभव विलास में पली तत्कालीन चक्रवर्ती सम्राटों की पटरानियाँ भी इन रमणीय स्थलों में भ्रमण की इच्छा करती थीं।

1- विकास के कारक-

1- कमजनसंख्या-

रामायण में जनसंख्या का घनत्व बहुत कम था। कुछ उपयुक्त स्थलों को छोड़कर (नदी घाटियों, समुद्र तटीय मैदान आदि) देश के अधिकांश भाग पर जनसंख्या का वितरण बहुत ही विरल था। उप महाद्वीप में उत्तर के पर्वतीय क्षेत्र एवं दक्षिण के पठारी भूभागों में प्रकृति अपने नैसर्गिक रूप में विद्यमान थी जहां मानव का विनाशकारी प्रभाव करीब -करीब नगण्य था। इन क्षेत्रों में अनेक मनोरम स्थल थे जो अपनी नैसर्गिक सुन्दरता एवं मनोहारी छटा के लिए यात्रियों को सहज ही आमंत्रित करते थे। कुछ प्रकृति प्रेमी भी तो कष्टों को सहकर भी इन मनोरम स्थलों के दर्शनार्थ जाते थे।

2. आश्रम संस्कृति का प्रभाव-

रामायणकाल में आश्रम संस्कृति का प्रभावभी पर्यटक केन्द्र को विकसित करने में सहायक रहा है क्योंकि यदि निर्जन वनों में मानव निवास न होता तो इन वनों में बहुत साहसी व्यक्ति ही जापाते किन्तु आश्रमों की स्थिति के कारण सभी प्रकार के लोग इन केन्द्रों में स्वास्थ्य लाभ,अध्यात्म चिन्तन एवं प्रकृति अवलोकन के लिए जाया करते थे।

3. प्रकृति एवं मानव सम्बन्ध-

रामायणकालीन संस्कृति में धर्म की प्रधानता थी अतः वे लोग प्रकृति को मानव का नियंत्रक मानते थे। यह दृष्टिकोण पूर्णतया नियतिवादी था। राम स्वयं [लंकाकाण्ड] भी यह मानते हैं कि भाग्य ही [नियति ही] सब कुछ है । यह विचारधारा प्रकृति के शोषण के विपरीत उसके प्रति सह सम्बन्ध एवं आदर पर आधारित थी। अतः रामायणकाल में प्रकृति के साथ मानव का सकारात्मक सम्बन्ध था जिससे पर्यटक स्थलों के विकास में पर्याप्त सहायता मिली।

4. आर्यों का जीवन दर्शन-

आर्यों का आश्रम व्यवस्था [चार आश्रम] भी इन केन्द्रों [अधिवासों] के विकास में उत्तरदायी रही है। इसके परिणामस्वरूप सभी तीन वर्गों के लोग गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होते थे इससे पर्यटक केन्द्रों

के विकास को काफी प्रोत्साहन मिला।

5. पठन केन्द्र-

वनों एवं पर्वतों में स्थित थे विभिन्न आश्रम पर्यटन केन्द्र के साथ-साथ इन स्थलों पर बहुत से विद्यार्थी विद्याध्ययन हेतु आया करते थे तथा उनके सम्बन्धी अपने बालकों एवं गुरुओं से मिलने हेतु आया-जाया करते थे।

6. धार्मिक पृष्ठ भूमि-

रामायणकालीन जनता धार्मिक उद्देश्य से भी पर्यटन केन्द्रों में जाया करती थी क्योंकि इनके गुरु प्राय: इन्हीं आश्रमों में ही निवास करते थे। अत: धार्मिक कृत्यों के संपादनार्थ लोग इन केन्द्रों पर जाया करते थे जिससे पर्यटक केन्द्रों के विकसित होने में विशेष सहायता मिलती थी।

2- समस्याएं-

1- -ये पर्यटक केन्द्र प्राय: राक्षसों द्वारा नष्ट भ्रष्ट कर दिये जाते थे जिससे यहां लोग जाने में हिचकते थे।

2- इन केन्द्रों के विकास में मुख्यत: मुनियों का ही योगदान होता था जिनके साधन सीमित होने के कारण इन केन्द्रों का ठीक से विकास नहीं हो पाता था। यहां का जीवन बड़ा ही कष्ट साध्य था जिससे सामान्य पर्यटक यहां जाने में हिचकिचाते थे।

3- सुव्यवस्थित संचार माध्यमों के अभाव में भी इनके केन्द्रों का सम्यक विकास नहीं हो पाता था ।

4- इन केन्द्रों से राज्य को कुछ आर्थिक लाभ न होने के कारण भी राज्य इनके विकास एवं रख रखाव पर कम ध्यान देता था। इस प्रकार ये पर्यटक स्थल मात्र "तीर्थस्थल" ही होकर रह जाते थे।

रामायणकालीन अधिवासों के विकास के कारक-

रामायणकाल के अधिकांश अधिवास आर्यावर्त भूमि (सिन्धु-गंगा का मैदान) में ही केन्द्रित थे। जहां इन अधिवासों के विकास हेतु पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध थी।

1- इस क्षेत्र की जलवायु एवं भूमि कृषि तथा पशुपालन हेतु उपयुक्त थी जिससे इस क्षेत्र में कृषि एवं पशुपालन का पूर्ण विकास हुआ था। लोगों को थोड़े से परिश्रम से आसानी से जीविकोपार्जन सम्बन्धी वस्तुएं उपलब्ध हो जाया करती थी।

2- इस क्षेत्र में अधोभौमिक जलस्तर ऊँचा था अतः पेयजल आसानी से सुलभ हो जाता था एवं गृह निर्माण सम्बन्धी पदार्थ प्रचुरता से उपलब्ध थे।

3- समतल भूमि होने से नदियों के प्रवाह में समानता रहती थी जिससे इन्हे संचार एवं आवागमन हेतु आसानी से प्रयोग किया जा सकता था।

4- इन क्षेत्रों में विरल वन होने के कारण गृह निर्माण पदार्थ सुगमता से मिल जाते थे।

5- इन क्षेत्रों में सुरक्षा भी अधिक थी क्योंकि राक्षसों का प्रभाव विन्ध्य पर्वत के दक्षिण ही था।

संदर्भ

1· Dubey ,B.(1967):Geographical concepts in Anxient India, N.G.S.I. B.H.U. Varanasi,P.107.

2· Bhargava ,P.L.(1971):India inthe Vedic Age, The upper India Publishing House Aminabad,Lucknow,P.251.

3· जायसवाल, मंजुला (1983) बाल्मीकि युगीन भारत, महामति प्रकाशन, बहादुर गंज, इलाहाबाद पृ0 310·

4· अथर्ववेद- 5·17·15·

5· पतंजलि का महाभाष्य- 4·3·120·

6· Op.cit· fn. 3, P 313.

7· Ibid P. 103

8· ऋग्वेद 4·37·4·अथर्ववेद 2·8·4, तैत्तरीय संहिता 6·67·4·

9· Op.cit·, fn·3, P.305

10·ऋग्वेद 16·33 6, 1·110·5 अथर्ववेद 4·18·5,3·31·8

11·Op.cit·,fn·5, 4.2.40.

12·Op.cit·,fn·3, P. 307

13·Vyas ,S.N. (1967):India in the Ramayan Age, Atma Ram And Sons, Delhi,P. 307.

14· ऋग्वेद 10·26·6,10·1302,1·95·7,1·26·1,1·34·4,3·39·2

15 . Op.cit·,fn·3, P.206.

16· त्रिपथ के अनुसार यह जनपद शाहाबाद (आरा जिला) के पास का है।

Das,N.C.(1971):A note on the Ancient Geography of Asia, Bharat-Bharati,DurgaKunda,Varanasi P.14.

17· कनिंघम के अनुसार वैशाली के समीप स्थित पुराने किले को राजा विशाल का गढ़ कहा जाता था जिससे विशालपुरी का संकेत मिलता है।
Ibid P 19-20

18. Dutt,B.B.(1925): Town Planning in Ancient India, Culcutta, P.70.

सप्तम अध्याय

वाल्मीकि रामायण में भारत: राजनैतिक तंत्र

पिछले अध्यायों में प्राप्त विवरणों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वाल्मीकि रामायण वेदोत्तर काल का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है जिससे तत्कालीन भारत के भौतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्वरूपों का परिचय मिलता है। चूँकि रामायण काल तक आर्य लोग देश के विभिन्न अंचलों में पहुँच चुके थे, उन्होंने एक सुव्यवस्थित राजतंत्र का विकास किया था। प्रत्येक राज्य का शासक राजा होता था जिसका पद वंशपरम्परा के आधार पर चलता रहता था। राजा की सहायता के लिए मंत्रिपरिषद एवं कर्मचारी गण होते थे। राजा न केवल विद्वानों आदि का आदर करता था, उनके परामर्श से शासन करता था वरन् उसे प्रजा के हित के साथ-साथ उसके विचारों का भरपूर ख्याल करना पड़ता था। यदि इन राज्यों एवं राजाओं की उत्पत्ति की व्याख्या की जाय तो हम पाते हैं कि ये मौलिक रूप में आर्यों की विभिन्न प्रजातियों के सूचक है। इन प्रजातियों ने यत्र-तत्र बसकर विभिन्न समूहों एवं जनपदों का निर्माण किया एवं इनके नायक राजा कहलाए। रामायण में प्राप्त विवरणों से ज्ञात होता है कि इन जनपदों में वर्णाश्रम व्यवस्था स्थापित थी जिसके अन्तर्गत बौद्धिक (ब्राह्मण) एवं शासक (क्षत्रिय) वर्गों को विशेष अधिकार प्राप्त थे। कतिपय शासकों ने तो अपनी उत्पत्ति को देवताओं, चन्द्रमा, सूर्य आदि से सम्बन्धित कर रखी थी ताकि साधारण जनता का वे आदर प्राप्त कर सके। इन जनपदों में परस्पर संघर्ष भी होते रहते थे। प्रस्तुत अध्याय में

रामायण में वर्णित जनपदों के आधार पर तत्कालीनभारत के राजनैतिक तंत्र का परिचय देने का प्रयास किया गया है।

7·1 जनपद: एक राजनैतिक/प्रशासनिक इकाई-

रामायण में कई जनपदों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्र शब्द का भी यत्रतत्र उल्लेख प्राप्त होता है{वा0रा0 1·7·14-15}। रामायण के राष्ट्र तथा जनपद शब्द के प्रयोग पर ध्यान देने से इनसे सम्बन्धित निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं-

1- जनपद या राष्ट्रएक विस्तृत भू-भाग होता था।

2- प्रत्येक जनपद या राष्ट्र की सत्ता आर्यों की एक विशिष्ट प्रजाति केअधीन थी जिसके नायक को राजा कहते थे। जिसमें दैवी गुणों का समावेश माना जाता था।

3- प्रजाति का संगठन राजतंत्र पर आधारित होते हुए भी विभिन्न स्थलों पर प्रजातांत्रिक था जिसमें किसी भी वर्ग के व्यक्ति को अपनी बातें कहने का अधिकार था।

4- इन जनपदों में बौद्धिक वर्ग को कुछ विशिष्टअधिकार प्राप्त था यही कारण है कि ऋषि-महर्षि,तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हुए भी राज्य के कार्यों में अपने परामर्श एवं सुझाव दिया करते थे।

5- प्रत्येक जनपद अपने क्षेत्र में पाये जाने वाले संसाधनों से शक्ति प्राप्त करता था। इन संसाधनों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है।

1- प्राकृतिक संसाधन-

वन सम्पदा, खनिज, भूमि, जल आदि।

2- मानव संसाधन-

जनपद के निवासी उनका बौद्धिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास आदि।

इस प्रकार प्राचीनकालीन के जनपद रैटजल के राज्य (State) से मिलते जुलते हैं जिनमें प्रत्येक का एक निश्चित क्षेत्र, विस्तार एक मानव समुदाय एवं एक निजी विचारधारा होती थी।[1] अली[2] ने जनपद में एवं मानव समुदाय को एक दूसरे का समानार्थक मानते हुए यह कहा है कि विभिन्न जनपदों का नामकरण प्रायः समुदाय विशेष के नामों पर ही जाना जाता था। सक्सेना[3] ने जनपद की व्याख्या करते हुए बताया है कि "पद" एक क्षेत्र के अर्थ में प्रयोग किया जाता है जबकि "जन" का अर्थ लोग या समुदाय विशेष से ज्ञात होता है अतः जनपद का अर्थ हुआ एक ऐसा क्षेत्र जिसमें लोगों का एक समूह आन्तरिक या बाह्य शक्ति के कारण एक राजा के अधीन रहता हो। इस प्रकार जनपद एक राजनैतिक इकाई है जो राज्य (State) का समानार्थी है।

7.2 भारत का प्रादेशीकरण-

संस्कृत भाषा साहित्य में भारत को कई क्षेत्रों में विभक्त किया गया है जिसके लिए बहुधा "जनपद" या "राष्ट्र" शब्दों का प्रयोग हुआ है। प्राचीन भारत में जनपद और राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई के रूप में माने जाते थे।

वैदिक काल में पंजाब की सात नदियों के क्षेत्र को सप्तसिन्धु कहा जाता था[4] जिसकी पूर्वी सीमा दृषद्वती [चितांग] नदी बनाती थी। अथर्ववेद में भारत के क्षेत्रीय विभागों का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है जिसमें उसे पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर भागों में विभक्त किया गया है।[5] ऐतरेय ब्राह्मण में भारत को पाँच विभागों में बाँटा गया है। बाद में आर्यों के क्षेत्र विस्तार के साथ-साथ देश को कई भागों में विभक्त किया जाने लगा। उदाहरणार्थ आर्यावर्त, ब्रह्मवर्त, मध्य देश एवं दक्षिणी पथ आदि। लेकिन ये विभाग राजनीतिक इकाई न होकर केवल सांस्कृतिक क्षेत्र थे।

रामायणकाल में "जनपद" शब्द का प्रयोग एक राजनीति इकाई के रूप में किया गया है और देश को कई जनपदों में बाँटा गया है। वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से यह स्पष्टहोता है कि इन जनपदों की सीमाएं प्राय: प्राकृतिक थीं। नदियां, पर्वतों, सघनवनों एवं समुद्रों का उल्लेख मिलता है आज के राज्यों केविपरीत रामायणकाल में जनपदों की सीमाएं मानव -मानवकृत, मनुष्यों द्वारा निर्धारित नहीं होती थीं बल्कि दो जनपदों के बीच एक विस्तृत क्षेत्र रहता था जो घने जंगलों, सागरों एवं नदियों एवं पर्वतीय श्रृंखलाओं से युक्त रहता था- द्वारा प्रदान किया जाता था।

रामायण में भी वैदिक साहित्य की तरह भारत को मुख्यत: चार भागों में बाँटा गया है जिसकी चर्चा किष्किन्धा काण्ड में विस्तार से की गयी है [वा0रा0 4·40-43]। इसी प्रकार का दूसरा विभाजन उत्तरकाण्ड में भी मिलता है जबकि राम के राज्याभिषेक के बाद विभिन्न दिशाओं से ऋषियों का आगमन होता है [वा0रा0 7·1·2-6] इसी प्रकार के एक अन्य

प्रसंग भी पूर्व,उत्तर ,पश्चिम ,दक्षिण के राजाओं की चर्चा की गयी है[वा0रा0 2·2·25-26] तथा म्लेच्छ, आर्य,वनों और पर्वतों में निवास करने वाले विभिन्न जनजातियों के बारे में जानकारी दी गयी है[वा0रा02·3·25-26]। अन्यत्र भारत को पाँच विभागों में बाँटा गया है[वा0रा0 2·82·7-8]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर रामायणकालीन जनपदों को मुख्यत: चार क्षेत्रों में विभाजित किया गया है।

[अ] पूर्व दिशा के प्रमुख जनपद-

रामायण के अनुसार इस क्षेत्र की प0 सीमा सरस्वती एवं सिन्धु नदियाँ,दक्षिणी सीमा सोननदी एवं विन्ध्य गिरि,उत्तरी सीमा हिमालय पर्वत तथा पूर्वी सीमा किरात द्वीप बनाता था[4·40·सम्पूर्ण सर्ग]।इस क्षेत्र में गंगा, यमुना, सरयू,कौशिकी,सरस्वती,सोन,मही एवं कालमही के अपवाह क्षेत्र सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत बंग,मगध,अंग,विदेह,कोशल,काशी पुण्ड्र,ब्रह्ममाल,महाग्राम आदि जनपदों का उल्लेख मिलता है[चित्र 7·1]।

1· बंग-

बंग वर्तमान बंगला देश का नाम था जिसका उल्लेख ऐतरेय आरण्यक[6] में मिलता है जिसमें दोपड़ोसी "बंगमगधा:"[बंग एवं मगध का उल्लेख मिलता है। अली[7] ने इसे हुगली और पद्मा के बीच के डेल्टाई प्रदेश से समीकृत किया है। जायसवाल एवं तिवारी[8] ने इसे यमुना के पूर्वी भाग में स्थित मैमनसिंह और ढाका आदि के प्रदेश बताया है,जो ब्रह्मपुत्र एवं सुरमा नदियों के प्रवाह क्षेत्र

BHARAT VARSHA
MAJOR JANPADAS
(RAMAYAN PERIOD)
68°E
76°
84°
92°
100°E
36°N
N 36°
28°
20°
12°
4°N
72°E
80°
88°
96°E N4°
DARADA
GANDHAR
KEKAYA
MADRA
VAHLIK
PRASTHAL
MALLA
BHARATA
JANGAL
MALVA
KURU
MATSYA
PANCHAL
KUKSHI
SURSEN
SINDHU
KOSHAL
VIDEH
PUNDRA
KAMRUP
SOUVIR
VATSA
MALAD
KASHI
ANGA
KARUSH
MAGADHA
AVANTI
DASHARN
PULIND
BRAHMAMAL
VANGA
MAHISHAK
SUHMA
SAURASHTRA
MEKAL
KIRAT
CHANDRACHITRA
UTKAL
VIDARBHA
DANDKARANYA
KALING
ANDHRA
KISHKINDHA
CHOLA
KERALA
PANDYA
LANKA
100 0 100 300 500 Km

FIG 7 1

में स्थित है। पाण्डेय[9] ने भी जायसवाल एवं तिवारी के मत से मिलता जुलता मतव्यक्त किया है। रामायणकालीन विवरणों से जायसवाल एवं तिवारी के मत अधिक तर्क संगत प्रतीत होते हैं।

2- मगध-

मगध एक अल्प प्रसिद्ध वाली प्रजाति है जिसका उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है।[10] मगध प्रजाति से सम्बन्धित होने के कारण इस जनपद को मगध कहा गया है। इस जनपद की पश्चिमी सीमा सोन नदी, पूर्वी सीमा प्रायद्वीपीय भाग का मुकामा स्पर, दक्षिणी सीमा हजारी बाग की पहाड़ी तथा उत्तरी सीमा गंगा नदी बनाती थी।[11] रामायण एवं महाभारत में इस देश की राजधानी का नाम गिरिव्रज (राजगृह) बताया गया है। रामायण में गिरिव्रज का दूसरा नाम वसुमती भी कहा गयाहै (वा०रा० 1·13·8)। सुमागधी (सोन) नदी इसके चतुर्दिक घेरकर माला की भाँति प्रवाहित होती थी[12]। महाभारत काल में प्रसिद्ध राजा जरासंध इस जनपद का राजा था। रामायण काल के पश्चात मगध बौद्ध धर्म का केन्द्र बना। अशोक के समय मगध की राजधानी पाटलिपुत्र थी।

3- अंग-

अंग देश के राजा दशरथ के मित्र थे (वा०रा० 1·13·25)। रामायण काल में इस राज्य में भयंकर सूखा पड़ने का संकेत मिलता है (वा०रा० 1·9·7-9) ऋष्यश्रृंग के आने के बाद वर्षा हुई थी। रामायण में इसे सरयू एवं गंगा के बीच का भाग बताया गयाहै (वा०रा० 1·23·14)। अथर्ववेद[13] में इसका उल्लेख

गन्धारी, मूजवन्त और मागध नामक अलग-अलग जातियों के सम्बन्ध में किया गया है। अंग जाति से सम्बद्ध होने के कारण इस प्रदेश का नाम अंग पड़ा। इस जनपद की सीमा पूर्व में मेकामास्पर, प० में मदन गिरि पहाड़ी उत्तर में गंगा एवं द० में राजमहल पहाड़ी द्वारा निर्मित की जाती थी।[14]

गोपथ ब्राह्मण[15] में यह यौगिक नाम "अंगमागधा:" के रूप में आया है। अंग बौद्धकालीन षोडश जनपदों में से एक था। "दिग्ध" निकाय[16] के अनुसार यह भारत के सप्त प्रमुख राजनीतिक विभागों में से एक था।

4- विदेह-

वैदिक इण्डेक्स[17] के अनुसार विदेह आर्यों की एक प्रजाति का नाम है जिनका ब्राह्मण काल के पहले उल्लेख नहीं मिलता है। रामायण एवं महाभारत में इन्हें मिथिला कहा गयाहै।[18] यह हिमालय पर्वतमालाओं के दक्षिण एवं गंगानदी के उत्तर, कौशिकी [कोसी] के पश्चिम एवं गंडक के पूर्व का क्षेत्र है। जिससे आधुनिक विहार के मिथिला प्रदेश का बोध होता है जिसका विस्तार नेपाल तक पाया जाता है। रामायणकाल में विदेह एक समृद्ध राज्य था। इस युग में कोशल एवं विदेह राज्यों के बीच बड़ा घनिष्ठ एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का उल्लेख किया गया है [1·72·16]। रामायण में प्राप्त विवरण के अनुसारमहराज्य अयोध्या [कोशल की राजधानी] से चार दिन की यात्रा करने पर पड़ता था [वा०रा० 1·69·7]। रामायण काल में विदेह धन-धान्य से परिपूर्ण था। इस राज्य के राजा जनक थे जिन्हे "मिथि" भी कहा जाता था जिनके नाम पर इसका नाम मिथिलाभी पड़ा। नेपाल में स्थितजनकपुर रामायणकालीन विदेह की राजधानी थी। रामायण

के नायक श्री राम की धर्मपत्नी सीता विदेह के राजा जनक की पुत्री थी। बौद्ध युग में विदेह, संघ राज्य बन गया। कालिदास[19] के रघुवंश में भी इस जनपद का उल्लेख मिलता है।

5-कोशल-

वैदिक वाङ्मय के अनुसार "कोशल" आर्यों की एक प्रजाति का नाम था[20] जो सरयू नदी के आस पास निवास करती थी। इसी जाति के नाम पर इस जनपद का नाम कोशल पड़ा। रामायण में यह एक शक्तिशाली राज्य के रूप में चित्रित किया गया है। {वा0रा0 1·5-6 पूरे सर्ग} । इस राज्य के पश्चिम में कुरू-पांचाल एवं पूर्व में विदेह राज्य स्थित थे। गंडक इसे विदर्भ से पृथक स्यन्दिका नदी {सई} इसकी दक्षिणी सीमा बनाती थी {वा0रा0 1·2·49}/अयोध्या के पचासवे सर्ग में भी संक्षिप्त रूप से कोशल के बारे में जानकारी दी गयी है{वा0रा0 2·50·8-10}। रामायण के नायक श्री राम और उनके पिता दशरथ इस जनपद के राजा थे ।

6- काशी-

काशी के राजा, दशरथ के मित्र थे{वा0रा0 1·13·23}। वैदिक वाङ्मय में "काशी" नाम काशि प्रजाति का द्योतक है।[21] सम्भवतः काश्य राजा से सम्बद्ध होने के कारण इस देश का का नाम काशी पड़ा ।शतपथ ब्राह्मण[22] में काशी के राजा धृतराष्ट्र औरउपनिषदों[23] में काशि के राजा के रूप में अजातशत्रु का उल्लेख मिलता है।[24] शतपथ ब्राहमण के अनुसार काशी राज्य गंगा एवं गोमती नदियों के

बीच स्थित था। रामायण काल में इसकी राजधानी वाराणसी थी। इस राज्य में गंगा-गोमती द्वाब का दक्षिणी भाग और मिर्जापुर पठार का उत्तरी भाग सम्मिलित था। इस जनपद की राजधानी वाराणसी देश के प्राचीनतम नगरों में से एक है जो शिव उपासना का एक प्रसिद्ध केन्द्र है प्राप्त विवरणों से ज्ञात होता है कि वाराणसी के नाम में कालिक परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन हुए हैं।

7- पुण्ड्र-

वैदिक वाङ्मय में इसका उल्लेख नहीं मिलता है। रामायण में इस जनपद के बारे में विवरण किष्किन्धाकाण्ड (वा०रा० 4·40·22-23) में मिलता है। इसके अन्तर्गत बंगला देश के रागपुर, राजशाही और बोगरा जिले सम्मिलित किये जाते हैं एवं गंगा जमुना (ब्रह्मपुत्र) के द्वाब के क्षेत्र में फैला हुआ है। महाभारत में बंग, किरात एवं पुण्ड्र जनपद का राजा था।[25]।

8- मालव (4·40-22)-

ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी में मालव नामक प्रजाति रावी नदी के दक्षिणी किनारे पर निवास करती थी जो आज के राजस्थान की "माल्याविआ" है। महाभारत में मालव को मालवा जनपद का निवासी बताया गया है।[26] ग्रीक लेखकों ने इसे मलोई नाम दिया है। रामायणकाल में मालवा सतलज के दक्षिण पूर्व में स्थित था जिसके बीच से सरस्वती नदी प्रवाहित होती थी।

9- ब्रह्ममाल-

यह नाम ब्रह्ममोत्रा जनपद के लिए प्रयोग किया गया है।[27] रामायण काल में यह छोटा नागपुर पठार के पूर्वी भाग और पश्चिमी बंगालके पश्चिमी भाग पर फैला था। वामन पुराण के अनुसार माल ताम्रलिप्त एवं मगध के बीच स्थित था।[28]

10-महाग्राम-

इस जनपद की स्थितिरामायण में सुस्पष्ट नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जनपद महानदी घाटी क्षेत्र में स्थित था। कुछ टिप्पणियों में इसे जनपद न मानकर केवल जनपदों के नगरों का संकेत माना गया है (वा०रा० 4·40-22 गीताप्रेस संस्करण)।

11,12- मलद एवं करूष-

रामायण के अनुसार यह जनपद गंगा एवं सरयू के संगम क्षेत्र पर फैला हुआ था(वा०रा० 1·24·6) इसे इन्द्र द्वारा वरदानप्राप्त होने का उल्लेख मिलता है जिसके कारण यह क्षेत्र समृद्धिशाली था किन्तु ताड़का नाम राक्षसी के कारण यह भाग भयानक हो गया था(वा०रा० 1·24·20-21)।यह पश्चिमी बंगाल के मलदशहर के चारों ओर का भाग है जिसेमहाभारत में भी मलद नाम से जाना जाता था[29]। इसी प्रकार करूष दक्षिण पूर्व में स्थित बघेल खण्ड को कहते थे।

13- वत्सदेश-

गंगा के तट पर वत्स देश स्थित था जो राम के वनगमन के समय रास्ते में पड़ता था। यह सुन्दर धन-धान्य से सम्पन्नथा (वा०रा० 2·52·101) इससे निचले गंगा-यमुना द्वाब का बोध होता है जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी। बौद्धकाल में यहाँ का राजा उदयन थाएवं यह सोलहजनपदों में था।[30]

14- मत्स्य-

यह राज्य राजा दशरथ के प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत था (वा०रा० 2·10 36-37) । इससे भरतपुर एवं जयपुर के आस-पास के क्षेत्र का बोध होता है।[31] ऋग्वेद में भी इसकी चर्चा मिलती है।[32]

15- सुह्म-

वैदिक वाङ्मय में सुह्म देश का संकेत नहीं है इससे अंग एवं कलिंग के मध्यवर्ती क्षेत्र का बोध होता है जिसके अन्तर्गत पश्चिम बंगाल के ताम्रलिप एवं मिदिनापुर जिले का क्षेत्र सम्मिलित है।

ब- पश्चिम दिशा के प्रमुख जनपद-

इसकी पूर्वी सीमा सरस्वती नदी एवं दक्षिणी-पश्चिमी सीमा विन्ध्य गिरि एवं पश्चिमी समुद्र (अरब सागर) बनाते थे। बाह्लीक देश इसकी पश्चिमी सीमा पर स्थित था। इसके अन्तर्गत मुख्यतः सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, बाह्लीक, कुशि, पांचाल, कुरुजांगल आदि जनपद सम्मिलित हैं।

1- सिन्धु-

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में सिन्धु नदी के निकट का क्षेत्र बताया गया है।[33] सिन्धु नदी के नाम पर इसे सिन्धु कहा गया है यह क्षेत्रभी कोशल के राजा दशरथ के प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत आता था(वा0रा0 2·10·36-37)। रामायण में यह क्षेत्र उत्तम किस्म के घोड़ों के लिए प्रसिद्ध माना गयाहै।[34] राजा दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ के समय इस देश के राजा को आमंत्रित किया था(बा0रा0 1·13·27)। डॉ0 वासुदेव शरण[35] अग्रवाल इसे द्वावा का प्रदेश मानते हैं जबकि डॉ0 बेचन दूबे[36] इसे सिन्धु सरार द्वाव का क्षेत्र माना है जो अधिक तर्क संगत लगता है।

2- सौवीर-

रामायण में सौवीर राष्ट्र का उल्लेख बालकाण्डमें राजा दशरथ के अश्वमेध यज्ञ के समय किया गया है(वा0रा0 1·13·27)। इससे निचले सिन्ध क्षेत्र का बोध होता है जो अब पाकिस्तान में स्थित है। कुछ विद्वान जहाँ इसका विस्तार मुल्तान एवं झालवाड़ क्षेत्रों पर मानते हैं वहीं कनिंघम के मतानुसार इसके अन्तर्गत खम्भात की खाड़ी के ऊपर का समस्त क्षेत्र सम्मिलित था।[37] भागवत पुराण में सिन्धु एवं सौवीर शब्द प्रायः एक साथ ही प्रयोग किये जाते रहे हैं।[38]

3- सौराष्ट्र या सुराष्ट्र-

वैदिक साहित्य में इस नाम का कोई जनपद नहीं है।[39] रामायण

में इसे सुराष्ट्र कहा गया है (वा0रा0 4·42·6)। राजा दशरथ सुराष्ट्र के राजा को अपने अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर आमंत्रित करते हैं। पद्मपुराण के अनुसार सौराष्ट्र गुजरात के अन्तर्गत स्थित था।[40] यहाँ के हाथी अंग एवं कलिंग देशों की तुलना में कम अच्छे किस्म के थे।[41] इससे कच्छ एवं काठियावाड़ क्षेत्र का बोध होता है जिसका उल्लेख स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ शिलालेख में किया गया है।[42]

4- वाह्लीक-

यह रामायण के किष्किन्धा काण्ड में संदर्भित है (वा0रा04·42·6)। रामायण के उत्तरकाण्ड में ऐल जाति के कर्दम या कर्दमेय वंशजों का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि उनसे सम्बद्ध बताये गये हैं। वाह्लीक जनपद अफगानिस्तान के बल्ख नगर के समीपवर्ती क्षेत्र का बोध होता है। यह यूनानियों का बैक्ट्रिया है[43] किन्तु रामायण के विवरण के अनुसार इस जनपद की स्थिति केकय जनपद से पूर्व ही है क्योंकि भरत को बुलाने के लिए केकय जनपद को जाने वाले दूतों के मार्ग में यह जनपद पड़ता है(वा0रा0 2·68·18) जायसवाल एवं तिवारी [44] ने इस जनपद की स्थिति पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रदेश में माना है किन्तु रामायण के विवरण के आधार पर यह जनपद ऊपरी सतलज एवं रावी नदियों के मध्य का भू-भाग था। इस जनपद का कुछ भाग वर्तमान भारत में भी पड़ता था। चन्द्रगुप्त के मेहरौली शिलालेख में भी इसका उल्लेख मिलता है।[45]

5- कुक्षि-

रामायण में इसके वर्णन से स्पष्ट होता है कि यह एक रेगिस्तानी प्रदेश था। इसकी रचना राम के बाण के द्वारा हुई थी। पहले समुद्र का कुक्षि प्रदेश था। राम ने इसे सुखाकर मरुभूमि बना दिया था। यहाँ पशुपालन के लिए उपयुक्त स्थान था(6·22·35-43)। इस प्रकार इस क्षेत्र से थार के मरुस्थली क्षेत्र का बोध होता है। वैद्य ने भी इस प्रदेश को थार मरुस्थल से समीकृत किया है।[46]

6- चन्द्रचित्र-

इसका उल्लेख रामायण में केवल एक बार हुआ है [वा0रा0 4·42·6]। यह उत्तरी महाराष्ट्र का भाग है।[47]

7- केकय-

सिन्धु एवं वितस्ता नदियों के बीच रहने वाली आर्यों की प्रजाति को केकय कहा जाता था।[48] शतपथ ब्राह्मण में अश्वपति केकय के द्वारा अपरोक्ष रूप से केकय का उल्लेख किया गया है।[49] केकय लोगों के नाम पर इस जनपद का नाम केकय पड़ा। डॉ0 बी0एस0 अग्रवाल ने झेलम एवं चिनाब के बीच स्थित शाहपुर एवं झेलम जिले एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्र को केकय जनपद माना है।[50] इसी प्रकार शान्तिकुमार नानूराम व्यास तथा नवीन चन्द्र दास ने केकय जनपद को सतलज एवं व्यास के मध्यवर्ती क्षेत्र पर स्थित माना है।[51] किन्तु रामायण के विवरण के आधार पर केकय जनपद का मुख्य क्षेत्र चिनाब एवं झेलम नदियों का मध्यवर्ती क्षेत्र था। रामायण में इस जनपद का प्रमुख धन्धा पशुपालन बताया गया है यहां अश्वों का पालन भी किया जाता था [वा0रा0 2·70 सम्पूर्ण सर्ग]। केकय की राजधानी गिरिव्रज बतायी गयी है [वा0रा0 2·70·1] जो पूर्णतया सुरक्षित थी।

8- पाञ्चाल-

भरत को बुलाने के लिए अयोध्या से केकय जाते हुए दूतों के मार्ग में पाञ्चाल देश पड़ता है [वा0रा0 2·67·13]। पाञ्चालों से सम्बद्ध होने के कारण इसका नाम पाञ्चाल पड़ा। वर्तमान रूहेलखण्ड अर्थात बरेली, बदायूँ, फर्रुखाबाद तथा समीपवर्ती क्षेत्र इस जनपदमें सम्मिलित थे। इस जनपदके पूरब में गोमती एवं

पश्चिम में गंगा नदी स्थित थी। इस प्रकार पान्चाल जनपद उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में चम्बल नदी तक फैला हुआ था।[52] रामायणकाल में यहां के राजा एवं राजधानी का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता है।

9- कुरु जांगल -

इस प्रदेश का भी वर्णन भरत को बुलाने के लिए भेजे गये दूतों के सन्दर्भ में किया गया है। वैदिक साहित्य में कुरु पांचालों का साथ-साथ वर्णन मिलता है जहां कुरुपांचालों का प्रायः स्पष्ट रूप से एक राष्ट्र के रूप में उल्लेख किया गया है। इससे ऊपरी गंगा घाटी में स्थित गंगा के पश्चिम स्थित भू-भाग का बोध होता है जिसे प्राचीनकाल में तीन भागों में विभक्त कियाजाता था।

1· कुरु क्षेत्र-

इस क्षेत्र में जमुना के पश्चिम का प्रदेश विशेषकर सरस्वती एवं दृषद्वती के मध्य की उपजाऊ भूमि सम्मिलित थी। वामनपुराण में इसे एक पवित्र क्षेत्र के रूप में चित्रित किया गया है।[53]

2· कुरु देश -

यह दिल्ली का पृष्ठ भाग है जिसमें गंगा यमुना का मध्यवर्ती भू-भाग सम्मिलित था।

3· कुरुजांगल-

यह समस्त प्रदेश जो गंगा एवं उत्तर पांचाल के बीच काम्यक प्रदेश तक फैला था।[54]

(स) उत्तर दिशा के प्रमुख जनपद-

इसमें विन्ध्य प्रदेश के उत्तर स्थित कुछ क्षेत्रों विशेषकर पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में स्थित जनपदों का उल्लेख मिलता है जिनमें मद्र, गान्धार, कम्बोज आदि प्रमुख है।

1- शूरसेन-

रामायण में शूरसेन जनपद का सीता की खोज में उत्तर की ओर जाने वाले वानरों के सन्दर्भ में उल्लेख किया गया है (वा0रा0 4-43·11)। इसका वर्णन उत्तरकाण्ड में भी लवणासुर के राज्य के रूप में हुआ है जिसका वध शत्रुघ्न द्वारा होता है मधुपुरी (मथुरा) लवणासुर की राजधानी थी (वा0रा0 4·7·61-63)। मथुरा के चतुर्दिक फैला क्षेत्र जो महाभारत काल में ब्रजमण्डल के नाम से विख्यात था प्राचीन शूरसेन था।[55] पाण्डेय के अनुसार इसकी राजधानी आधुनिक मथुरा से भिन्न था इससे पाँच मील दक्षिण पश्चिम में स्थित इस समय का महरौली नगर है। ग्रीक इसको शूरसेनाई एवं उसकी राजधानी को मेथोरा कहते थे।[56] शूरसेन शत्रुघ्न के पुत्र थे जिनके नाम पर इस जनपद का नाम शूरसेन पड़ा था।

2- दरद-

यह वर्तमान गिलगिट का दर्दिस्तान क्षेत्र है। जायसवाल एवं तिवारी ने भी इसे गिलगित एवं हुन्जा के पहाड़ी क्षेत्र से समीकृत किया है।[57]

3- आरट्ट (वा0रा0 4·82·12)-

महाभारत के अनुसार यह पंचनद[58] के चतुर्दिक फैला है।*

4- मद्र (वा0रा0 4·43·11)-

माद्रेय इस जनपद के निवासी थे जिनके नाम पर इसका नाम मद्र पड़ा। अली के अनुसार मद्र चिनाब और रावी के बीच में निवास करते थे[59] इस देश की राजधानी स्यालकोट थी।

5- पुलिंद (वा0रा0 4·43·11)-

यह साल्व जनपद का एक भाग था यह विन्ध्य क्षेत्र के पहाड़ी एवं जंगली क्षेत्रों निवास करने वाली पुलिन्द जातियों का क्षेत्र था। इस जनपद की राजधानी पुलिन्द नगर थी।[60]

6- भरत (वा0रा0 4·43·11)=

यह जनपद हिन्दुओं की दो मुख्य पवित्र नदियों सरस्वती एवं दृषद्वती के बीच स्थित भाग था।

7- प्रस्थल (वा0रा0 4·43·11)-

इसका उल्लेख बृहत्संहिता में भी है।[61] पाण्डेय इसे पटियाला के समीपवर्ती क्षेत्र में स्थित मानते हैं।[62]

---

* इसमें सतलज, व्यास, रावी, चिनाब, झेलम एवं सिन्धु नदियां आती हैं।

जबकि जायसवाल एवं तिवारी ने इसे सिन्धु के डेल्टा प्रदेश में स्थित ब्रहमाणह बाद से समीकृत किया है। जिसकी राजधानी पाटाला थी।[63] सिकन्दर महान के आक्रमण के समय इस जनपद के लोगों ने उसकी सेनाओं को अधिक परेशानी में डाल दिया था। दूबे [64] ने अपने मानचित्र में इसे पाण्डय से मिलते- जुलते क्षेत्र में चित्रित किया है। लेखक के विचार में यह शतद्रु एवं सरस्वती के बीच के भूभाग पर विस्तृत था।

इस क्षेत्रके अन्य जनपदों की चर्चा चतुर्थ अध्याय में की गयी है क्योंकि ये जनपद भारतीय उपमहाद्वीप की सीमा से बाहर स्थित थे।

(द) दक्षिण दिशा के प्रमुख जनपद-

इसके अन्तर्गत विन्ध्य पर्वतमाला के दक्षिण का वह समस्त क्षेत्र सम्मिलित किया जा सकता है जिसकी उत्तरी सीमा चित्रकूट पर्वत श्रेणी एवं वंग जनपद बनाते थे एवं जो पूर्व एवं पश्चिम समुद्रों से घिरा था। इस क्षेत्र में नर्मदा, गोदावरी कृष्णवेणी,वरदा नदियों का उल्लेख मिलता है। इस क्षेत्र के जनपदों का उल्लेख मिलता है। इस क्षेत्र के जनपदों का उल्लेख वानरराज सुग्रीवने सीता की खोज हेतु दक्षिण दिशा में वानरसेना को भेजते हुए कियाहै। इनमें मेखल, (मेकल), उत्कल, दशार्ण अवन्ती विदर्भ, महिषक, कलिंग इत्यादि प्रमुख हैं। इसी पठारी एवं वनाच्छादित प्रदेश में जनस्थान एवं किष्किन्धा आदि के क्षेत्र भी स्थित थे जो रामायण काल में गैर आर्य जातियों के प्रमुख गढ़ थे।

1- मेखल (मेकल)-

यह जनपद मेकल जाति से सम्बन्धित माना गयाहै जो मेकल पठार

पर रहती थी।[65] इसके विपरीत अली साहब ने इसके अन्तर्गत ब्राह्मणी एवं महानदी घाटी प्रदेश के दक्षिणी पूर्वी भू-भाग को सम्मिलित किया है। सतपुड़ा एवं विन्ध्य श्रेणियों का मिलन बिन्दु जो मैकाल के नाम से जाना जाता है इस जनपद के नाम पर ही दिया गया है। रामायणकाल में यह जनपद रीवां से खैरागढ़ क्षेत्र तक विस्तृत था जहां से नर्मदा एवं सोन आदि नदियां निकलती थीं।

2- उत्कल-

नरसिंह प्रथम के भुवनेश्वर शिलालेख के अनुसार उत्कल पुरी और भुवनेश्वर के सम्मिलित प्रदेश को कहते थे।[66] बृहत्संहिता के अनुसार आधुनिक उड़ीसा प्रान्त ही प्राचीन उत्कल है।[67] इस क्षेत्र से वैतरणी, ब्राह्मणी एवं महानदी प्रवाहित होती है। इसे औण्ड्र नाम से जाना जाता था। उत्कल क्षेत्र पवित्र स्थलों में माना गया है।

3- दशार्ण-

आधुनिक धसान नदी की ऊपरी एवं मध्यवर्ती घाटी में दशार्ण जनपद का फैलाव था। महाभारत में इस जनपद का नाम भीम के पूर्वी देशों के विजय के समय एवं नकुल के पश्चिम देशों के दिग्विजय के समय आया है।[68] यह जनपद बुंदेलखण्ड क्षेत्र पर फैला था जिसकी राजधानी विदिशा (भिल्सा) थी।

4-अवन्ती-

ब्रह्माण्ड पुराण[69] के अनुसार इसे अवन्तिका कहते हैं। इसे पश्चिमी मालवा पठार से समीकृत किया जाता है। अनर्घ राघव[70] एवं अंगुत्तर निकाय[71]

भी इस जनपद का उल्लेख करते हैं। छठवीं शताब्दी में अवन्ती मालवा के नाम से जानी जाती थीं जिसके अन्तर्गत शिप्रा, काली सिन्ध एवं ऊपरी चम्बल के जल प्रवाह क्षेत्र सम्मिलित थे। इसकी राजधानी उज्जैनी थी जिसका कालिदास के मेघदूतम् में भव्य वर्णन मिलता है। उत्तरी भारत से पश्चिमी सागर तट तक के मुख्य मार्ग पर स्थित होने के कारण इस नगर का विशेष महत्व था। रामायण काल में इसे अवन्तिपुरी कहा जाता था।

5- विदर्भ-

विदर्भ से अभिप्राय वर्तमान बरार से है। इस जनपद की स्थिति सतपुड़ा पहाड़ियों के दक्षिण पेनगंगा घाटी क्षेत्र तक थी। प्रो० अली[72] के अनुसार विदर्भ प्रजाति के लोग वर्धा नदी के घाटी क्षेत्र में निवास करते थे जिसके नाम पर इस जनपद का नामकरण किया गया था। विदर्भ का उल्लेख ऋग्वेद में भी उपलब्ध होता है भागवत पुराण[73] के अनुसार राजा ज्यामघ के पुत्र विदर्भ के नाम पर इस जनपद का नाम विदर्भ पड़ा। मत्स्य पुराण में भी इस जनपद का उल्लेख मिलता है।

6- ऋषिक-

यह ऋषिक जनपद है जो मध्य प्रदेश के खान देश के चारो ओर फैला है।

7- माहिषक-

यह नर्मदा नदी के किनारे स्थित जनपद है।[74] बाल्मीकि रामायण के वर्णन के अनुसार यही उपयुक्त है जबकि पाण्डेय[75] एवं अली ने इसे कर्नाटक के

वर्तमान बेलारी, चित्तल दुर्ग एवं सिमोगा जिलों से समीकृत किया है। रामायण काल में इसकी राजधानी महिष्मती पुरी थी और इसके राजा सहस्त्रबाहु थे। जिससे रावण का युद्ध हुआ था एवं जिससे पराजित होकर वह मित्र बन गया था। यह क्षेत्र आज नर्मदा के किनारे स्थित माहेसर का द्योतक है।

8-कलिंग-

यह जनपद महानदी के डेल्टा से लेकर, गोदावरी डेल्टा तक पूर्वी समुद्र तटीय मैदान पर फैला था इस क्षेत्र पर कलिंग प्रजाति के लोग निवास करते थे कुम्भकार जातक[76] के अनुसार यहां करण्ड राजा का शासन था जो राजा निमि के समकालीन थे जिनसे विदेह राज्य की स्थापना हुई थी।

9- अश्ववन्ती-

अश्ववन्ती से आशय गोदावरी के घाटी क्षेत्र में स्थित अश्मक जनपद से है जिसकी राजधानी पैथन या प्रतिष्ठान थी।

10-आन्ध्र-

प्राचीन जनपद गोदावरी एवं कृष्णा नदियों के डेल्टाओं के बीच स्थित था। यह प्राचीन जनपद है जिसका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण[77] में मिलता है। इसमें आर्यों का आन्ध्र प्रजाति के लोग निवास करते थे जो महर्षि विश्वामित्र के विद्रोही पुत्र थे एवं जिन्हें ऋषि ने देश निकाला कर दिया था। महाभारत में सहदेव इस जनपद को जीतते है[78] ईशा पश्चात तीसरी शताब्दी में आन्ध्र एक

शक्तिशाली राज्य था जिस पर शतवाहनों का अधिकार था।

11- चोल-

चोल जाति से सम्बद्ध होने के कारण इस जनपद को चोल कहा गया। इसका संकेत वैदिक साहित्य में नहीं मिलता है। यह तंजोर और त्रिचनापल्ली जिलों तथा पुदुक्कोटा रियासत के कुछ भाग पर फैला हुआ था। इसका मुख्य क्षेत्र करूर सहित कावेरी का क्षेत्र था। उरगपुरी इसकी प्राचीन राजधानी थी जिसे अब त्रिचनापल्ली कहते हैं। रामायण में इस क्षेत्र का उल्लेख सुग्रीव द्वारा दक्षिण दिशा में वानर सेना के प्रस्थान के समय किया गया है।

12- पाण्ड्य-

वाल्मीकि रामायण में पाण्ड्य वंशियों का उल्लेख है[वा0रा04·41·19] महाकाव्य में प्राप्त विवरण के अनुसार इस जनपद के बाद समुद्र का क्षेत्र शुरू हो जाता है। अतः यह क्षेत्र धुर दक्षिण का क्षेत्र था। वर्तमान में यह मदुरा, तिन्नवेली, जिले एवं रामनद और त्रावणकोर, कोचीन राज्यों का दक्षिणी भाग था जिससे होकर ताम्रपर्णी एवं कृतमाला नदियां प्रवाहित होती थीं।

13- केरल-

यह वर्तमान केरल राज्य है भारतीय प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर धुर दक्षिण तक फैला है। इसकी राजधानी वंजी थी जो पेरियार नदी के मुहाने पर स्थित थी।

7·3 रामायण काल में राष्ट्रीय सहअस्तित्व-

आर्यों की जन्म भूमि मध्य एशिया थी जहां से ये आकरसर्वप्रथम सिन्धु के मैदान में बस गये। उन दिनों देश के शेषभाग पर द्रविणों का अधिकार था तथा एक बड़ा भाग जनविहीन जंगलों के रूप में था। आर्य लोग पशुपालक थे। अतः पशुपालन की दृष्टि से उन्हें पंचनद में उपयुक्त परिस्थितियां प्राप्त हुई। यहां से वे धीरे-धीरे पूर्व की ओर गंगा-यमुना मैदान के ओर बढ़ना प्रारम्भ किये। इस प्रयास में उन्हे अनार्यों से कड़ा संघर्ष करना पड़ा जो या तो पराजित होकर विन्ध्य पर्वत के दक्षिणी क्षेत्र में शरण ले लिये अथवा आर्यों की अधीनता स्वीकार कर आर्य-समाज में सेवकों एवं भृत्यों का दर्जा प्राप्त किया। इस समय तक आर्यों के दो प्रमुख समूह कुरु एवं पांचाल नाम से प्रसिद्ध थे। आर्यों के पूर्व की ओर प्रसार, जिसके लिए उन्होंने बहुधा नदी मार्गों का उपयोग किया- के साथ-साथ धीरे-धीरे कोशल, काशी, वत्स, मगध, विदेह, अंग आदि जनपदों की स्थापना होती गयी जो आर्यों की विभिन्न प्रजातियों के द्योतक थे। इस प्रकार रामायण की रचना के पूर्व तक विन्ध्य पर्वत के उत्तर का समस्त क्षेत्र आर्यों के अधीन हो चुका था। चूंकि लम्बे काल तक मैदानी क्षेत्र की सुख सुविधाओं को प्राप्त आध्यात्मिक जीवन एवं आपसी टकराव के कारण दक्षिण विस्तृत अनार्य क्षेत्र पर विजय प्राप्त करना आसान नहीं था अतएव उन्होने शांतिपूर्वक शांतिपूर्ण कूटनीतिक आधार पर इस क्षेत्र में अपनी घुसपैठ बढ़ायी। यह कार्य आर्य ऋषियों एवं मनीषियों द्वारा मिशनारियों के रूप में सम्पादित किया जा रहा था। विन्ध्य क्षेत्र को पारकर

अनार्य बहुल क्षेत्र में उत्तर से प्रवेश करने वाले महर्षि अगस्त्य पहले ऋषि थे जिन्हें दक्षिण दिशा को जीतने वाला कहा जाता है। विश्वामित्र, वाल्मीकि, अत्रि, सुतीक्ष्ण, मतंग , भृगु, परशुराम प्रभृति अन्य ऋषि थे जिन्होंने अपने अनेक आश्रम इन क्षेत्रों में बनाये जहां न केवल अध्यात्म आदि गहन विषयों पर चिन्तन मनन होता था, यज्ञ होता था, वरन् अनार्य जातियों से सम्पर्क कर उन्हें आर्य समाज के अन्तर्गत लाने का सुनियोजित प्रयास भी किया जाता था। अनार्यों के साथ सहिष्णुता एवं सद्भाव प्रदर्शित करने के लिए इस काल तक आर्यों के अपने सामाजिक, सांस्कृतिक रीति रिवाजों में भी काफी परिवर्तन आ गये थे एवं बहुत सी अनार्यों की परम्पराएं आर्य समाज ने स्वीकार कर ली थी। उत्तरी भारत के कतिपय अनार्य राजाओं को तो आर्यों के समान ही आदर प्राप्त था। चूंकि दक्षिण के कतिपय अनार्य राजाओं को अपने संस्कृति में आर्यों की यह घुसपैठ एवं दखलंदाजी सह्य नहीं थी। अतएव उन्होंने इन आश्रम केन्द्रों को क्षति पहुंचानी एवं ऋषियों को उत्पीड़ित करने का प्रयास किया। लंका का राजा रावण ,जो उन दिनों अनार्यों का एक शक्तिशाली राजा था, इस कार्य में सबसे अग्रणी रहा। इस प्रकार राम रावण संघर्ष व्यक्तिगत संघर्ष न होकर आर्यों- अनार्यों का संघर्ष था जिसे सुनियोजित ढंग से चलाया गया था।

वैदिक एवं उत्तर वैदिक कालों में कभी भी भारत एक शक्तिशाली राजा के अधीन नहीं रहा है। इसमें छोटे-छोटे अनेक राज्य थे जिनके बीच में आपसी टकराव एवं शक्ति परीक्षण होता था। उत्तरी भारत के आर्य जनपदभी इस अभिशाप से मुक्त नहीं थे।

रामायण काल में राजा दशरथ को एक चक्रवर्ती राजा का दर्जा प्राप्त था+ किन्तु उनके प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले राज्यों में केवल उत्तरी भारत {आर्यावर्त} के ही जनपद शामिल किये जाते थे= या यों कहा जा सकता है कि कोशल एक बलशाली राष्ट्र तो था लेकिन सम्पूर्ण भारत पर उसका वर्चस्व नहीं था। रामायण काल में दक्षिण भारत में भी कोई ऐसा शक्तिशाली राजा नहीं था जो कि सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में पिरोकरएक शासन के अन्तर्गत ला सकता । वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्डमें रावण के दिग्विजय की चर्चा है किन्तु यह भी यह सीमित क्षेत्र पर ही थी जिसमें कई जगह उसे हारना भी पड़ा था इसमें सहस्त्रबाहु {वा0रा0 7·32 एवं 33 सम्पूर्ण सर्ग} और बालि {वा0रा0 4·39 सम्पूर्णसर्ग} मुख्य थे। रावण के दिग्विजय में देवलोक {हिमालय के पर्वतीय भाग} मर्त्यलोक{वृहत्तरभारत } एवं {पाताललोक } समुद्री भाग के द्वीप समूह} की चर्चा की गयी है किन्तु रावण ने इन क्षेत्रों पर विजय भले ही प्राप्त की हो इन्हें एक शासन के अन्तर्गत नहीबाँध सका।

राम ने अपने वनवास के दौरान उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के बीच एक मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होनें न केवल किष्किन्धा एवं लंका के शासकों का हनन कर जो आर्य संस्कृति के प्रसार में सबसे बड़े बाधक थे, आर्य संस्कृति के प्रसार में सहयोग दिया बल्कि इन राज्यों को यथोचित उत्तराधिकारियों को प्रदान कर एवं उनके साथ मित्रवद सम्बन्ध स्थापित कर समूचे भारत को एकता के सूत्र में आबद्ध कर दिया। वनवास से लेकर समूचे राज्य

BHARAT VARSHA
INFLUENCE ZONE OF
KOSAL KINGDOM
PUSHKALAVATI
TAKASHSHILA
GIRIBRAJ
MADHUPURI
AYODHYA
MITHILA
PANCHVATI
KISHKINDHAPURI
LANKA
VEDIC PERIOD
LATER VEDIC PERIOD
RAMAYAN PERIOD
100 0 100 300 500 Km
68°E
76°
84°
92°
100°E
36°N
N36°
28°
28°
20°
20°
12°
4°N
72°E
80°
88°
96°E
N4°
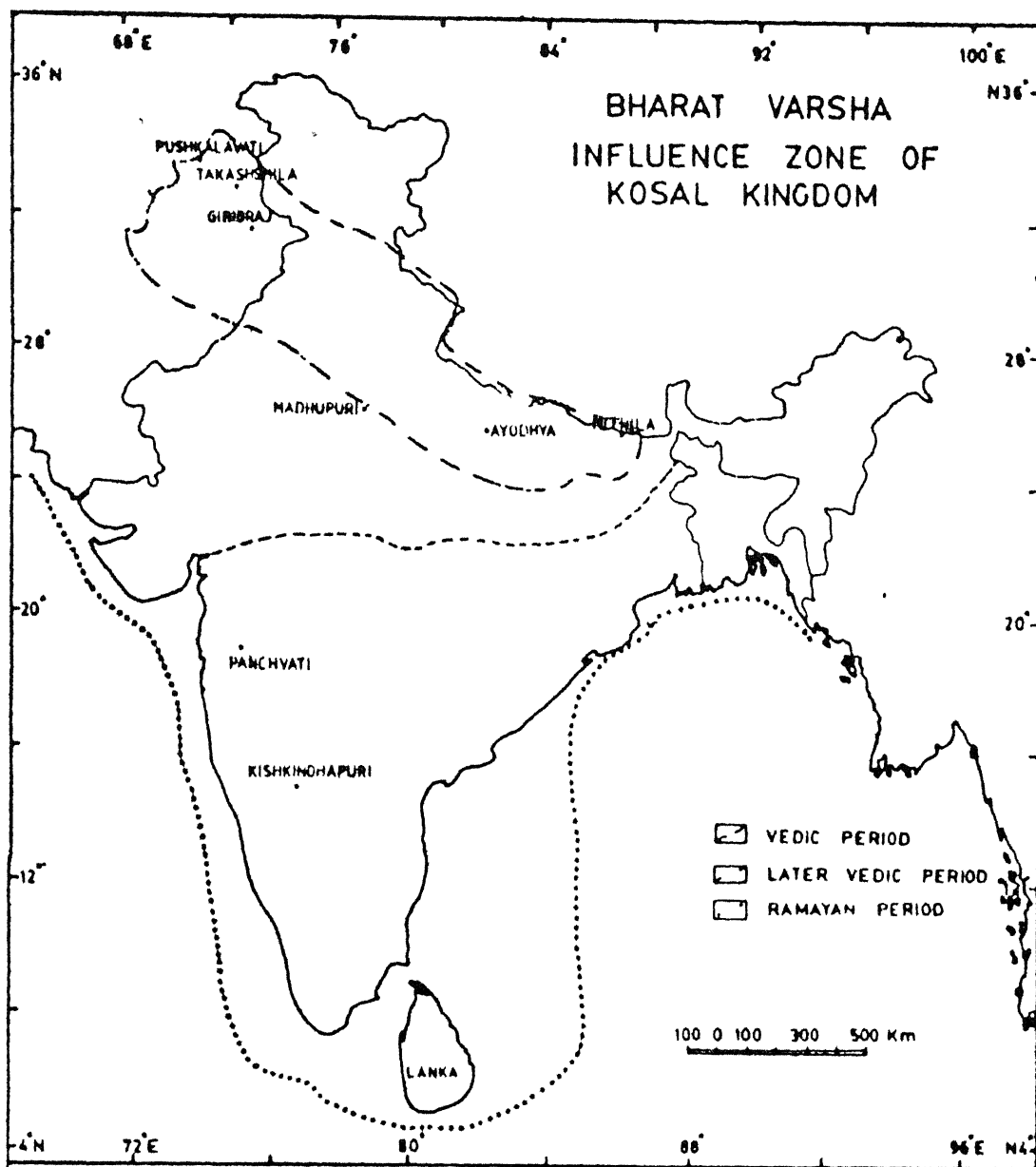
FIG 7.2

काल तक राम का यही प्रयास रहा है यही कारण है कि उन्हे निषादों के राजा गुह अथवा गृद्धों के राजा जटायु से मित्रता का हाथ बढ़ाने में कोई संकोच नहीं हुआ। वास्तव में पराजित शत्रु के प्रति दया एवं समता का व्यवहार, समाज के निर्बल एवं कमजोर वर्ग के लोगों के प्रति स्नेह, सहिष्णुता आदि गुण थे(चित्र 7.2) जिसके कारण सम्पूर्ण भारत एक शासन के अन्तर्गत आ सका।

{ग} राष्ट्रीय एकता के प्रमुख सूत्र-

1- प्रशासनिक सूत्र -

राम वनवास काल में अयोध्या से लंका की ओर गये और वहां के राजा रावण को मारकर उसके अनुज विभीषण का राज्याभिषेक किया जो राम का भक्त था। इसी प्रकार बालि को मारकर एवं सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाकर उन्होंने दक्षिण भारत के तत्कालीन दो बड़े जनपदों- जिनके अन्तर्गत सम्पूर्ण दक्षिणी भारत था- अपने प्रभाव के अन्तर्गत कर लिया जिससे आर्यों की संस्कृति का प्रसार अबाधगति से इस क्षेत्र पर होने लगा। इसीप्रकार शत्रुघ्न से लवणासुर का बध कराकर एवं उसके राज्य को शत्रुघ्न को प्रदान कर उन्होंने अपनी सीमा पश्चिमी सागर{अरब सागर} तटीय सीमा भी सुरक्षित कर ली थी। उत्तर पश्चिम में गान्धार, गन्धर्व, कारूपथ, मल्लदेश को जीतकर उन्होंने लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु एवं अंगद तथा भरत के पुत्रों को समर्पित किया। अपने पुत्रों लव और कुश को उन्होंने क्रमश: दक्षिणी एवं उत्तरी कोशल का राजा बनाया।(चित्र 7.2)

राजा जनक एवं अन्य पूर्वी जनपदों के शासक राम के शासन को मानते थे जबकि पश्चिम में केकय देश के राजा तो इनके मामा थे। इस प्रकार राजनैतिक दृष्टि से राम ने न केवल समूचे भारत पर शासन कियावरन् उसमें भावात्मक एकता एवं सहअस्तित्व की भावना उत्पन्न की। बाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में यह बात बतायी गयी है कि- जैसे देवता लोग ब्रह्मा को ही महात्मा एवं लोकनाथ समझते हैं उसी प्रकार हम लोग समस्त भूपाल आपको [राम को] ही समस्त लोकों का स्वामी मानते हैं। [वा०रा० 7·83·11]

2- धार्मिक /सांस्कृतिक सूत्र-

रामायण काल में राज्य कार्यों में ब्राह्मणों को जो प्रायः ऋषि महर्षि थे, काफी योगदान था। वे भारत के सम्पूर्ण क्षेत्र में अपने -अपने आश्रम बनाकर निवास करते थे और सनातन धर्म का प्रचार प्रसार करते हुए प्रजा एवं राजा के बीच सम्पर्क सूत्र का कार्य करते थे। ये राज्य के सभी बड़े समारोहों में उपस्थित होते थे एवं राजा को विभिन्न महत्त्वपूर्ण मसलों पर परामर्श दियाकरते थे। राम के राज्याभिषेक के बाद ऐसे अनेक ऋषि चारों दिशाओं से राम के दरबार में आये थे।

1. पूर्व दिशा के ऋषियों में कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथि के पुत्र कण्व प्रमुख थे[वा०रा० 7·1·2]।

2. दक्षिण दिशा के ऋषियों में स्वस्त्यात्रेय भगवान नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, भगवान अत्रि सुमुख एवं विमुख थे[वा०रा० 7·1·3 1/2]।

3. पश्चिम दिशा के ऋषियों में नृषग, कवष, धौम्य महर्षि कौशेय (वा0रा0 7.1.4 1/2) आदि थे।

4. उत्तर दिशा के ऋषियों में वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज (वा0रा0 7.1.5-6) आदि थे।

सभी ऋषियों ने आकर राम को सूचना दी कि उनके सभी शत्रु मारे जा चुके हैं एवं अब वे निर्विघ्न तपस्या, यज्ञ आदि कर सकते हैं।

इस प्रकार धार्मिक दृष्टि से भी रामायणकालीन सम्पूर्ण भारत एक ही धर्म (सनातन धर्म) के अन्तर्गत आ गया था जिसकासंचालन केन्द्र कोशल था।

रामायण काल में राष्ट्रीय एकता को बाधित करने वाले कारकों में पर्वतीय एवं वनीय बाधाओं का उल्लेख किया जा सकता है। इनसे घिरा रहकर रामायणकालीन भारत अनेक छोटे-बड़े जनपदों में विभक्त था। आवागमन एवं संचार के साधनों के अभाव में सम्पर्क सूत्र बड़े अच्छे नहीं थे जिससे समूचे देश पर एक साथ प्रशासन करना किसी भी राजा के लिए एक कठिन कार्य था अतः चक्रवर्ती राजा अपने राष्ट्र के छोटे- छोटे राजाओं के अन्तर्गत बाँट दिया करता था जिससे प्रशासन में सुविधा हो। कभी-कभी न केवल इनमें आपस में प्रतिस्पर्द्धा हो जाया करती थी वरन् अधिक शक्तिशाली होने पर ये स्वयं चक्रवर्ती राजा के लिए संकट उत्पन्न करदेतेथे।

संदर्भ

1. Dixit, R.D. (1982): Political Geography, Tata Megraw Hill Publishing company Limited, New Delhi, P. 164.

2. Ali, S.M. (1966): The Geography of the Puranas, People Publishing House, New Delhi, P. 133.

3. Saxena D.P. (1976): Regional Geography of Vedic India, Grantham, Rambagh, Kanpur 12. P. 22-23.

4. ऋग्वेद - 8·24·27

5. अथर्ववेद- 19·17·1-10

6. ऐतरेय आरण्यक : 2·1·16

7. Op.cit., fn. 2, P. 151.

8. Jaiswal, A.P. And Tewari, R.C. (1978): Valmiki's Kanolwedge of the Eastern World: A Geographical Treatise of Ramayan, National Geographir, vol XIII, No. 1. P.16.

9. Pandey, S.N. (1980): Geographical Horizon of Mahabharata, Bharat Bharti, Durga Kund, Varanasi P. 142.

10. Op.cit., fn. 5. .5.22.4.

11. Op.cit., fn.2. P. 150

12. देखिये इसी शोध प्रबन्ध का सोन नदी, अध्याय- 5

13. Op.cit., fn. ~~5. P.150~~. 5.22.14

14. Op.cit., fn. 2, P.133.

15· गोपथ ब्राह्मण 2·9

16· दिग्घ निकाय 2·239

17· जायसवाल, मंजुला ¶ 1983¶:बाल्मीकि युगीन भारत, महामीत प्रकाशन, बहादुरगंज,इलाहाबाद,पृ0 70

18· महाभारत -- 1·112·28, 6·20·28

19· रघुवंश -- 12·6

20· Op.cit., fn.17, P.69.

21· शतपथ ब्राह्मण - 13·4·5 19-21

22· Ibid.....13.5.4.19.

23· बृहदारण्यक उपनिषद- 2·1·1, 3·8·2

24· Op.cit.,fn. 18, P. 16.

25· Op.cit.,fn. 18. P. 2.48.17.

26· Op.cit.,fn. 9, P. 132.

27· Op.cit.,fn. 2, P. 16.

28· Op.cit.,fn. 8, P.16.

29· Op.cit.,fn. 9, P.139.

30· Ibid P. 142-

31· Ibid P. 138.

32· Ibid P. 138. Op.cit.,fn. 4,7.18.6.

33· Ibid.1.97.8,1.125,2.11.9.
(b) Op.cit.,fn. 5, 3.13.1, 4.24.2,10.4.15.

34· देखिये इसी शोध प्रबन्ध अध्याय-6 में पशुपालन शीर्षक में अश्वपालन

35. Op.cit., fn. 17, P.66

36. Dubey, B. (1967): Geographical Concepts in Ancient India, N.G.S.I., B.H.U., Varanasi P .162.

37. Cunnigham (1871) Ancient Geography of India, London, P. 569.

38. भागवत पुराण - 5·10·1

39. Op.cit., fn. 17, P. 67.

40. Ibid P. 67.

41. कौटिल्य अर्थशास्त्र अनुच्छेद- 50

42. Op.cit., fn. 9, P. 140.

43. Ibid P. 127.

44. Jaiswal, A.P. and Tewari R.C. (1980): Valmiki's khoowledge of thw Western world: A Geographical Treastise on Ramayan, National Geographic Vol XV, P. 67.

45. Carpus Inscription and Indiearum, verse 1, P- 141.

46. Vaidya, C.V. (1924): History of Medieval Hindu India, History of Rajputs, Vol II. The oriental Book supply Agency Poona, P. 64-67.

47. Op.cit., fn. .44, P. 67

48. छान्दग्योनिषद 5·11·4

49. Op.cit., fn. 21, 2.9.33.

50. Op.cit., fn. 9. P .123.

51. (a) Vyas, S.N. (1967): India in the Ramayan Age, Atma Ram and Sons, Delhi.

(b) Das N.C. (1971): A note on the Ancient Geography of Asia, Bharat Bharati, Varanasi.

52. Op.cit., fn. 37, P. 360.

54. Op.cit.,fn.2, P. 135

55. (a) Op.cit.,fn. 9, P 141

(b) Jaiswal, A.P. And Tewari ,R.C. (1977): Valmiki's knowledge of the Northern World: A Geographical Treatise on Ramayan, National Geographic vol XII, N1,P.59

56. Op.cit.,fn. 9,P.142.

57. Op.cit.,fn. 55 b, P 59.

58. Op.cit.,fn. ~~9~~ 9,P 144.

59. Op.cit., fn. 2, P 170

60. Op.cit.,fn. 55 (b), P. 59.

61. बृहत्संहिता 16·26

62. Op.cit.,fn. 9. P 124

63. Op.cit.,fn. 55(b),P. 59

64. Op.cit.,fn., 36, P 99 fig.18

65. Op.cit.,fn. 2, P. 173

66. Law , B.C. (1974) : Geographical Aspect of Kalidasa's work, The Indian Research Institute Calcutta 6,P.10

67. Op.cit.,fn. 61.....14.17

68. Op.cit.,fn. 18......2.295, 2.32.7

69. ब्रह्माण्ड पुराण – 4·40·49

70. अनर्घ राघव – अंक 7

71. अंगुत्तर निकाय– जिल्द 1,पृ0 197

72. Op.cit.,fn. 2, P 172.

73. (अ) भागवत पुराण , 9·23

(ब) मत्स्य पुराण , 46·48

74. Sercar, D.C. (1971) : Studies in the Geography of Ancient & Medival India, Motilal, Banarasi das, Delhi P.30

75. Op.cit., fn. 9, P.132

76. शास्त्री, नेमचन्द्र (1968): "आदि पुराण में प्रतिपादित भारत" श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, अस्सी, वाराणसी पृ० 51.

77 ऐतरेय ब्राह्मण - 7.18

78. Op.cit., fn. 19, 2.31.71

अष्टम अध्याय

बाल्मीकि रामायण में भारत: सामाजिक एवं सांस्कृतिक तंत्र

मानव भूतल का एक उत्कृष्ट प्राणी है। यही कारण है कि जब से उसका इस धरातल पर प्रादुर्भाव हुआ है उसने अपने अध्यवसाय से पृथ्वी के भौतिक रूप को परिवर्तित किया है। इस प्रक्रिया में अनेक सांस्कृतिक भूदृश्यों का सृजन हुआ है जो आज भौतिक भूदृश्य की ही भाँति एवं कभी-कभी तो उनसे भी अधिक महत्वपूर्ण हो गये हैं। मनुष्य के आर्थिक एवं सामाजिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप उद्भूत ये स्थलरूप ही ऐसे मापदण्ड है जिनसे उसकी वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का आकलन किया जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में रामायण काल के इन्हीं सामाजिक एवं सांस्कृतिक तंत्र के अवयवों पर प्रकाश डाला गया है ताकि तत्कालीन समाज के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का सही मूल्यांकन किया जा सके।

8·1 जनसंख्या वितरण-

रामायण के आधार पर भारत की जनसंख्या वितरण को प्रदर्शित करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। ऐसा जनसंख्या वितरण सम्बन्धी तथ्यों एवं विवरणों की कम उपलब्धता के कारण है। चूँकि मानव संस्कृति के विकास की कहानी जल से प्रारम्भ होती है एवं मनुष्य की जैविक आवश्यकताओं में जल का स्थान भोजन से भी पहले आता है। रामायणकालीन जनसंख्या के बसाव पर जल के वितरण का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। इसके साथ ही साथ उपजाऊ एवं समतल भूमि, यातायात के साधन एवं भौतिक वातावरण ने भी रामायणकालीन जनसंख्या के वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। संक्षिप्त रूप में हम रामायण

BHARAT VARSA
DISTRIBUTION OF POPULATION
(RAMAYAN PERIOD)
N
ARID AREAS
UN-INHABITED AREAS
SPARSELY POPULATED AREAS
DENSELY POPULATED AREAS
200 0 200 400 600 800 Km
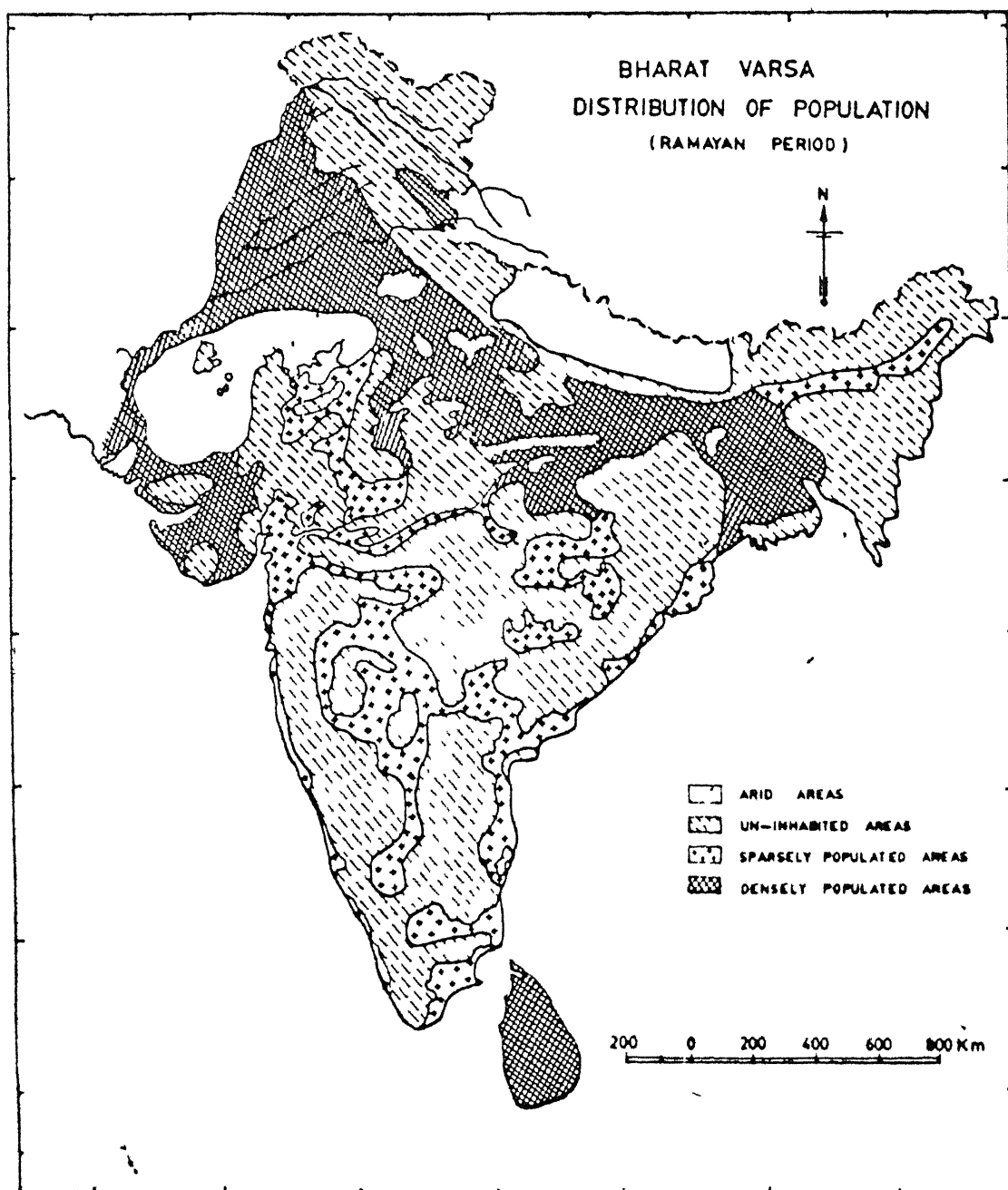
FIG 8 1

कालीन जनसंख्या के वितरण को घनत्व के आधार पर तीन प्रमुख क्षेत्रों में बाँट सकते हैं (चित्र 8.1)

(अ) सघन बसे क्षेत्र -

वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि उन दिनों आर्यावर्त की भूमि सघन बसाव का क्षेत्र था। सिन्धु-गंगा मैदान ही ऐसा क्षेत्र था जहाँ के उपजाऊ एवं समतल क्षेत्र पर कुरु, पांचाल, कोशल, विदेह, काशी, वत्स, गान्धार, केकय जैसे प्रभावशाली जनपदों का विकास हुआ। इन जनपदों के उद्भव में नदी के ताजे जल, कृषि संसाधनों एवं आवागमन की सुलभता आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। चूँकि इस काल में कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार थे। नदी घाटियाँ जनसंख्या बसाव के सर्वाधिक उपयुक्त स्थल थे (चित्र 8.1) नदियों की उपजाऊ भूमि चारागाह एवं कृषि के लिए उपयुक्त थी अतः अधिकाँश आवास इन्हीं नदियों के तटों के सहारे बनाये जाते थे। इसीलिए रामायण में गंगा प्रभृति नदियों को माँ कहा गया है और इनकी प्रशस्ति में गुणगान किया गया है।

(ब) विरल बसाव के क्षेत्र-

रामायण में विरल बसाव के क्षेत्र विन्ध्य प्रदेश एवं द0 भारत का सम्पूर्ण पठारी भाग (केवल सघन वनों को छोड़कर) था। इन क्षेत्रों में तीन प्रकार के लोग बसे हुए थे।

1. प्रथम वे अनार्य लोग जो आर्यों द्वारा उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों से भगाये गये थे।

2. वे लोग जो उस क्षेत्र के मूल निवासी थे।

3. आर्य संस्कृति के प्रचारक ऋषि एवं तपस्वी इत्यादि तो वनों के बीच आध्यात्मिक चिन्तन मनन हेतु बसे थे एवं अनार्य जातियों से सम्पर्क बनाकर आर्य संस्कृति के प्रचार कार्य में लगे थे ।

इस प्रकार विरल बसे क्षेत्रों में गोदावरी, कावेरी, नर्मदा एवं ताप्ती तथा पूर्वी एवं पश्चिमी घाट के तटीय मैदान एवं कम ऊँची सुरक्षित पहाड़ियाँ सम्मिलित की जा सकती हैं। विशेषकर चित्रकूट, विन्ध्य पर्वत, सह्य, हिमाद्रि, महेन्द्र, मलय, किष्किन्धा आदि की पहाड़ियाँ एवं इनकी गुफाओं में लोगों को प्राकृतिक निवास स्थल प्राप्त हो जाता था और समीपवर्ती वनों से कन्दमूल फल एवं शिकार प्राप्त कर जीवन यापन आसानी से हो जाता था। ये मानव बसाव भी पानी के प्राकृतिक स्त्रोतों, नदी, झील, झरना, सोता आदि के निकट ही होते थे।

(स) निर्जन क्षेत्र-

इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से मरुस्थलीय भूमि, सघन, दुर्गम, वन-भूमि, हिम क्षेत्र, बड़े ढाल वाले पहाड़ ऊबड़ खाबड़ भूमि दलदल भूमि आदि आते हैं। इनमें हिमालय के दुर्गम क्षेत्र दक्षिण भारत के सघन वन क्षेत्र, ऊबड़-खाबड़ भूमि, सिन्धु, गंगा एवं ब्रह्मपुत्र नदियों के डेल्टाई दलदली क्षेत्र एवं राजस्थान का मरुक्षेत्र आता है जहाँ अनुपयुक्त जलवायु एवं प्राकृतिक दशाओं के कारण भोजन आदि का संकट था तथा मानव बसाव करीब-करीब नहीं के बराबर था (चित्र 8:1)। ऐसे क्षेत्रों में यातायात की भी असुविधा थी एवं साथ जल का संकट बना रहता था।

8·2 रामायणकालीन प्रजातियाँ-

रामायण में मुख्यत: दो सांस्कृतिक समूहों का वर्णन मिलता है। एक आर्य एवं दूसरा अनार्य। इन दोनों के बीच कुछ विभेदक तथ्य है जो इन दोनों को एक दूसरे से अलग करते हैं। ।

§अ§ शारीरिक बनावट-

रामायण में राक्षसों के शारीरिक लक्षण बताते हुए इन्हें गहरी आँख वाला, बड़े मुखवाला, भयंकर एवं बेडौल शरीर वाला बताया गया है§वा0रा0 3·2·5§। जबकि राम के शारीरिक सौन्दर्य की सराहना करते हुए उन्हें बड़ी-बड़ी आखों वाला, सुडौल एवं मांसल शरीर, पतली कमर एवं चौड़े स्कन्ध एवं वक्षस्थल वाला बताया गया है §वा0रा0 3·17·8-10§ । इसी प्रकार सीता को सुन्दर मुखाकृति वाली, बड़ी-बड़ी आंखों वाली क्षीण कटि प्रदेश वाली §वा0रा0 3·18·17§ बताया गया है जबकि शूर्पणखा को दुर्मुखी§ कुरूप एवं भद्दे मुखवाली§ महोदरी §बेडौल एवं लम्बे पेट वाली§ विरूपाक्षी §कुरूप एवं डरावने नेत्रों वाली§, ताम्रमूर्धजा §तांबे जैसी बाल वाली और विरूप §विभत्स एवं विकराल रूपवाली कहा गया है§ वा0रा0 3·52· 23-24§। उपर्युक्त शारीरिक बनावट आर्य एवं द्रविण प्रजातियों को एक दूसरे से पृथक करती थीं।

§ब§ रंग-

रामायण के अरण्यकाण्ड में सीता के मुख को स्वर्ण के समान तथा रावण को काले हाथी के समान बताया गया है तथा उनके शरीर को केसर की

भाँति पीली तथा बिजली की चमक की कान्तिवाला और रावण को काले मेघों के समान बताया गया है॥ वा०रा० 3·17·9-10॥। इससे यह ज्ञात होता है कि आर्य लोग गौर वर्ण के थे जबकि राक्षस ॥अनार्य॥ काले रंग के थे।

॥स॥ खान-पान-

रामायण में आर्यों का मुख्य भोजन अन्न, दूध, फल एवं शाक सब्जियाँ आदि बताया गया है जबकि राक्षसों को मांस भक्षी ॥ वा०रा० 3·10·5॥ एवं मदिरा सेवी कहा गया है इन राक्षसों को नरमांस तथा विभिन्न अखाद्य पदार्थों के सेवन में कोई संकोच नहीं होता था एवं सामान्य तथा वे क्रूर प्रकृति के माने गये हैं।

॥द॥ धार्मिक आचार- विचार-

आर्य यज्ञ करते थे एवं अध्यात्म चिन्तन में व्यस्त रहते थे जबकि अनार्य यज्ञ कर्म के विरोधी थे। मारीच एवं सुबाहु राक्षस विश्वामित्र मुनि के यज्ञ मंडप में रक्त की धारा आदि की वर्षा कर विभिन्न प्रकार से यज्ञ- कार्य को बाधित करते थे। यही कारण है कि राक्षसों का यज्ञभूमि में प्रवेश वर्जित था ॥वा०रा० 1·18·6॥।

8·3 प्रमुख जनजातियाँ ॥ Tribes ॥-

नृशास्त्रीय दृष्टिकोण से रामायणकालीन समाज में अनेक प्रजातियाँ पायी जाती थीं ॥चित्र 8·2॥। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन्हें निम्न चार वर्गों में बाँट सकते हैं।

BHARAT VARSA
DISTRIBUTION OF TRIBES
(RAMAYAN PERIOD)
N
HIMALAYAS
DESERT
PASCHIM SAGAR
PURVA SAGAR
TRIBES
A = ARIA
Ap = APSARA
As = ASUR
D = DEVA
G = GANDHARVA
K = KIRAT
N = NISHAD
Na = NAG
Gr = GRIDDHA
R = RAKSHAS
S = SHABAR
V = VANAR
Y = YAKSHA
200 0 200 400 600 800 Km
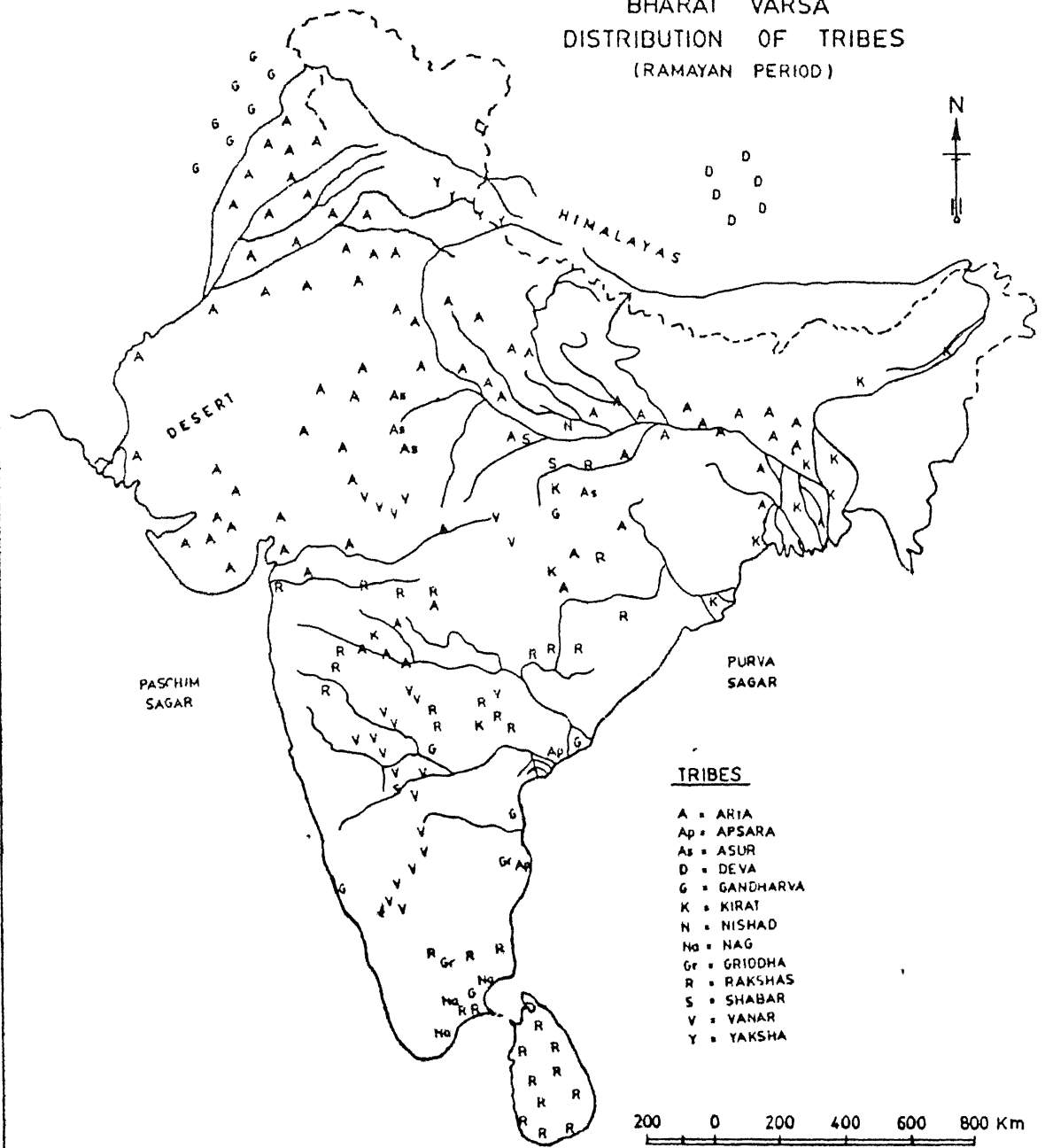
FIG 8 2

प्रथम वर्ग- राक्षस, दानव, दैत्य, पिशाच ,असुर

द्वितीय वर्ग- वानर एवं यक्ष

तृतीय वर्ग- नाग, गृद्ध, उरग

चतुर्थ वर्ग - गन्धर्व, अप्सरा, किरात एवं निषाद

(क) राक्षस -

रामायण में आर्यों के अलावा अनेक ऐसी जातियों का भी वर्णन किया गया है जो सभ्यता एवं सांस्कृतिक विकास में आर्यों से बहुत आगे थीं। किन्तु ~~वे~~ आर्यों के साथ सहयोग देने या उनका विरोध करने के आधार पर इन्हें अच्छा या बुरा कहा गया है ।[2] राक्षस भी इसी प्रकार की एक जन -जाति (Tribes) थी। यद्यपि आज यह शब्द अमानुषिक कार्य करने वालों का द्योतक है परन्तु वाल्मीकि रामायण में इसे एक आर्येतर जाति के लिए प्रयुक्त किया गया है। इस जाति के उत्पत्ति के सम्बन्ध में रामायण में संकेत है कि- जब पृथ्वी के प्राणी दुःखी होकर पितामह ब्रह्मा के पास गये तो उन्हें सम्बोधित करते हुए ब्रह्मा ने कहा " हे प्राणियों तुम लोग मनुष्यों की रक्षा करो" उनमें से जो लोग भूखे नहीं थे उन्होने कहा "रक्षाम:" (रक्षा करेंगें) और जो भूखे थे उन्होंने कहा- "यक्षाम:" (भोजन करेंगें) । इस बात को सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा "रक्षाम:" करने वाले राक्षस होगें और "यक्षाम:" कहने वाले यक्ष होगें (वा०रा० 7·4·11-13)। इससे संकेत मिलता है कि राक्षसों एवं यक्षजाति की उत्पत्ति एक समय ही हुई। इस जाति का मूल निवास स्थान कहाँ था इस बारे में रामायण में कोई संकेत नहीं मिलता किन्तु इतना अवश्य ज्ञात होता है कि रावण से बहुत पहलेभी राक्षस लंका

में निवास करते थे (वा०रा० 7·3·29, 7·4·1-3)। विष्णु ने उन्हें लंका (वर्तमान लंका) से निर्वासित कर दिया था जहाँ से भागकर वे पाताल लोक (हिन्दमहा सागर के द्वीपों) में चले गये थे (वा०रा० 7·8·22)।

1- निवास स्थान-

राक्षसों का निवास स्थान लंका एवं प्रायद्वीपीय भारत के वन संकुल क्षेत्र (दण्डक वन आदि) थे (वा०रा० 3·9·14,3·33·12-13) (चित्र 8·2)। लंकापुरी राक्षसों की राजधानी थी जिसकी सुन्दरता एवं समृद्धि का रामायण में बड़ा ही रोचक वर्णन मिलता है।

2- रंगरूप एवं शारीरिक बनावट-

राक्षस काले वर्ण (वा०रा० 7·8·12,3·49·7) के होते थे। वे सामान्यतया विशाल शरीर वाले एवं हृष्टपुष्ट होते थे (वा०रा० 6·59·16-17) कुम्भकर्ण की विशालता को देखते हुए उसे माया द्वारा निर्मित यंत्र बताया गया है (वा०रा० 6·61·33)। रामायण में प्राप्त विवरण के आधार पर राक्षस भीमकाय,अति भयानक नेत्रों वाले, तीक्ष्ण एवं चमकीले दांतो वाले, बड़े-बड़े दाढ़ी एवं बाहर की ओर निकले होठों वाले,दीर्घ एवं सर्प के समान भुजाओं वाले एवं विशाल वक्ष:स्थल वाले होते थे (वा०रा० 5·10·7-28)। आर्यों की संस्कृति के प्रतिकूल आचरण करने के कारण सम्भवत: उनकी शारीरिक बनावट को भयानक एवं क्रूर एवं अमानुषिक कार्य करने वाला बताया गया है,जबकि वे हृष्ट,पुष्ट, बलशाली एवं युद्ध कला में निपुण थे।

3-खान पान-

खान पान के दृष्टिकोण से राक्षस न केवल मांसाहारी थे (वा०रा० 15·11·15) बल्कि रामायण में इन्हे नरमांस भक्षी भी बताया गया है (वा०रा० 5·22·9)। सुरा इनका प्रिय पेय पदार्थ था। रावण की मधुशाला में अनेक प्रकार की शराब का उल्लेख किया गया है (वा०रा०5·17·5-16)। यद्यपि वन्य पशुओं के मांस का भोजन प्राचीन काल में एक आम बात थी परन्तु नरमांस भक्षण की प्रथा कुछ अनार्य जातियों में थी। रामायण के अनुसार भी नरमांस राक्षसों के भोजन का एक नियमित अंग नहीं लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह केवल उन समुदायों तक ही सीमित होता था जिनसे राक्षसों की शत्रुता थी एवं जो उन्हें क्षति पहुँचाया करते थे। दक्षिणी एवं पूर्वी भारत की अनेक जनजातियों में नरबलि एवं नरमांस भक्षण की प्रथमा काफी दिनों तक प्रचलित थी।

4- वस्त्रएवं आभूषण -

आर्यों की भांति राक्षस भी उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों के प्रेमी थे। रामायण के अनुसार रावण बहुमूल्य एवं आकर्षक रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित रहता था (वा०रा० 5·49·4)। राक्षस एवं उनकी स्त्रियों द्वारा धारण किये जाने वाले वस्त्राभूषणों की विस्तृत चर्चा रामायण के सुन्दरकाण्ड में की गयी है (वा०रा० 5·10-सम्पूर्ण सर्ग)। जिसके अनुसार ये लोग बाहुओं में स्वर्णांगद, केयूर, अंगुलियों में स्वर्णांगुलीयक, गले में मुक्ताहार, निष्क, कानों मे देदीप्यमान स्वर्ण कुंडल तथा कमर में श्रोणी सूत्र धारण करते थे। मणिरत्नों का भी पर्याप्त

व्यवहार किया जाता था (वा0रा0 5·10·51) । राक्षस राजा स्वर्णमुकुट एवं देदीप्यमान कवच धारण करते थे। राक्षस पशुओं के सींगों को भी आभूषण के रूप में धारण करते थे (वा0रा0 3·31·43) ।

5· सामाजिक संगठन -

राक्षस एक अनार्य जनजाति थी। जिसमें आर्यों की तरह किसी प्रकार की वर्णव्यवस्था का अभाव था। इनकी शादियां स्वजनों के अलावा नागों, दैत्यों ,गन्धर्वों आदि की कन्याओं से हुआ करती थी। विवाह इनमें उतना पवित्र सम्बन्ध नहीं माना जाता था जितना आर्यों में था। ये प्राय: पराई स्त्रियों का बलपूर्वक हरण कर पत्नी रूप में रखते थे (वा0रा0 5·20·5)। उत्तरकाण्ड में रावण द्वारा कई जाति की कन्याओं के हरण का वृतान्त मिलता है (वा0रा0 7·24· सम्पूर्ण सर्ग) । उनमें बहु विवाह की भी प्रथा थी। राक्षस गायन वादन एवं नृत्य कला के अत्यन्त प्रेमी थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि राक्षसों का मूल निवास स्थान हिन्द महासागर के छोटे-छोटे द्वीप थे। जहां से ये कालान्तर में लंका एवं सम्पूर्ण द0 भारत (विशेषकर दण्ड कारण्य प्रदेश) के क्षेत्र मे फैल गये। वैदिक साहित्य में राक्षस शब्द का बहुत कम प्रयोग हुआ है।[3] जिससे यह सिद्ध होता है कि राक्षस शब्द महाकाव्य काल में ही प्रचलन में आया। कुछ विद्वान रावण को द्रविणवासी मानकर दक्षिण भारत के अनेक क्षेत्रों में उसकी पूजा की बात कहते है।[4] किन्तु प्राप्त विवरणों के आधार पर द्रविण एवं राक्षस दो आर्येतर प्रजाति होने के साथ-साथ भिन्न-भिन्न जातियां थी। वाल्मीकि ने भी राक्षसों का निवास स्थान द0 भारत न मानकर हिन्द महासागरके द्वीपों में माना है।

राक्षसों का सम्बन्ध अफ्रीका के पूर्वी द्वीपों से हो सकता है जबकि द्रविणों का उद्भव भूमध्य सागर के समीपवर्ती क्षेत्रों या क्रीटद्वीप समूह से माना जाता है। राक्षस भारत में उत्तर वैदिक काल §1200- 600 ई0पू0§ के बाद और महाकाव्य काल §600- ई0पू0§ के पूर्व आये ।[5]

§ख§ असुर-

असुर लोग दण्डक वन में निवास करते थे §वा0रा0 1·1·43-44§ एवं 3·11·64§ । वातापि और इल्वल इनके मुखिया थे, जिसे अगस्त्य ने अपने पेट में पचा लिया था § वा0रा0 3·11·सम्पूर्ण सर्ग§। पौराणिक कथाओं में असुर दिति के पुत्र माने गये हैं जिन्हें माँस भक्षी एवं ब्राह्मणों का विनाशक बताया गयाहै। ये पातालवासी थे § वा0रा0 5·1·93§ तथा सनातन धर्म के विरोधी थे। दण्डक वन के ऋषियों ने राम से असुरों के वध की ही प्रार्थना की थी § वा0रा0 1· 1·43-44§ ।

राक्षसों से भिन्न लेकिन स्वभाव के समान दानव ,दैत्य पिशाच, एवं असुर जातियों का उल्लेख रामायण में किया गया है जिसमें प्रथम तीन का निवास क्षेत्र भारत से बाहर स्थित था।

§ग§ वानर-

वानर शब्द, जिसकी उत्पत्ति वन §जंगल§ एवं नर §मनुष्य§ शब्दों के संयोग से हुई है जंगल के निवासियों का बोधक है। एक अन्य व्युत्पत्ति के आधार पर इससे "मनुष्यों के समान" §वा = समान/सदृश, नर = मनुष्य§

प्रजातियों का बोध होता है। ग्रीफिथ महोदय के अनुसार वानरलोग अर्ध - दैविक प्रजातियाँ थी जो कभी मनुष्यों के ही समान मकानों में रहते एवं खाते पीते थे तो कभी ये जंगलों में रहकर फल- फूलों पर अपना जीवन व्यतीत करते थे। गोरेसियो महोदय के अनुसार वानर किष्किन्धा के क्षेत्र में रहने वाली एक आदिम जाति थी जिसका रहन-सहन ,रीति-रिवाज आदि उत्तर के आर्यों से भिन्न था।[6] इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में प्राप्त विवरणों से यह ज्ञात होता है कि वानर एक अनार्य प्रजाति थी जो दक्षिणी भारत के पठारी क्षेत्र में विशेषकर किष्किन्धा क्षेत्र के समीप निवास करती थी। बालि इनका मुखिया था जो दक्षिणी भारत का एक शक्तिशाली शासक था। वानरों का निवास क्षेत्र उत्तर का विदर्भ (बरार) उत्तर पश्चिम की ~~[illegible]~~जस्थान एवं ऊपरी गोदावरी नदी का घाटी क्षेत्रथा। इस क्षेत्र को पूर्वी पश्चिमी एवं दक्षिणी सीमाएँ समुद्र द्वारा बनायी जाती थी।[7] आज भी मालाबार के समीप स्थित अंगदीपुर एवं उत्तरी कनारा का "वनवासी" इन्हीं तथ्यों की ओर संकेत देते हैं।[8] वानरों की भी अनेक प्रजातियाँ थी एवं इनके वंशज देश के विभिन्न भागों में बिखरे पड़े थे। वानर यूथपति कुमुद के संरोचन क्षेत्र से, श्वेत के मलय, रंभ के कृष्ण गिरि, पनस के परियात्र, शरभ के सालवेय, धूम्र एवं जाम्बवान के ऋक्षवान पहाड़ियों, प्रमथ के मंदार पहाड़ियों एवं केशरी के महामेरु क्षेत्र में आने का प्रसंग इसी दिशा की ओर संकेत करता है।

1- रंग एवं शारीरिक बनावट-

रामायण में वानर प्रजाति के लोगों के कई रंग बताये गये हैं। किष्किन्धा के 37 वे सर्ग में वानरों के रंग के विषय में जो चर्चा मिलती है उससे

स्पष्ट होता है कि वानरों के रंग पर उस स्थान के वातावरण का प्रभाव पड़ता था। इसी से उन्हे काजल के समान (अन्जन पर्वत पर),सूर्य के समान (महारुण पर्वत पर) ,चन्द्रमा के समान सफेद (मेरु पर्वत),कमल केसर के समान पीला रंग (महामेरु पर्वत), स्वर्ण के समान (अस्ताचल),श्वेत रंग (हिमालय एवं कैलाश पर्वत पर),मंगल के समान लाल रंग (विन्ध्याचल पर्वत पर) का बताया गयाहै (वा0रा0 4.37.2-25)|वानरों की उत्पत्ति से सम्बन्धित विवरणों से यह संकेत मिलता है कि ये बड़े बलवान एवं भीमकाय थे क्योंकि इन्हे विभिन्न देवताओं ऋषियों आदि से उत्पन्न बताया गया है (वा0रा0 1.17 सम्पूर्ण सर्ग) । ये वानर, बलशाली, बुद्धिमान, तेजस्वी, पराक्रमी, उत्साही,वाक्पटु तथा विभिन्न रूप धारण करने वाले होते थे (वा0रा0 5.46.13-14)। बालि जो इनका राजा था, बहुत बलवान था तथा पश्चिम से पूरब, उत्तर से दक्षिण ,सागरों का प्रतिदिन चक्कर लगाया करता था (वा0रा0 4.11. 4-6)।

2- खान पान-

वानर जाति जो फलमूल आदि का भोजन करती थी विशुद्ध शाकाहारी थी। यों तो रामायण में कहीं-कहीं इनके द्वारा राक्षसों के मांस भक्षण का उल्लेख मिलता है परन्तु लगता है यह इनके द्वारा क्रोध में आने के कारण ही हुआ है। सामान्यतया ये वनों से प्राप्त फल फूल ही खाते थे (वा0रा0 3.17.25-30) एवं संग्रहणीय जाति के थे। इनमें मद्यपान आदि की भी प्रथा थी (वा0रा0 4.33.7 एवं 4.33.40)।

3- वस्त्र एवं आभूषण -

वानरों का शरीर बालों से आच्छादित रहता था। आर्यों की ही तरह ये लोग बाहों में अंगद, कानों में कुण्डल, गले में निष्क, मस्तक पर मुकुट धारण करते थे। वानर स्त्रियां पैरों में नूपुर, कमर में करधनी आदि आभूषण धारण करती थीं [वा०रा० 4·33·6]। इनमें सुवर्ण आदि धातुओं के बने आभूषणों के अतिरिक्त पुष्पों से सजाने की भी प्रथा प्रचलित थी। परन्तु आभूषणों आदि का व्यवहार मुख्यतः राज परिवारों तक ही सीमित था।सामान्य पुरुषों एवं स्त्रियों में सीमित एवं वस्त्रों एवं फूलों आदि का प्रयोग सजावट के रूप में होता था।

4- सामाजिक संगठन-

वानर जाति वन्य जाति होने के साथ-साथ उदात्त मानवीय गुणों से सम्पन्न थी। इनके वैवाहिक सम्बन्धों के बारे में कोई विस्तृत संकेत रामायण में नहीं मिलता है किन्तु किष्किन्धा काण्ड के प्रसंग से इतना अवश्य पता चलता है कि आर्यों की ही भाँति इनमें छोटे भाई की पत्नी के साथ यौन सम्बन्ध कुकृत्य माना जाता था परन्तु बड़े भाई की मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी के साथ सम्बन्ध मान्य था। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि वानरों की सामाजिक व्यवस्था ढीली -ढाली थी। इनमें राज्याभिषेक, दाहकर्म आदि संस्कार आर्यों के समान ही होते थे [वा०रा० 4·25 सम्पूर्ण सर्ग]। सम्भ्रान्त परिवार की स्त्रियां पर्दा करती थी एवं निवास में सामान्य आवागमन पर प्रतिबंध था।

5- सांस्कृतिक विकास-

नख ,दांत,हाथ पैर, वृक्ष -बड़ी -बड़ी शिलाएं आदि वानरों के मुख्य अस्त्र शस्त्र थे ‖ वा 0रा0 6·4·27 ‖ वन्य उपजों पर निर्भर होने ‖ वा0रा0 6·4·36‖ एवं कृषि आदि के क्षेत्र में पिछड़ा होने के कारण इनमें आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास का अभाव पाया जाता था। शिक्षा आदि की सुविधाएं कुछ चुने हुए लोगों तक सीमित थीं। राजा का स्थान इनकी सामाजिक व्यवस्था में सर्वोपरि था जिसकी आज्ञा का पालन सबके लिए अनिवार्य था। राजाज्ञा का उल्लघंन करने वाले को कठोर मृत्यु दंड दिया जाता था। राजा अपने राज्य संचालन में मंत्रिपरिषद की सहायता लेते थे। बाहरी आक्रमण के समयसभी एक जुट होकर शत्रु का सामना करते थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्टहोता है कि वानरजाति जो एकअनार्य प्रजाति थी आर्यों के अनेक कार्यकलाप अपना चुकी थी। आदिम युद्ध प्रणाली वानर संस्कृति की अपनी एक प्रमुख विशेषता थी।

वैदिक वाङ्मय में "वानर" शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है इससे स्पष्टहोता है कि वैदिक काल तक वानरजाति से आर्यों कासम्पर्क नहीं हो पाया था। इस प्रजाति से आर्यों कासम्पर्क तभी हुआ जब वे विन्ध्याचल से दक्षिण की ओर बढ़े। रामायण काल में राम के साथ मित्रता हो जाने के कारण वानर जाति का आर्यों के सम्पर्क में आने का और भी मौका मिला जिससे इनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों में काफी परिवर्तन हुआ।

(घ) निषाद-

निषाद आदिम जाति गंगा एवं कोशल राज्य के मध्यवर्ती क्षेत्र में निवास करती थी (चित्र 8·2)। इनकी संस्कृति नवप्रस्तर काल (Neolithic Period) से सम्बन्धित थी।[9] आर्यों के सम्पर्क में आकर इन्होंने आर्यों के रहन-सहन के तरीकों को सीखना प्रारम्भ कर दिया था। कोशल जनपद के शासकों से इनका मित्रतापूर्ण सम्बन्ध था। श्रृंगवेर पुर उनकी राजधानी थी। गुह निषादों का राजा था जो शारीरिक एवं बौद्धिक दृष्टि से एक बलवान एवं कुशल शासक था (वा0रा0 2·51·33)। निषाद जाति के लोग धनुर्विद्या में कुशल सैनिक थे। यही कारण है कि इन्हें भरत की विशाल सेना से युद्ध करने में कोई संकोच एवं भय नहीं होता है (वा0रा0 2·84·3-8)। ये नदी तट वासी थे तथा जंगल से लकड़ी आदि काटकर नावें आदि बनाते थे। मत्स्य आखेट एवं मत्स्य पालन इनका प्रमुख व्यवसाय था। निषाद राज गुह के द्वारा दिये गये मत्स्यण्डी (मिश्री) फल के गूदे और मधु आदि का भेंट भरत सहर्ष स्वीकार करते हैं (वा0रा0 2·84·34-36)। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्य लोग निषादों से घृणा नहीं करते थे। राम से मित्रता के कारण इस आदिम जाति को आर्यों के सम्पर्क में आने का और भी अवसर प्राप्त हुआ।

(ङ) गृध्र -

प्राचीन भारत को कुछ घुमक्कड़ी जातियाँ अपनी भ्रमणशील प्रवृत्ति के कारण पक्षियों के नाम पर गृध्र, सुपर्ण आदि कही जाती थीं।[10]

गृध्रराज जटायु दशरथ का मित्र था ﴾वा0रा0 3·14·3﴿ एवं राम लक्ष्मण के शिकार पर जाने के समय सीता की रखवाली करता था। वह जन स्थान में रहता था। सीता के अपहरण के समय रावण से युद्ध करते हुए वह मारा जाता है ﴾वा0रा0 3·51·43﴿ । गृध्र प्रजाति भारत के पश्चिमी समुद्र तट और उसके आसपास की पर्वत श्रेणियों एवं जंगलों में निवास करती थी। इनके मुखिया संपाति एवं जटायु थे जिनकी मृत्यु के बाद इस प्रजाति का अस्तित्व लगभग समाप्त हो जाता है।

इस प्रजाति का आर्यों से विशेष सम्पर्क था जिसके कारण इन्होंने आर्यों के बहुत से रीति रिवाजों को अपना रखा था। राम अपने निकट के सम्बन्धी की ही भाँति जटायु का दाह संस्कार करते हैं ﴾वा0रा0 3·68·31﴿ द0 दिशा में सीता की खोज हेतु गये वानरों से जटायु का भाई सम्पाति मिलता है जो भाई की मृत्यु का समाचार पाकर दुःखी होता है एवं उसे जलांजलि देता है ﴾वा0रा0 4·58·35﴿। रावण एवं गृध्रराज की तुलना दो मेघों के समान की गयी है ﴾वा0रा0 3·51·2, 4·60·1 ﴿। इससे गृधों के काले रंग के होने की ओर संकेत मिलता है।

वैदिक साहित्य में इस प्रजाति का उल्लेख नहीं हो पाया है। उत्तर वैदिक काल में ही आर्य लोग इनके सम्पर्क में आये जिसके परिणाम स्वरूप इन्होने आर्यों के बहुत से रीति रिवाजों को अपना लिया ।[11] महाभारत में इन्हे "क्षत्रिय" तथा विष्णु भक्त कहा गया है। [12] कुछ विद्वानों के अनुसार सुपर्णवंश सप्तसिन्धु की एक यायावर प्रजाति थी ।[13]

(च) शबर -

शबर रामायण युगीन एक आर्येतर जनजाति थी। जिसके वंशज पंपा सरोवर के समीपवर्ती क्षेत्रों में निवास करते थे। इनका मुख्य व्यवसाय आखेट था। आज भी मध्यप्रदेश के पहाड़ी अंचलो में इस नाम की एक आदिम जनजाति पायी जाती है।[14] वाल्मीकि रामायण में शबरी की कथा एक ऐसी अनार्य जन-जाति से सम्बन्धित है जो आर्यों की संस्कृति से पूर्णरूप से प्रभावित हो चुकी थी इसकी पुष्टि शबरी द्वारा अपने आश्रम में राम लक्ष्मण के किये गये अतिथि सत्कार के माध्यम से होती है। शबरी श्रमणी थी एवं एक पवित्र भिक्षुणी का जीवन व्यतीत करती थी। राम लक्ष्मण जैसे राजकुमारों के सम्पर्क में आकर वह अपने को कृतकृत्य समझती है उसकी तपश्चर्या एवं आराधना से राम प्रभावित हुए थे एवं उसे सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

(छ)- यक्ष-

यक्ष राक्षसों की भाँति एक अनार्य जनजाति थी जो अपने सुगठित शरीर एवं सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध थे। राक्षसों के साथ इनके वैवाहिक सम्बन्ध थे। यक्षों के अधिपति कुबेर रावण के सौतेले भाई थे एवं दोनों का सम्बन्ध विश्रवा से था। इस प्रजाति के लोग मूल रूप में लंका में निवास करते थे परन्तु राक्षस राज रावण के भय से इन्हें लंका खाली करना पड़ा एवं अलकापुरी में जाकर निवास करने लगें।

रामायण में यक्ष क्रीड़ा, बिहार, संगीत, कला आदि में प्रवीण बताये गये है । ये हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र पर फैले हुए थे एवं युद्ध विद्या में निपुण

थे ﴾वा0रा0 7·14 एवं 15 सम्पूर्ण सर्ग﴿ आर्यों से इनका मैत्री सम्बन्ध था क्योंकि रामायण में कहीं भी इनका आर्यों से युद्ध का संकेत नहीं मिलता है। ~~कुछ बाद के संस्कृत~~

﴾ज﴿ नाग-

नाग सर्प चिन्ह धारण करने वाली जाति थी जिनका निवास स्थान दक्षिण भारत का मलाबार तट एवं श्री लंका का क्षेत्र था। यह एक समुद्र तट निवासी प्रजाति थी[15] इनकी राजधानी भोगवती पुरी थी*। रामायण के अनुसार नागों एवं राक्षसों में सदा युद्ध होता रहता था। राक्षसराज रावण ने भोगवतीपुरी पर आक्रमण करके वासुकि,तक्षक, शंख, जटी आदि नागों के राजाओं को परास्त कर उन्हे अपने अधीन कर लिया था ﴾वा0रा0 3·32·14, 6·7·9·7·23·5 ﴿ ।

नाग स्त्रियां अपने शारीरिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध थीं। हनुमान जी को लंका में चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली वरारोहा नाग कन्याओं का दर्शन हुआ था ﴾वा0रा0 5·12·22﴿ । रावण कई रूपवती नाग-कन्याओं का अपहरण करके उन्हें अपने अंत:पुरी में रखा था। नागों एवं राक्षसों में वैवाहिक सम्बन्ध भी थे। शूर्पणखा के रूपवान तक्षक नामक नाग- वर से विवाह किया था। इस प्रकार नाग एक आर्येतर प्रजाति थी जिसका रंग सम्भवत: काला था। व्यास[16] ने इसे दक्षिणी दिशा की ही प्रजाति माना है । विद्वानों का विचार है कि कालान्तर में नाग जाति चेरजाति में विलीन हो गयी जो ईसवी सन् के प्रारम्भ में दक्षिण की तीन प्रमुख जातियों ﴾चोल,चेर पाण्ड्य﴿ मे एक

---

* यहाँ भोगवती पुरी पाताल की भोगवती पुरी से भिन्न है।

प्रभुत्व सम्पन्न जाति थी ।[17]

(ङ) उरग-

उरग भी रामायण युग की एक प्रसिद्ध आर्येतर प्रजाति थी। नृशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह जाति नाग,सुपर्ण की कोटि में आती थी। ऐसा मालूम होता है कि पर्यटन शील स्वभाव के कारण ही इन्हे उरग कहा जाता था। रामायण में इनका विशेष विवरण नहीं मिलता किन्तु राम रावण युद्ध एवं विभिन्न सांस्कृतिक अवसरों पर इनके उपस्थित होने का संकेत मिलता है।

रामायण में कुछ विशिष्ट प्रजातियों का उल्लेख है जो संगीत आदि कलाओं में निपुर्ण थी। इनमे देव,गन्धर्व, चारण सिद्ध किन्नर और अप्सराएँ आदि मुख्य है।

(ञ) देव -

देव,सामान्यतया स्वर्ग के स्वामी,देवता कहे गये हैं लेकिन रामायण के अनुसार ये पृथ्वी (मर्त्यलोक) पर भी आते थे और वहां भ्रमण करते थें। ये आर्यों के यज्ञ में भाग लेते थे। राक्षस इनके दुश्मन थे(वा0रा0 7·27·30) ये मुख्यत: हिमालय के उत्तरी क्षेत्र के निवासी थे।

(ट) किन्नर-

ये लोग चित्रकूट, कैलाश, विन्ध्य पर्वत, मैनाक ,दण्डकारण्य आदि स्थानों मे छोटे- छोटे समूहों मे निवास करते थे। रामायण में इनका विस्तृत विवरण नहीं मिलता है किन्तु ये नृत्य,संगीत,वादन आदि कलाओं में निपुण एवं प्रकृति प्रेमी थे जो प्रकृति के मनोरम स्थलों पर घूमा करते थे। विद्वानों के अनुसार

यह एक स्त्रैण प्रजाति थी जो सदा श्रृंगारिक गीतों एवं क्रीड़ाओं में मग्न रहती थी।[18]

ठ- गन्धर्व -

महाकवि वाल्मीकि ने प्रायः उत्सवों में अप्सराओं के नृत्यों, गन्धर्वों के गीतों एवं पुष्पों की वृष्टि आदि का वर्णन किया है। गन्धर्व प्रायः आश्रमों एवं पर्वतों पर निवास करने वाली प्रजाति थी। वशिष्ठाश्रम एवं सोमाश्रम इनके निवास से सुशोभित था। § वा0रा0 7·43·14§ पश्चिमी समुद्र के मध्य परियात्र पर्वत पर § वा0रा0 4·42·17§ अरिष्ट पर्वत एवं महेन्द्र गिरि आदि पर भी इनके निवास स्थान पाये जाते थे। ये सामान्यतया रक्तवर्ण के एवं बड़े शूरवीर, पराक्रमी एवं बलशाली थे। इसीलिए रावण ब्रह्मा से इनके द्वारा न मारे जाने का वरदान माँगता है। रामायण में जनसाधारण का मनोरंजन करने वाली स्वच्छन्द सामाजिक व्यवस्था वाली प्रजाति के रूप में इनका चित्रण किया गया है। वाल्मीकि रामायण में भरद्वाज आश्रम में भरत की सेना के सत्कार हेतु एवं राम के राज्याभिषेक के समय इनके गायन-वादन के कार्यक्रमों का उल्लेख इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

ड- अप्सरा-

रामायण में अप्सराओं का बार-बार उल्लेख मिलता है। इनकी उत्पत्ति समुद्र मंथन से मानी जाती थी। ये गायन एवं नृत्य की कलाओं में प्रवीण सामान्य चरित्रों वाली सुन्दर स्त्रियां थी जो अपनी कला द्वारा देवता, मनुष्यों एवं राक्षसों का मनोरंजन किया करती थी। देव एवं दानवों में से कोई भी प्रतिष्ठित व्यक्ति इन्हे पत्नी के रूप में ग्रहण करना अच्छा नहीं समझता था। इसलिए ये साधारण

﴾सबके लिए सुलभ﴿ स्त्रियाँ मानी जाती थीं ﴾वा0रा0 1•45•33-35﴿। वास्तव में ये गणिकाओं एवं वारांगनाओं से भिन्न नहीं थीं।

अप्सराओं का रूपरंग बड़ा ही लावण्यमय एवं आकर्षक होता था। इनके शारीरिक गठन को देखकर कोई भी व्यक्ति सहज ही इनकी ओर आकृष्ट हो सकता था। अप्सराएं संगीत विद्या, विशेषतः नृत्य आदि कलाओं में अत्यन्त निपुण एवं कुशल होती थीं। जल क्रीड़ा, जल-विहार आदि इन्हें विशेष प्रिय था। इसीलिए सरोवरों,नदियों एवं समुद्र तटों पर अप्सराओं के आरामगृह स्थित होने का वर्णन प्राप्त होता है। सुदर्शन पर्वत, क्षीरोद सागर, पम्पा सरोवर, कैलाश पर्वत,मानसरोवर आदि ऐसे ही क्षेत्र थे जहां अप्सराएं नित्य क्रीड़ा एवं विहार किया करती थीं। ﴾वा0रा0 4•40•46,4•43•22﴿। इन्द्र आदि देवताओं के दरबारों में अप्सराएं नृत्य किया करती थीं। यौन बन्धन के शिथिल होने के कारण अप्सराओं के,देवताओं, गन्धर्वों आदि से सम्बन्ध होते थे। ऐसे अनेक उदाहरण रामायण में मिलते हैं जहां एक देवता का कई अप्सराओं अथवा एक अप्सरा का कई देवताओं से प्रेम सम्बन्ध था। रावण,जिसके अनुसार अप्सराओं के पति नहीं होते थे, ने रम्भा आदि अनेक अप्सराओं से बलात् -सम्बन्ध स्थापित करता है। अप्सराओं का प्रयोग देवता लोग किसी तपस्वी एवं ऋषि -मुनि के संयम एवं तपसाधना में विघ्न डालने के लिए भी किया करते थे। इससे स्पष्ट होता है कि नृत्य-गान आदिमेंदक्ष, सुन्दर परन्तु सामान्य चरित्र की स्त्रियाँ थीं जिन्हें देवताओं, असुर, आदि सभी भोग-विलास के लिए प्रयोग करते थे।

द- किरात-

किरात एक महत्वपूर्ण जाति थी जो पर्वतों, समुद्र के किनारों तथा द्वीपों में निवासकरती थी। इनके कर्ण तीक्ष्ण तथा शरीर का रंग सुवर्ण जैसा था।

इनका भोजन कच्ची मछली था। ये देखने में घोर दर्शना, लोहे के समान मुख वाले, वेग से चलने वाले तथा नरभक्षी थे। वा०रा० 4·40 26-28। श्री लासेन ने किरातों की स्थिति पूर्वी नेपाल माना है।[19] किन्तु यह नाम किसी आदिवासी प्रजाति के लिए प्रयुक्त हुआ लगता है जो पर्वतों की कन्दराओं में निवास करती थी। मानव धर्मसूत्र में इन्हें च्युत क्षत्रिय माना गया है।[20]

8·3 सामाजिक संगठन (वर्णव्यवस्था)-

आर्यों में वर्ण व्यवस्था का प्रचलन ऋग्वैदिक काल से ही पाया जाता है। पुरुष सूक्त (ऋग्वेद 10·90) में ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र का उल्लेख मिलता है किन्तु यहाँ "वर्ण " शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है ऋग्वेद में वर्ण शब्द केवल "दास" के अर्थ में प्रयोग किया गया है ।[21]

उत्तर वैदिक काल में त्वचा के रंग के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार वर्णों की गणना की गयी थी। रामायण कालीन आर्यों का समाज भी वर्ण-व्यवस्था एवं जाति -विभाजन में बंटा हुआ था। परन्तु वैदिक काल की ही भाँति -वर्ग विभाजन मुख्यत: गुण- कर्म पर आधारित था, श्रम के वर्गीकरण का माध्यम था एवं जन्म के आधार पर वर्ण विभाजन ऐसी कट्टरता से यह सर्वथा मुक्त था। वाल्मीकि रामायण में ब्राह्मण ,क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार वर्णों का उल्लेख किया गया है जिनके अधिकार कर्तव्य एवं मान्यतायें भिन्न -भिन्न थीं। अयोध्या नगर में चारा वर्णों के लोग निवास करते थे।

(अ) उत्पत्ति-

भौगोलिक दृष्टि से वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति एवं विकास में निम्न घटक सहायक रहे हैं।[22]

1- प्राकृतिक वातावरण

2- सामाजिक आवश्यकता

3- प्रजातिय रंगभेद

4- धार्मिक कट्टरता

1- प्राकृतिक वातावरण-

जब आर्य भारत में आये तो यहाँ की उपजाऊ विस्तृत भूमि उनके हाथ लगी जिस पर संसाधनों की अधिकता थी और वे उनका उपयोग करना चाहते थे। चूँकि आर्य लोग मध्य एशिया के उबड़-खाबड़,संसाधन विहीन क्षेत्र के निवासी थे वे स्वभाव से ही निर्भीक,जोखिम उठानेवाले एवं साहसी प्रकृति के थे। उन दिनों गंगा के मैदानी क्षेत्र पर द्रविड़ आदि अनार्य प्रजातियों का आधिपत्य था जो न केवल संख्या में अधिक थे वरन् आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में आर्यों से कम नहीं थे। अतः आर्यों ने इन्हे परास्त करने के लिए अपने को संगठित करना शुरू किया । चूँकि आर्य समुदाय के सभी व्यक्ति सब कार्य कुशलता पूर्वक नहीं कर सकते थे अतः सामाजिक सुविधा हेतु लोगों के गुण एवं रुचियों पर उन्हें भिन्न-भिन्न कार्य सौंपे गये। इनमें अध्ययन अध्यापन, रक्षा कार्य एवं आर्थिक क्रिया कलाप आदि कार्य सम्मिलित थे जिनके लिए विभिन्न लोगों को लगा दिया गया। कुछ समय बाद इनमें से प्रत्येक कार्य एक विशेष समुदाय से जुड़ गया जिससे चार वर्णों का निर्माण हुआ। आर्यीकरण के दौरान आर्यों का सम्पर्क कतिपय आदिम प्रजातियों से भी हुआ जो इस क्षेत्र के मूल निवासी थे। इनका उपयोग वनों को साफ करने एवं विभिन्न शारीरिक श्रम के कार्यों में

किया गया जिससे आर्य समाज में चतुर्थ वर्ण शूद्रों का प्रादुर्भाव हुआ। रामायण काल से ही इन्हे सबसे नीचे दर्जा दियाजाता रहा है। जहां शेष तीन वर्णों को यज्ञोपवीत धारण करने के कारण द्विज कहा जाता था वहां शूद्रों के लिए इसके धारण पर प्रतिबन्ध था।

2- सामाजिक आवश्यकता-

जनसंख्या की वृद्धि एवं सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ आर्यों की आवश्यकता भी बढ़ती गयी। अतएव आर्थिक संसाधनों के पूर्ण उपयोग हेतु यह आवश्यक माना जाने लगा कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कार्य करे क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के आर्थिक क्रिया कलापों में ही संलग्न हो जाने से शिक्षा ,सुरक्षा आदि कार्यों के गौण हो जाने की संभावना थी एवं सम्पूर्ण आर्य समाज को गंभीर खतरे की आशंका थी, कार्यों के आधार पर आर्य समाज का वर्ण विभाजन अनिवार्य हो गया। इस प्रकार आर्यों ने एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण का प्रयास किया जिसमें रहकर समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने को सुरक्षित महसूस करते हुए अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकता था। साथ ही इस प्रणाली में समाज के सभी घटक एक दूसरे पर निर्भर होने के कारण एक साथ जुड़े हुए थे। परस्पर प्रतिस्पर्धा के कारण प्रत्येक वर्ण अपने क्षेत्र में विशिष्टीकरण प्राप्त करने के प्रयास में लग गया जिससे समाज की बढ़ती आवश्यकता को पूरा किया जाना आसान हो गया एवं अब आर्थिक -सामाजिक विकास को प्रोत्साहन मिला इसी विशेषीकरण की प्रक्रिया के दौरान धार्मिक क्रिया कलापों में संलग्न, अध्ययन ,अध्यापन एवं निरन्तर शोधों से मार्गदर्शन

करने वाला वर्ग ब्राह्मण कहलाया। बाह्य एवं आन्तरिक खतरों से सुरक्षा प्रदान करना स्वस्थ प्रशासन प्रदान करना, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविकोपार्जन को सुअवसर प्राप्त हो सके- क्षत्रियों का कार्य था। सामाजिक व्यवस्था को संचालित किये जाने वाले आर्थिक कार्य जैसे उत्पादन विनिमय एवं वितरण आदि वैश्यों का उत्तरदायित्व था। जबकि प्रथम तीन वर्णों की सेवा-सुश्रुषा अर्थात श्रमिक का कार्य शूद्रों के ऊपर था।

3- प्रजातिय रंगभेद-

आर्यों के प्रजातिय विभाजन का भी वर्णव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ऊपर इस बात की चर्चा की गयी है कि आर्यों के समाज में प्रजातिय एवं रंगभेद की नीति पहले से ही विद्यमान थी। ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य जो मूल आर्यों के वंशज थे "द्विज" कहलाते थे क्योंकि उन्हें यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार प्राप्त था एवं विद्याध्ययन कर सकते थे। इसके विपरीत शूद्रों को ,संख्या में अधिक होने के बावजूद अनार्य जातियों का प्रतिनिधित्व करते थे "एक बार ही उत्पन्न होने वाला" मानकर शिक्षा आदि के अधिकार से वंचित रखा गया। संभवतः आर्य लोग अधीनता स्वीकार कर लेने के बावजूद अनार्य लोगों को बराबरी का दर्जा देने के लिए तैयार नहीं थे बल्कि उन्हें आर्य समाज में सम्मिलित करने के बावजूद हेय एवं निंदनीय मानते थे। मूलरूप से आने वाले आर्यों की संख्या कम थी जिनमें स्त्रियों की संख्या तो और भी कम थी। कालान्तर में वर्णव्यवस्था के प्रारम्भ हो जाने के बाद उनमें से विशेषकर वैश्य वर्ग का सम्पर्क अनार्य स्त्रियों से हुआ। इन वर्णसंकर संतानों को हेय दृष्टि

से देखा जाता था। प्रारम्भ में वर्ण-व्यवस्था के बंधन शिथिल थे एवं विभिन्न वर्णों विशेष कर ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो सकते थे परन्तु. रामायण काल तक इसमें कट्टरता आना शुरू हो गयी थी जिसके परिणाम स्वरूप एक वर्ण के अन्दर ही वैवाहिक सम्बन्ध अच्छा माना जाता था। यही कारण है कि शूद्र कन्या के साथ विवाह करने वाले ब्राह्मण एवं क्षत्रिय को भी पदच्युत हुआ माना जाता था।

4- धार्मिक कट्टरता-

ब्राह्मणों का कार्य मुख्यतः अध्ययन -अध्यापन एवं धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करना रहा है अपने रक्त की शुद्धता बनाये रखने के लिए एवं समाज पर अपनी पकड़ मजबूत बनाये रखने के लिए कालान्तर में इन्होंने कुछ ऐसे नियम बनाये जिससे वे अपनी श्रेष्ठता कायम रख सके इससे ब्राह्मणों एवं अन्य वर्णों के बीच का अन्तर बढ़ता गया यहाँ तक कि ब्राह्मण शूद्रों के सम्पर्क को पाप समझने लगे। यहीं से देश में छुआछूत का आविर्भाव हुआ जो आज के युग का एक अभिशाप है।

रामायण में विभिन्न वर्णों के कार्यों का बड़ा ही विस्तृत वर्णन मिलता है। यह बात स्पष्ट है कि रामायणकाल तक छुआछूत नहीं था। यही कारण है कि शबरी (अरण्यकाण्ड), निषादराज गुह (अयोध्याकाण्ड) तथा गृधराज जटायु आदि के आतिथ्य सत्कार ग्रहण करने में राम, लक्ष्मण एवं भरत जैसे राजकुमारों को कोई संकोच नहीं होता है। परन्तु इस काल में भी शूद्रों

के अधिकार सीमित थे एवं उनके अध्ययन-अध्यापन एवं तपस्या आदि ब्राह्मणोचित कार्यों से वंचित रखा जाता था। शूद्र तपस्वी शम्बूक का वध इसी तथ्य की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित करते हैं।

ब-वर्ण-विभाजन-

रामायण काल में समूचे आर्य समुदाय को वर्णव्यवस्था के आधार पर 4 भागों में बाँटा जाता था।

1- ब्राह्मण-

ऋग्वेद में "ब्रह्म" शब्द का तात्पर्य "प्रार्थना" या स्तुति से है। अथर्ववेद[23]में यह शब्द ब्राह्मण वर्ग के लिए प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त[24] के अनुसार ब्राह्मण की उत्पत्ति आदि पुरूष के मुख से मानी गयी है और उन्हें क्षत्रिय आदि वर्णों से श्रेष्ठ बताया गया है[25] वैदिक काल में ब्राह्मण वर्ग को समाज में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था एवं उन्हें समाज का मस्तिष्क माना जाता था। उत्तर वैदिक एवं रामायण युग में भी ब्राह्मण वर्ण को यही सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त था।

वैदिक युग में निर्धारित ब्राह्मणों के 6 कार्य रामायण युग में भी कायम रहे इनमें पढ़ना,पढ़ाना,यज्ञ करना,यज्ञ कराना ,दान देना और दान लेना सम्मिलित थे। इस प्रकार ब्राह्मण बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतीक थे एवं रामायण काल तक काफी प्रभावशाली बन गये थे। इन्हे राजदरबारों एवं समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। राजा इनकी सेवा एवं रक्षा करना अपना धर्म

समझता था। वेदाध्ययन के साथ-साथ इन्हें राजकुमारों के शिक्षण आदि का कार्य सम्पन्न करना पड़ता था।

रामायण काल यज्ञ प्रधान काल था। अतः स्वयं यज्ञ करना एवं राजाओं के यज्ञ कार्य को सम्पन्न कराना, ब्राह्मणों का मुख्य धर्म था। राजा लोग ऋषियों के यज्ञ में सहायता करते थे और ब्राह्मण एवं क्षत्रिय यज्ञीय कार्य के लिए एक दूसरे पर आश्रित थे।

पौरोहित्य कर्म ब्राह्मणों का आनुवंशिक कर्म था। महर्षि वशिष्ठ इक्ष्वाकुकुल के पुरोहित थे (वा0रा0 2·67·4)। पुरोहित के साथ-साथ में राजा के मंत्री का कार्य भी करते थे। वशिष्ठ राजा दशरथ एवं श्री राम के परामर्शदाता थे जिनकी सलाह पर राज्य के महत्वपूर्ण निर्णय लिये जाते थे (वा0रा0 3·37·15)। कुल पुरोहित का उचित आदर सत्कार करना राजा का नैतिक कर्तव्य था (वा0रा0 2·100·9)। राजा एवं उनके सभासद राजपुरोहित के आगमन पर उसके सम्मान में अपना आसन छोड़कर खड़े हो जाते थे (वा0रा0 2·5·23)। रामायणकालीन पुरोहित को अत्यधिक अधिकार प्राप्त था उसकी राय के बिना राजा कोई कार्य नहीं करता था। राम के राज्याभिषेक (वा0रा0 1·68·14-और 18) एवं विवाह (वा0रा0 2·3·6-7) के समय दशरथ वशिष्ठ से ही राय लेते हैं आपातकाल में पुरोहित महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता था। राजा दशरथ की मृत्यु के बाद वशिष्ठ ही राज्य का सारा कार्य भार संभालते हैं (वा0रा0 1·6·7·4)।

रामायणकालीन ब्राह्मण पांच वर्गों में विभक्त थे।[26]

{अ} वे लोग जो प्रतिदिन स्नान, संध्या, जप होम, पूजा आदि करते हुए शुद्ध सात्विक जीवन व्यतीत करते थे एवं सत्यव्रत का आचरण करते थे। ऐसे अनेक ब्राह्मण अयोध्या में निवास करते थे जो विद्वान एवं अग्निहोत्री थे। शमदम आदि उत्तमगुणों से सम्पन्न तथा छहों अंगों सहित वेदों में पारंगत थे। सत्य मेंपरायण थे ब्राह्मण { वा0रा0 1·5·23} अतिथि पूजक, कृतज्ञ, उदार, शूरवीर, पराक्रमी थे { वा0रा0 1·6·17}।

{ब} वे लोग जो जंगलों में निवास करते थे एवं कष्ट साध्यजीवन व्यतीत कर, फल, फूल एवं पौधों की जड़ों पर जीवित रहकर भगवद्भजन किया करते थे। राम अपने प्रवास के दौरान विभिन्न नदियों एवं सरोवरों के तटों के किनारे रहने वाले ऐसे अनेक ऋषियों से मिले थे { वा0रा0 2·52·71}।

{स} जो सम्पूर्ण वेदांगों का अध्ययन करते थे और सांख्य तथा योग में तल्लीन रहते थे { वा0रा0 2·6·6, 1·12·4-5} ।

{द} जो क्षत्रियों की तरह युद्ध भी करते थे जैसे परशुराम { वा0रा0 1·75·4} अगस्त्य { वा0रा0 3·11·12}, सुधन्वा { 2·100·14 } आदि

{य} वे जो कृषि एवं पशुपालन में लगे थे जैसे त्रिजटा { वा0रा0 2·32· सम्पूर्ण सर्ग}।

इसी प्रकार तपस्या आदि सिद्धियों की प्राप्ति के आधार पर ब्राह्मणों को ऋषि, महर्षि एवं ब्रह्मर्षि आदि की पदवी दी जाती थी। आश्रमों

में रहने वाले ब्राह्मणों का जीवन बड़ा ही पवित्र एवं नियमित होता था। सत्य एवं स्पष्ट वादिता, सच्चरित्रता, इन्द्रिय निग्रह, धर्म परायणता आदि ब्राह्मणों के प्रधान गुण थे। उनका भोजन शुद्ध एवं शाकाहारी होता था तथा मांस एवं मदिरा उनके लिए त्याज्य थे।

रामायणकाल में ब्राह्मण अवध्य माना जाता था एवं ब्रह्महत्या पापकर्म माना जाता था। ब्राह्मण की सम्पत्ति का हरण भी घोर अपराध माना जाता था। समाज में धर्म की स्थापना एवं अन्याय के प्रति विरोध का उत्तरदायित्व ब्राह्मणों का था जिसके लिए वे धरना भी दे सकते थे।

इस प्रकार रामायण काल में ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोपरि थी। इसका मुख्य कारण समाज में उनका उत्तम योगदान था। कुछ विद्वान तो ब्राह्मणों को इस बढ़े हुए प्रभाव के कारण रामायणकाल को ब्राह्मण काल कहते हैं।

2- क्षत्रिय-

ऋग्वेद में क्षत्र शब्द "शक्ति" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[27] कहीं-कहीं यह शब्द क्षत्रियों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है ~~एवं क्षेत्र राज्य शब्द~~ क्षत्रिय केवल पुरुष सूक्त में ही आता है।[28]

रामायणकाल में क्षत्रियों का प्रधान कर्म धर्म स्थापना प्रशासन तथा जनता का बाहरी एवं आन्तरिक संकट से रक्षा करना था (वा0रा0 2·100·42·48)। क्षत्रिय बड़े वीर, पराक्रमी, शक्तिशाली निर्भीक एवं दृढ़ होते थे। ब्राह्मणों की ही

भाँति वे गौर वर्ण के लम्बे, बलिष्ठ कंधे, चौड़े वक्षस्थल एवं हृष्ट पुष्ट शरीर वाले होते थे। वास्तव में ये उन प्राचीन कुलीन आर्य परिवारों के वंशज थे जो विजय अभियानों का नेतृत्व करते थे एवं जिनका मुख्य उत्तरदायित्व जनता को स्वस्थ प्रशासन देना एवं सुरक्षा प्रदान करना था।

शासन करने का अधिकार केवल क्षत्रियों को प्राप्त था। रामायण काल में इस प्रकार का प्रसंग आया है जहाँ राजा द्वारा भूमि के दान पर ब्राह्मणों ने यह कहकर उसे अस्वीकार कर दिया था कि ब्राह्मणों का कार्य वेदाध्ययन है जबकि राज्य चलाना क्षत्रियों का कार्य है (वा०रा०1·13·39-40)। क्षत्रियों के कर्तव्यों में ब्राह्मणों की रक्षा उन्हें, तप, यज्ञ आदि अनुष्ठान निर्विघ्न करने के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का सृजन एवं उन्हें दान आदि देकर सम्मान देना सम्मिलित था। इस प्रकार जहाँ ब्राह्मण अपना समस्त धार्मिक कृत्य क्षत्रिय राजाओं के सहयोग से संपादित करता था वहाँ क्षत्रिय राजाओं के समस्त सामाजिक एवं धार्मिक कार्य ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न किये जाते थे। इस प्रकार रामायणकालीन सामाजिक व्यवस्था में इन उभय शीर्षस्थ जातियों का परस्पर सहयोग स्पष्ट परिलक्षित होता है।

समाज के प्रति अपनी सेवाओं के लिए राजा को प्रजा की आय के छठे भाग को कर के रूप में लेने का अधिकार था। इसी प्रकार राजा को ऋषियों मुनियों द्वारा किये गये तपस्या के चतुर्थांश का भी पुण्य मिलता था। राजा प्रजा पालन एवं दण्ड देने में भरपूर निष्पक्षता कापालन करता था।युद्ध भूमि में भी क्षत्रिय

सैनिक पूर्णरूपेण अनुशासित रहते थे। जहाँ वे शत्रु को पीठ दिखाकर पलायन अपमान जनक समझते थे वहाँ शस्त्र रहित थके हुए, शराब के नशे में डूबे एवं सोते हुए शत्रु को मारना भी पाप कर्म समझते थे।

क्षत्रिय लोग रजोगुण से सम्पन्न होने के कारण भोजन, वस्त्र, आभूषण एवं सजावट के शौकीन थे। निरामिष एवं सामिष भोजन के साथ ये मदिरा पान भी करते थे। बहुमूल्य रेशमी वस्त्रों एवं मणि, माणिक्य तथा सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत रहते थे एवं शान्ति के समय वैभवशाली जीवन व्यतीत करते थे।

3- वैश्य-

रामायण में वैश्य तृतीय वर्ण का बोधक है जो कृषि एवं व्यापार द्वारा धनोपार्जन और देश की आर्थिक स्थिति को सुव्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण योगदान करता था। समाज के आर्थिक स्तम्भ वैश्यों का, राजा काफी देखभाल करता था। वैश्यों के अनिष्ट का निवारण कर उनको इष्ट की प्राप्ति करना राजा का कर्तव्य था (वा0रा0 2·100·48)। वैश्यों का मुख्य पेशा पशुपालन, कृषि व्यापार आदि था। आर्थिक व्यवस्था के आधार स्तम्भ होने के कारण राज कर का अधिकांश भाग ये लोग ही वहन करते थे।

ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की भाँति वैश्यों का भी यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार प्राप्त था एवं वेदों का अध्ययन भी करते थे उक्त तथ्य का प्रमाण रामायण में अंधमुनि के आख्यान से लगता है जिसका पुत्र वेदों में पारंगत था। परन्तु क्षत्रियों की ही भाँति इन्हे पुरोहित कार्य करने का अधिकार प्राप्त नहीं था।

रामायणकाल में वैश्य समाज के महत्वपूर्ण अंग थे । आर्थिक तंत्र के मूलाधार होने के कारण स्थानीय निकायों के सभी महत्वपूर्ण निर्णयों में इनका महत्वपूर्ण योगदान होता था। अयोध्या नगर में अनेक धनवान वैश्यों के वैभव का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में मिलता है।

4- शूद्र-

रामायणकालीन समाज में शूद्रों का स्थान सबसे नीचे था। ये मुख्यतः श्रमिक वर्ग के प्रतिनिधि थे जो गृहकार्य, दासवृत्ति आदि में लगे हुए थे। इनके रूप रंग, आचार-विचार आदि का जो वर्णन रामायण में मिलता है उससे विदित होता है कि ये वे अनार्य प्रजातियाँ थीं जिन्हे आर्यों ने पराजित कर अपने अधीन किया था एवं जिन्हे कभी आर्यों के बराबर का दर्जा नहीं दिया था। पुरुष सूक्त के अनुसार शूद्रों की उत्पत्ति आदि पुरुष के पैर से मानी जाती थी।[29] रामायण काल में ये वेदों के अध्ययन के अधिकारी नहीं थे। यही कारण है कि ये अधिकांशतः अशिक्षित थे। इनकी तपस्या करने के अधिकार पर रामायण में परस्पर विरोधी विचार मिलते हैं। रामायण के अरण्य काण्ड में शबरी द्वारा जो आर्यों के वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं आती थी, तपस्या का प्रसंग मिलता है राम उसे अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखते हैं एवं रामायण में उसके लिए तापसी, तपोधना एवं सिद्धा ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है । इसी प्रकार का प्रसंग अंधमुनि एवं उनकी पत्नी से सम्बन्धित है जो क्रमशः वैश्य एवं शूद्र वर्णों से सम्बन्धित थे एवं जिन्हें तपस्वी कहा गया है। परन्तु उत्तरकाण्ड में शम्बूक नामक शूद्र का राम द्वारा वध के प्रसंग से शूद्रों के तपस्या के अधिकार

पर प्रश्न चिन्ह लगता है। ऐसा ज्ञात होता है कि रामायण के प्रारंभिक काल में शूद्रों के प्रति घृणा की भावनाएं अधिक प्रबल नहीं थी। महाराजा दशरथ के अश्वमेघ यज्ञ में तो शूद्रों को आमंत्रित किया गया था। परन्तु धीरे-धीरे ब्राह्मणों के अधिकार में वृद्धि एवं कर्मकाण्ड की जटिलता के कारण उन्हे हेय भावना से देखा जाने लगा।

रामायण में शूद्रों के खान पान- रहन ,सहन आदि का विस्तृत विवरण तो नहीं मिलता है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे इस समय तक स्पृश्य थे, तीनों वर्णो के साथ मिलकर सहयोग करते थे एवं इनके रहन-सहन कर स्तर सन्तोषप्रद था।

रामायणकालीन वर्णव्यवस्था के सारस्य में महर्षि बाल्मीकि का निम्न श्लोक उद्दृत किया जा सकता है -

> क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद वैश्यः क्षत्रमनुव्रताः ।
> शूद्रा स्वकर्मनिरतास्त्रीन् वर्णानुपचारिणः ।।1·6·19।।

रामायण काल में ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य के अतिरिक्त चाण्डाल, मुष्टिक आदि अस्पृश्य जातियों का भी वर्णन मिलता है। इनका रंग काला शरीर रूक्ष एवं बाल छोटे होते थे। ये नीले रंग के वस्त्र एवं लोहे के आभूषण पहनते थे तथा चिता की भस्म लगाये रहते थे।{वा0रा0 1·58·10-11}। ये समाज में अत्यन्त घृणित कार्य करते थे और इनको कोई भी छूना नहीं पसन्द करता था। सामान्यतया इनके आवास गाँवों के बाहर होते थे।

चाण्डाल की ही भाँति मुष्टिक भी एक अस्पृश्य जाति थी जो कुत्ते का माँस खाते थे एवं शव के वस्त्रों का उपयोग करते थे। वे विकृत आकृतिवाले तथा दुराचारी थे (वा0रा0 1·62·16-17)। रामायण में उपलब्ध आख्यानों से यह पता चलता है कि चाण्डाल आदि अस्पृश्य जातियाँ आर्यों के चार वर्णों के अंतर्गत सम्मिलित नहीं थी। इनसे उन सामाजिक अपराधियों का बोध होता है जो समाज द्वारा बहिष्कृत किये जाने पर एकाकी एवं नारकीय जीवन व्यतीत करते थे जिनका आचरण इतना निन्दनीय था कि आर्य इन्हे अपनी वर्णव्यवस्था में स्थान नहीं दे पाये।

रामायण में प्राप्त छिटपुट प्रसंगों से यह भी पता चलता है कि विभिन्न वर्णों का स्थानान्तरण सम्भव था। विश्वामित्र का ब्राह्मणत्व एवं ब्रह्मर्षि पद की प्राप्ति इसी तथ्य की ओर संकेत है परन्तु उत्तर रामायण काल में इन पर प्रतिबंध उत्तरोत्तर जटिल होता गया।

(स) रामायण काल में सामाजिक न्याय का वितरण-

रामायणकालीन वर्णव्यवस्था एवं सामाजिक संरचना के अध्ययन से तत्कालीन समाज में सामाजिक न्याय की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। रामायणकालीन समाज में तीव्र असमानताएं थी। ब्राह्मण और क्षत्रिय ही समाज के मुख्य संचालक थे जिन्हें मनमानी करने की पूरी छूट थी । विशेषकर ब्राह्मण वर्ग को इतने अधिकार प्राप्त थे कि उच्छृंखल होने पर वह आसानी से इनका दुरुपयोग कर सकता था। इसके विपरीत शूद्र पूरे समाज से कटा रहता था।

शिक्षा आदि के अभाव में वह अपनी उन्नति नहीं कर सकता था। वैश्य अपने वैभव एवं ऐश्वर्य के प्रभाव तथा अधिक संख्या के कारण महत्वपूर्ण स्थान रखते थे परन्तु वे ~~अक्सर~~ प्रायः राजा के कर भार अथवा ब्राह्मणों के कोप का शिकार हो जाया करते थे। इस प्रकार रामायण में सामाजिक न्याय का वितरण लम्बवत था जो ऊपर से नीचे को क्रमशः घटता जाता था । यही कारण है कि जहाँ ब्राह्मणों को गंभीर अपराध करने पर भी मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाता था वहीं वैश्यों एवं शूद्रों को दण्ड देने में राजा कोई संकोच नहीं करता था । वैसे रामायण में जिस राम राज्य का वर्णन किया गया है उसके अन्तर्गत समाज के नीचे से नीचे वर्ग को भी राजा तक अपनी बात पहुँचाने का एवं न्याय पाने की सुविधा थी। संक्षिप्त में हम रामायणकालीन सामाजिक न्याय के उर्ध्वाधर वितरण को निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं।

सामाजिक न्याय घटते दर में ↓		
	शोषक वर्ग	प्रथम अवस्था- ब्राह्मणों को सबसे अधिक। ब्राह्मण द्वारा समाज का शोषण, अन्य सभी वर्गों की अपेक्षा अधिक था।
		द्वितीय अवस्था- क्षत्रियों को अधिक
	शोषित वर्ग	तृतीय अवस्था- वैश्यों को -- कम पर्याप्त श्रम, आर्थिक व्यवस्था के आधार, ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों द्वारा शोषण ।
		चतुर्थ अवस्था- शूद्रों को -- न्यूनतम अत्यधिक शारीरिक श्रम, विकास के न्यूनतम अवसर, ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य वर्गों द्वारा शोषण ।
		पंचम अवस्था- अस्पृश्य वर्ग - चाण्डाल, मुष्टिक, जिनकी स्थिति पशु के ही समान थी।

8.4 सांस्कृतिक तंत्र-

रामायणकालीन सांस्कृतिक तंत्र के अध्ययनार्थ हमें रामायण के पूर्व काल (वैदिक काल) का अवलोकन करना होगा जिसने रामायणकालीन सभ्यता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। महाकाव्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इन दिनों देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रजातियाँ निवास करती थी जिनके खान-पान, वेश-भूषा, आचार-विचार एवं सांस्कृतिक परम्पराओं में पर्याप्त अन्तर था। यहाँ संक्षिप्त रूप में रामायणकालीन संस्कृति के विकास एवं उसकी विविधता पर प्रकाश डाला गया है।

(अ) सांस्कृतिक विकास-

प्राचीन भारतीय साहित्य में सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का बहुत रोचक एवं क्रमबद्ध वर्णन किया गया है। सभ्यता के विकास के आधार पर ही समय को सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग में बाँटा गया है।

सतयुग में लोग यायावरी प्रकृति (कामचारिण:) के थे। वे नदियों, तालाबों एवं समुद्र तटों पर रहते थे और उनका आहार- फल-फूल आदि था उनकी आवश्यकताएँ सीमित थीं एवं प्राकृतिक साधनों के प्रचुरता के कारण उनमें आपसी टकराव की संभावनाएँ कम थी। त्रेतायुग (रामायणकाल) में कल्पवृक्ष (इच्छानुसार फल देने वाला वृक्ष) के नष्ट होने के कारण मानव, भूख, ताप, ठण्ड आदि का अनुभव करने लगा। उसने ताप एवं ठण्ड से बचने के लिए वस्त्र

पहनना प्रारम्भ किया तथा सुरक्षा हेतु आवास बनाने लगा। सभ्यता के विकास के साथ-साथ वह मरुभूमि, पर्वतों, नदी तटों आदि पर {रक्षित बड़े-बड़े घर}, ग्राम {ग्रामीण गांव}, पुर {बाजार केन्द्र} और हर्म्य का निर्माण करने लगा। भूख मिटाने के लिए वह विभिन्न प्रकार की जीवन पद्धति भी अपनाने लगा।[30] द्वापर {महाभारत काल} युग में सांस्कृतिक भूदृश्यों की प्रधानता थी।

रामायण में वर्णित घटना चक्र त्रेतायुग से सम्बन्धित है। जब आर्य लोग सप्तसिन्धु प्रदेश से पूर्व की ओर बढ़ने लगे थे। उन्हें इस प्रवास में मध्य गंगा मैदान के घने जंगलों एवं दलदली क्षेत्रों से गुजरना पड़ा था।[31] यहाँ अनेक आदिम जातियां जंगलों एवं गुफाओं में रहती थीं। आर्य संस्कृति के प्रसार के दौरान उत्तर भारत से जंगल धीरे-धीरे समाप्त होने लगे एवं कृषि प्रारम्भ हुई। किन्तु दक्षिण भारत का विस्तृत क्षेत्र इन दिनों भी घने वनों से आच्छादित था जिसमें वानर, राक्षस, नाग जैसी आदिम अनार्य जातियाँ निवास करती थीं एवं फल-फूल शिकार आदि पर जीवन निर्वाह करती थीं।

भागवत पुराण[32] में भी सभ्यता के विकास की विस्तार से चर्चा की गयी है।

प्राचेतस प्राचीन वर्हि के पुत्र थे। वे जब समुद्र से बाहर आये तो देखा कि सम्पूर्ण पृथ्वी वनों से आच्छादित है अतः उन्होंने आग के द्वारा जंगलों को जलाकर एवं उनको साफकर, स्थल को अपने निवास के योग्य बनाया। राजा सोम जो पहले से ही धरातल पर विद्यमान थे उनको इस कार्य से रोका एवं उन्हें प्रकृति प्रदत्त फलों एवं फूलों पर जीवन निर्वाह करने की सलाह दी। धीरे-धीरे

ये लोग पशुओं एवं अनाजों से परिचित हुए। पश्चिम की ओर जाते समय ये नारायण तीर्थ संगम गये जहाँ मुनि और सिद्ध निवास करते थे वहीं इन लोगों ने अपने आवास बनाये।

मानव सर्वप्रथम जंगलों एवं गुफाओं में निवास करता था और जंगलों से फलमूल प्राप्त कर जीविका चलाता था। जंगली पशुओं का शिकार कर उदरपूर्ति करना उसका अन्य व्यवसाय था। धीरे-धीरे वह जंगलों को साफकर उस पर आवास बनाने लगा एवं कृषि पशुपालन आदि व्यवसायों में रुचि लेने लगा।

मानव प्रारम्भ में जंगलों से प्राप्त 14 अनाजों से परिचित हुआ।[33] वह सर्वप्रथम गाय एवं तदुरान्त भेड़, घोड़ा, हाथी, गदहा आदि पशुओं का पालन शुरू किया।[34] फिर जंगली जीवों जैसे कुत्तों, हाथी, बन्दर, चिड़िया और जलजीवों जैसे- मछलियों आदि का पालन शुरू किया।[35] इसके बाद जीविकोपार्जन के विभिन्न व्यवसाय अपनाये।

(ब) सांस्कृतिक विविधता-

रामायणकालीन भारत आज की ही भाँति सांस्कृतिक विविधताओं से परिपूर्ण था। जहाँ एक तरफ उत्तर के मैदानी क्षेत्र पर आर्य संस्कृति का बोलबाला था वहीं विन्ध्याचल से दक्षिण के समस्त क्षेत्र पर वानर, राक्षस, आदि संस्कृतियों के अनुयायी फैले हुए थे (चित्र 8.3)। आर्यों ने इस समस्त अनार्य क्षेत्र में घुसपैठ के लिए आश्रम संस्कृति का विकास कर रखा था जिनके माध्यम से धीरे-धीरे आर्य संस्कृति का प्रचार इस अनार्य बहुल क्षेत्रों में हो रहा था।

BHARAT VARSHA
MAJOR CULTURAL AREAS
(RAMAYAN PERIOD)
KILOMETRES
300 0 300 600 900
68°E
76°
84°
92°
100°E
36°N
N36°
28°
28°
20°
20°
12°
12°
4°N
72°E
80°
96°E
N4°
ASHRAMS
1 AGASTYA ASHRAM I
2 AGASTYA ASHRAM II
3 AGASTYA ASHRAM III
4 AYODHYA
5 BHARADWAJ ASHRAM
6 CHITRAKUT
7 GAUTAM ASHRAM
8 KAMASHRAM
9 MADHURAPURI
10 MALAD-KARUSH
11 PANCHVATI
12 RISHYASHRINGA ASHRAM
13 SUTIKSHN ASHRAM
14 VALMIKI ASHRAM I
15 VALMIKI ASHRAM II
CULTURAL ZONES
NON-ARYAN
ARYAN PERIPHERAL AREA
ARYAN CORE AREA
RAKSHAS
VANAR
AREA OF CONFLICT

FIG 8 3

क- वानर संस्कृति-

रामायण काल में वानर संस्कृति का प्रसार किष्किन्धा एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों पर था (चित्र 8.3)। राक्षसों की ही भाँति यह भी एक अनार्य प्रजाति थी जो दक्षिण भारत के वन संकुल क्षेत्र में निवास करती थी। वेश-भूषा, खान-पान आदि को देखते हुए हम वानरों को प्रोटो इण्डिक अथवा प्रोटो- आस्ट्रोलायड (Proto-AustrolIod) प्रजाति के अन्तर्गत सम्मिलित कर सकते हैं जिनके वंशज नवप्रस्तर काल (Neolithic Period) में भारत के अधिकांश क्षेत्र पर फैले हुए थे। इस प्रजाति के लोग समूहों में निवास करते थे एवं अपने राजा का बड़ा सम्मान करते थे। चंचल प्रवृत्ति के होने के बावजूद यह एक शान्तिप्रिय प्रजाति थी। छिट-पुट घटनाओं को छोड़कर इन लोगों ने तो तपस्वियों को उत्पीड़ित किया और न ही आर्यों से वैरभाव रखा। आर्यों के सम्पर्क में आकर इन्होंने अपने रहन सहन एवं सामाजिक रीतिरिवाजों में काफी परिवर्तन कर रखा था। इनका दक्षिण में स्थित राक्षसों से भी मैत्री सम्बन्ध था परन्तु राक्षसों के क्रूर कर्मों से ये सदैव उत्पीड़ित होते रहते थे। यही कारण है कि राक्षसों के गढ़ लंका पर राम के अभियान में इन लोगों ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

1- क्षेत्र-

यह संस्कृति दक्षिण के पठारी प्रदेश विशेष कर किष्किन्धा पर्वत के समीपवर्ती भागों में फैली हुई थी। इस विस्तृत भू-भाग में उत्तर का विदर्भ, उत्तर पश्चिम का जन स्थान एवं उपरी गोदावरी नदी की घाटी सम्मिलित थी।

पूरब तथा पश्चिम में इसका विस्तार समुद्र तक था। आज भी मालाबार तट पर स्थित अंगदीपुर इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है । इस प्रजाति के वंशज अंजन पर्वत, मेरू पर्वत, मन्दराचल, उदयाचल पर्वत, अस्ताचल पर्वत, विन्ध्याचल, हिमालय, महेन्द्राचल, कैलाश, पद्मताल वन आदि क्षेत्रों में फैले हुए थे।[36]

2- खान-पान एवं सामाजिक संगठन-

वानरजाति एक आदिम प्रजाति थी जिसका वनों एवं जलाशयों से गहरा सम्बन्ध था। ये लोग फल मूल आदि का आहार करते थे {वा0रा0 4·17·30} । इनमें से कुछ कृषि से भी परिचित थे एवं अनाजों का उपयोग भोजन में करते थे {वा0रा0 4·35·13}। इस प्रजाति के स्त्री एवं पुरूष मधुपान करते थे {वा0रा0 4·33·40}। वानरों का समाज विभिन्न यूथों में विभक्त था जिनके स्वामी को यूथप कहते थे। दर्दुर, केसरी, शतबलि, विनत, सुषेण, गवय, गंधमादन, गवाक्ष एवं नील आदि ऐसे यूथप थे। इन यूथपों के अधिपति को यूथपायूथप {महाधिपति} कहते थे {वा0रा0 6·26·9}। जाम्बवान को महायूथप कहा जाता था {वा0रा0 6·27·11}। सभी के स्वामी को राजा कहा जाता था {वा0रा0·6·28·30}। राजा के सलाहकार मंत्री होते थे। जैसे नल, नील एवं हनुमान सुग्रीव के मंत्री थे {वा0रा0 1·17·32-33}। इस समाज में एक तंत्रात्मक आनुवंशिक शासन था। राजा का पुत्र ही उसकी मृत्यु के उपरान्त सत्ता का अधिकारी होता था।

यद्यपि वानरों की वैवाहिक परम्पराओं के बारे में रामायण में विस्तृत विवरण नहीं मिलता है परन्तु किष्किन्धा काण्ड में प्राप्त विवरण से संकेत मिलता है कि वानरों की सामाजिक व्यवस्था काफी ढीली ढाली थी। एक राजा की कई पत्नियां होती थी। पत्नी पति परायण होती थी परन्तु पति की मृत्यु के उपरान्त वह अन्य पुरूष से विवाह कर सकती थी। बड़े भाई की पत्नी के साथ सम्बन्ध की वानर समाज में मान्यता थी परन्तु छोटे भाई की पत्नी के साथ के सम्बन्ध को बुरा मानाजाता था। अन्तःपुर में अतिथियों एवं सामान्य जनों का प्रवेश निषिद्ध था। स्त्रियां पढ़ी लिखी भी होती थी एवं गृहस्थी के विभिन्न कार्यों में पुरूषों का सहयोग एवं परामर्श देने में सक्षम थीं। वानर समाज में मृतकों का दाह संस्कार आर्यों की ही भांति सम्पन्न होता था [वा0रा0 2.25 सम्पूर्ण सर्ग]। राजाज्ञा की अवमानना करने वाले को कठिन से कठिन दण्ड दिया जाता था।

3- आर्थिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक प्रगति-

वानरों की अर्थ व्यवस्था का आधार वन्य वस्तु संग्रह था। इस प्रजाति के मुखिया एवं राजा लोग ही आभूषणों का प्रयोग करते थे [वा0रा0 33.23]। वानर राज बालि सुवर्ण की माला पहनता था [वा0रा0 4.11.61] यह प्रजाति सुगन्धित पदार्थों एवं सौन्दर्य प्रसाधनों का भी प्रयोग करती थी। वानर लोग अगरू और कमल के फूलों का भी प्रयोग करते थे। वन्य जाति होने के बावजूद सांस्कृतिक दृष्टिकोण से इनमें उदात्त मानवीय गुण विद्यमान थे। ये भवन, ग्राम एवं

नगर निर्माण कला से भी परिचित थे जिसका स्पष्ट आभास किष्किन्धापुरी की समृद्धि के वर्णन से ज्ञात होजाता है यह नगरी नाना प्रकार के रत्नों से भरी थी। यहाँ की सड़के लम्बी एवं चौड़ी थी। नगर में कई मंजिलों के ऊँचे-ऊँचे महल बने हुए थे। पुरी में फल एवं फूलों से सम्पन्न अनेक मनोरम वृक्ष लगाये गये थे। सुग्रीव के अन्तःपुर में सोने एवं चांदी के पलंग तथा उन पर बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे। अन्तःपुर में संगीत की मधुरध्वनि से वानरों की ललित कलाओं के प्रति अभिरुचि का पता चलता है। वानर स्त्रियाँ नुपुर एवं करधनी धारण करती थीं ﴾ वा०रा० 4·13 सम्पूर्ण सर्ग﴿। वानर अस्त्र शस्त्र के निर्माण एवं प्रयोग से अपरिचित थे। नख, दांत ,और मुख ही उनके अस्त्र-शस्त्र थे ﴾ वा०रा० 6·4·27﴿। वानरों में राजा एवं अभिजात्य वर्ग का जीवन बड़ा ही विलास पूर्ण होता था जबकि सामान्य वर्ग में अभाव एवं गरीबी थी। सामान्य वानर वर्ग वस्त्रों को छोड़कर, रत्न-आभूषणों आदि से बिल्कुल परिचित नहीं था। उसका जीवन बड़ा ही सादा एवं साधारण होता था। उन्मुक्त एवं चंचल प्रवृत्ति के कारण ये लोग भ्रमणशील जीवन व्यतीत करते थे।

﴾ख﴿ राक्षस संस्कृति-

उत्तरी भारत की आर्य संस्कृति के विपरीत रामायण काल में दक्षिणी भारत के क्षेत्र मे राक्षस संस्कृति का प्रसार था जो सभ्यता में पर्याप्त विकसित रूप मे थी।[37] वास्तव में यह वह अनार्य संस्कृति थी जिसके अनुयायी आर्यों के आगमन के पूर्व भारत के सम्पूर्ण क्षेत्र पर फैले हुए थे। आर्यों ने गंगा घाटी में प्रवेश के साथ इन्हें या तो दक्षिण के वनाच्छादित प्रदेश की ओर भगा

दिया अथवा दासों एवं सेवकों के रूप में इन्हें अपनी वर्णव्यवस्था में शूद्रों का दर्जा प्रदान किया। रामायणकाल तक यह संस्कृति सिमट कर लंका एवं द०भारत के समुद्र तटीय क्षेत्रों पर अवशिष्ट रह गयी थी ﴾ चित्र 8·3﴿। इसके अतिरिक्त अन्दमान निकोबार, बोर्नियो, सुण्डा और हिन्द महासागर के अन्य द्वीपों में भी इनके वंशज फैले हुए थे । रावण की माता जिसका नाम सालकण्टका था निश्चित रूप से अनार्य एवं आदिम प्रजाति की थी। इस प्रजाति के लोग अगस्त्य ﴾ एक महर्षि﴿ के दक्षिण प्रवास के पूर्व से ही लंका में बसे हुए थे।

यद्यपि राक्षसों का मुख्य क्षेत्र लंका था किन्तु इनका प्रभावजनस्थान ﴾ वा०रा० 7·24·36-42﴿ ﴾जिसके अधिपति खर और दूषण थे﴿ एवं पूर्वी विन्ध्य क्षेत्र ﴾जहाँ ताड़का,सुबाहु एवं मारीच का दबदबा था﴿ आदि के भागों में भी था,यहीं से ये राक्षस गंगा के मैदानी क्षेत्रों में आक्रमण किया करते थे। लवणासुर की मधुपुरी राक्षसों के प्रभाव के अन्तर्गत स्थित थी। राक्षसों एवं आर्यों के बीच युद्ध का प्रमुख कारण एक दूसरे के बढ़ते प्रभाव को रोकना तथा अपने प्रभाव क्षेत्र को प्रसारित करने के सम्बन्धित था।

अगस्त्य के पूर्व तक आर्यों का प्रसार समूचे गंगा के मैदानी क्षेत्र तक हो चुका था किन्तु विन्ध्य के दक्षिण अनार्य प्रजातियों का बोलबाला था। अगस्त्य पहले आर्य थे जो विन्ध्य पर्वत को लांघकर ﴾ वा०रा० 3·11·81﴿ जनस्थान क्षेत्र में गोदावरी नदी के उत्पत्ति स्थान के समीप अपना निवास स्थान बनाया तथा उस क्षेत्र में राक्षसों के एकाधिकार को समाप्त कर दिया। तब से धीरे-धीरे सुनियोजित ढंग से कई मुनि दक्षिण की ओर जानेलगे और गोदावरी

के उत्तर आर्यों के कई उपनिवेश बन गये। §वा0रा0 3·11·81§। रामायण में राम के दक्षिण दिशा में प्रवास के दौरान विभिन्न तपस्वियों ने राक्षसों से उत्पीड़न की शिकायत कर उन्हें नष्ट करने की प्रार्थना की थी। राम ने उनको रक्षा का आश्वासन देते हुए इस समस्त क्षेत्र से राक्षसों को नष्ट करने का वादा किया था। यही कारण है कि अगस्त्य ने राम को दक्षिण में अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उन्हें राक्षसों के बारे में बहुत सी गुप्त जानकारी प्रदान की। इस प्रकार रामायण के कथानक को आर्य अनार्य संस्कृति के टकराव के संदर्भ में भी व्याख्या की जा सकती है।

2-खान पान-

राक्षसों के खान पान आर्यों से भिन्न थे जिनकी चर्चा वर्तमान अध्याय के प्रमुख प्रजातियाँ, जनजातियाँ § *Tribes* §शीर्षक के अन्तर्गत की गयी है। राक्षस माँस भक्षी ही नहीं बल्कि नरमांस भक्षी भी थे § वा0रा0 3·72·23§। दण्डक में राक्षस समुदाय का मुखिया मारीच मुनियों का माँस खाता था। § वा0रा0 3·38·37§। विराधराक्षस भी मुनियों के माँस को खाकर जीवित रहता था § वा0रा0 3·2·12§। हनुमान ने रावण की पाकशाला में विभिन्न पशुओं के माँस को देखा था। राक्षस एवं राक्षसियाँ मानव रक्त को बड़े चाव से पीते थे। राक्षसों में मद्यपान का भी खूब प्रचलन था। रावण की मधुशाला विभिन्न प्रकार की शराबों से भरी थी। इससे यह प्रतीत होता है कि राक्षस आदिम प्रजातियों के वंशज थे जिनमें माँस भक्षण एवं सुरापान आदि का खूब प्रचलन था।

3- धर्म-

राक्षस लोग यज्ञ करते थे। मेघनाद युद्ध में सफलता तथा आन्तरिक बलवृद्धि हेतु यज्ञकार्य करता है {वा0रा0 6·80·5-16}। रावण को एक महान यज्ञकर्ता बताया गया है {वा0रा0 6·109·23}। लेकिन ये यज्ञ तमोगुणी विचारधाराओं से प्रेरित होते थे। निकुम्भिला राक्षसों की देवी थी {वा0रा0 5·24·44}। राक्षस आर्यों के धर्म के विरोधी थे। वे न केवल आर्यों के यज्ञ को ही नष्ट करते थे बल्कि यज्ञकर्ता एवं यज्ञ में भाग लेने वाले लोगों को भी मार डालते थे {वा0रा0 3·32·20}। दण्डकारण्य में मुनियों ने राम को राक्षसों द्वारा मारे गये तपस्वियों की हड्डियों के ढेर को दिखाया था {वा0रा0 3·6·16}। राक्षसों में यौन सम्बन्ध शिथिल होता था। ये दूसरे की स्त्रियों के अपहरण तथा उनके साथ बलात्कार में संकोच नहीं करते थे।

4-वस्त्रभूषण-

राक्षस आर्यों की ही भाँति सुन्दर वस्त्रों के प्रेमी थे इनके आभूषणों की चर्चा पीछे की जा चुकी है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि राक्षस आर्यों के समान ही विकसित थे एवं वे सुन्दर रेशमी एवं क्षौम वस्त्रों को धारण करते थे।

5- स्थापत्यकला-

रावण की राजधानी लंकापुरी चारों तरफ से खाइयों से घिरी हुई पूर्णतः सुरक्षित थी। नगर के अधिकांश भवन पक्के एवं सुवर्णमंडित थे। लंका का

दुर्ग दुर्भेद्य एवं नगर निर्माण प्रभावोत्पादक था। लंकापुरी में रथ्याएं, उपरथ्याएं और चर्चाएं बनी थी। नगर के मध्य राज मार्ग पर हरी घासें फल एवं पुष्प से आपूर्ण सुगन्धित वृक्ष तथा उद्यान सुशोभित थे। स्थान-स्थान पर वेदिकाएं एवं सभास्थल स्थित थे। नगर के बाहरी फाटक सोने के बने हुए थे तथा उनकी दीवारें लता- बेलों के चित्र से सुशोभित थीं। रावण की लंकापुरी को रामायण में देवपुरी के समान बताया गया है। इस नगरी के मकान बड़े ऊँचे- ऊँचे थे। राक्षस उद्यान निर्माण कला में दक्ष थे जिसका विस्तृत वर्णन अशोक वाटिका के भव्य वर्णन से प्राप्त होता है॥ वा0रा0 5·14 सम्पूर्ण सर्ग ॥।

पुष्पक विमान के विवरण से राक्षसों की वैज्ञानिक प्रगति का आभास होता है। यह विमान मन की गति से ,सवार लोगो की इच्छानुसार अबाध गति से सर्वत्र विचरण कर सकता था। इसमें नीलम, चाँदी और मूँगों के आकाशचारी पक्षी बनाये गये थे तथा नाना प्रकार के रत्नों से विचित्र वर्ण के सर्पों का निर्माण किया गया था अच्छी जाति के घोड़ों के समान ही सुन्दर अंग वाले अश्व भी बनाये गये थे। इस विमान पर मनोहर पंख ~~वाले~~ वाले बहुत से पंछी निर्मित थे मूँगे एवं सुवर्ण के बने हुए फूलों से युक्त थी ॥ वा0रा0 5·7· सम्पूर्ण सर्ग॥ । आर्यों की भाँति राक्षस भी गायन, वादन तथा नृत्य कला के अत्यन्त प्रेमी थे। रावण की सभा में मुरज, मृदंग इत्यादि वाद्य यंत्रों एवं अंगनाओं के गीत एवं नृत्य आदि का जो सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है वह उनकी संगीत कला की मर्मज्ञता का यथेष्ठ परिचय देती है ॥ वा0रा0 6·10सम्पूर्ण सर्ग॥

इसी तरह लंकापुरी की समृद्धि का वर्णन रामायण में कई स्थलों पर बिखरा पड़ा है इससे यह आभास होता है कि राक्षस संस्कृति रामायण काल में विकसित अवस्था में पहुँच चुकी थी परन्तु इनमें मानवीय गुणों का नितान्त अभाव था। भौतिक वैज्ञानिक प्रगति में तो आर्यों से भी आगे दिखायी देते थे।

ग- आर्य संस्कृति-

वाल्मीकि रामायण में आर्य संस्कृति का बड़ा विस्तृत वर्णन मिलता है। राम की कहानी आर्य संस्कृति की कहानी है जिसके माध्यम से महर्षि वाल्मीकि ने आर्य संस्कृति की विशेषताओं को प्रतिभासित करने का का प्रयास किया है।

1- क्षेत्र विस्तार-

यह संस्कृति मुख्य रूप से आर्यावर्त (सिन्धु-गंगा मैदान) में फैली हुई थी (चित्र 8·3)। आश्रम संस्कृति भी आर्य संस्कृति के अग्रिम केन्द्र के रूप में कार्य करते थे जिनके माध्यम से आर्य-संस्कृति का प्रचार-प्रसार अनार्य क्षेत्रों में होता था।

2- सामाजिक संगठन-

इसी अध्याय के वर्णव्यवस्था शीर्षक के अन्तर्गत आर्य-समाज के चारो वर्णों का विस्तृत विवेचन किया गया है। यहाँ हम इनका केवल मात्र संकेत देना ही अपेक्षित समझते हैं।

आर्यों का मुख्य उद्देश्य मनुष्य में संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास का था। इसी कारण आर्य ऋषियों ने मानव जीवन को कई भागों में बांटा रखा था जिसे वे "आश्रम" कहते थे। रामायण से पूर्वकाल में इन आश्रमों की संख्या केवल तीन थी।[38] जिनकी संख्या रामायण काल में बढ़कर चार हो गयी, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास। इस आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ग के लोग ही सम्मिलित थे। प्रत्येक आश्रम, जीवन की ,एक विशेष अवस्था का द्योतक था जिसमें व्यक्ति को विद्याध्ययन चरित्र निर्माण ,धनोपार्जन ,समाजसेवा एवं भगवद् भजन का पूर्ण अवसर प्राप्त होता था।[39]

अ- ब्रह्मचर्य आश्रम-

ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश, बालक उपनयन संस्कार के साथ-साथ करता था। इस दौरान उसे ब्रह्मचारी कहा जाता था।[40] यह आश्रम मुख्यतः विद्या-अध्ययन, चरित्र निर्माण एवं गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों को वहन करने की योग्यता के विकास से सम्बन्धित था। इसके अन्तर्गत ब्रह्मचारी 25 वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे एवं अत्यंत सादा जीवन व्यतीत करते हुए शारीरिक एवं बौद्धिक श्रम करते थे। इस दौरान वे मृगचर्म धारण करते थे, श्रृंगार आदि से दूर रहते थे, शाकाहारी भोजन करते थे एवं गुरू की सेवा सुश्रुषा में तत्पर रहते थे। ये सभी कार्य ऋषि- मुनियों के आश्रमों में सम्पादित होते थे। इन ऋषियों को कुलपति कहते थे। अगस्त्य, भरद्वाज एवं वाल्मीकि आदि ऐसे ही कुलपति थे जिनके आश्रम अनेक ब्रह्मचारी बालकों से भरे रहते थे।

ब- गृहस्थ आश्रम -

शिक्षकाल पूर्ण करने के बाद ब्रह्मचारी विवाह संस्कार के बाद गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। इस आश्रम के मुख्य कर्म धनोपार्जन ,वंशवर्धन, पत्नी एवं परिवार के अन्य सदस्यों की देख रेख, आतिथ्य सत्कार , पंचयज्ञ आदि थे।वाल्मीकि ने इसे भोगकाल भी कहा है {वा०रा० 2·12·84}। गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों से श्रेष्ठ माना गया है {वा०रा० 2·106·22}। क्योंकि यह अन्य आश्रमों की आधार शिला है इसमें रहकर मनुष्य न केवल भौतिक सुखो का भोग करता है वरन् अपने पौरूष एवं बुद्धि से राष्ट्र एवं समाज के विकास में महत्वपूर्ण योगदान करता है। इस आश्रम में गृहस्थ अपने सम्पूर्ण धार्मिक कार्यों एवं यज्ञों का सम्पादन अपनी धर्मपत्नी के सहयोग से करता है। निष्ठापूर्वक गृहस्थ धर्म के निर्वाह को सभी सुखों का आधार कहा गया है।

{स} वानप्रस्थ आश्रम-

गृहस्थ आश्रम के पश्चात ब्राह्मण तथा क्षत्रिय अपने पुत्र पर कुटुम्ब एवं राज्य का सम्पूर्ण भार सौंपकर नगर से बाहर वन में जीवन यापन करने चले जाते थे । अग्नि होत्र एवं आतिथ्य सत्कार वानप्रस्थों का प्रधान कर्तव्य माना जाता था। इनका जीवन बड़ा ही सादा एवं भोग-विलास से विहीन होता था। एक वानप्रस्थी दिन में पाँच बार अग्निहोत्र करता था एवं अतिथि के आने पर उसे उचित सत्कार एवं भोजन कराता था ।

द- सन्यास आश्रम-

रामायण में इस आश्रम के लिए सन्यास शब्द के बदले भिक्षु एवं परिव्राजक शब्द प्रयुक्त किये गये हैं (वा०रा० 3•46•2)। इसके अन्तर्गत लोग वृद्धावस्था में वन एवं एकान्त क्षेत्रों में निवास करते हुए, ईश्वरोपासना करते थे और मोक्ष प्राप्ति के लिए सत्कर्म करते थे।

आर्यों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन काल में 16 संस्कारों के बीच से गुजरता है* जिनमें उपनयन, विवाह आदि संस्कारो का विशेष महत्व है। पिता की आज्ञा से गुरूजनों एवं सम्बन्धियों के सम्मुख वैदिक मन्त्रोच्चारण सहित अग्नि की प्रदक्षिणा करते हुए जो विवाह सम्पन्न होता उसे प्राजापत्य विवाह कहते थे। उच्चकुलीन आर्यों में इसीप्रकार के विवाह का प्रचलन था। वर एवं वधू का यह सम्बन्ध (वैवाहिक सम्बन्ध) धर्म सम्बन्ध कहलाता था। रामायण में राम आदि चारो भाइयों का विवाह इसी विधि के अनुसार सम्पन्न हुआ था। इस प्रकार चार वर्ण, चार आश्रम, एवं षोडश संस्कार आर्य संस्कृति के मुख्य आधार थे जो इसे तत्कालीन अनार्य संस्कृति से इसे पृथक करते थे।

---

*गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, विष्णुबलि, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, व्रत, गोदान, समावर्तन, विवाह एवं अंत्येष्टि।

3- अर्थव्यवस्था, खान पान एवं श्रृंगार प्रसाधन -

कृषि एवं पशुपालन रामायणकालीन आर्य समाज की अर्थव्यवस्था के मूलाधार थे जिसकी विस्तृत चर्चा इसी शोध प्रबन्ध के छठे अध्याय में की गयी है।

आर्यों के भोजन में भक्ष्य, भोज्य, लेह्य एवं चोष्य पदार्थ प्रयुक्त होते थे। कृषि एवं पशुपालन की प्रधानता के कारण भोजन में अन्न एवं पशु उत्पाद पदार्थों की ही प्रधानता रहती थी। उच्चवर्ण (ब्राह्मण) के भोजन में मांस एवं मदिरा का प्रयोग वर्जित था किन्तु क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों के लिए इन वस्तुओं के उपयोग पर प्रतिबंध नहीं था। लोग सूती, रेशमी, ऊनी चर्म एवं वल्कल वस्त्र पहनते थे (देखिए अध्याय 6 का वस्त्र उद्योग)।

रामायण में अनेक श्रृंगार सामग्रियों का वर्णन मिलता है। विशेष उत्सव पर्व एवं राजकीय पुरुष के सम्मानार्थ सामान्य लोग अत्यन्त उल्लासपूर्वक विविध आभूषणों एवं प्राकृतिक श्रृंगार सामग्रियों का प्रयोग करते थे। राजा रानी एवं राज परिवार के लोग उत्तम वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित रहते थे।

4- सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक उन्नति-

रामायणकालीन लोग सुसंस्कृत थे। वे भवन निर्माण कला, वस्त्र उद्योग, लौह उद्योग आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति कर चुके थे। बहुधा अधिकांश

उपयोग की वस्तुएं स्थानीय तरीके से तैयार की जाती थी (देखें अध्याय 6 उद्योग एवं वास्तुकला)।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आर्य संस्कृति रामायणकाल तक काफी विकसित अवस्था में पहुँच चुकी थी जिसके अन्तर्गत भौतिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास में भी देश काफी आगे था।

घ- आश्रम संस्कृति-

रामायणकाल में आश्रम संस्कृति नागर संस्कृति के समान ही महत्वपूर्ण रही है। इस काल में लगभग एक तिहाई जनसंख्या ब्रह्मचारी, ऋषि, तपस्वी और वानप्रस्थी आश्रमों में रहकर आध्यात्मिक चिन्तन करती थी। इस काल में तप, व्रत, एवं यज्ञ जो धार्मिक जीवन के प्रमुख अंग थे जो आश्रमों में सम्पादित होते थे। प्रत्येक व्यक्ति गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ एवं सन्यास हेतु भगवद्भजन एवं एकान्त स्थलों की तलाश में वनों एवं पर्वतीय क्षेत्रों में रहना पसन्द करता था। रामायणकालीन ये आश्रम, नगर से दूर अरण्यों के अंचल में स्थित थे। यहां का वातावरण शान्त, प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण एवं मनोरम होता था। (वा0रा0 2·52·98) आश्रमों का वातावरण नगरीय कोलाहल से दूर सुखद एवं आनन्ददायक होता था (वा0रा0 2·56·14)। आश्रम संस्कृति के कुछ आवश्यक अंग निम्न प्रकार हैं।

(i) विविक्त (एकान्त प्रदेश)-

आश्रम पूर्णरूपेण निर्जन वन में नहीं रहते थे बल्कि ऐसे स्थानों पर पाये जाते थे जहां जन साधारण का आवागमन सदा संभव नहीं था। परन्तु

आवश्यकता होने पर कभी-कभी इनसे सम्पर्क किया जा सकता था।

(ii)पर्णकुटी-

आश्रम का वाह्यभाग पर्णकुटी कहलाता था। रामायणकालीन लोग आश्रम निर्माण कला में दक्ष थे। वे मिट्टी, बाँस, कुश, सरकण्डे एवं पत्तों से पर्णकुटी बनाते थे [वा0रा0 3·15·21-23] जिसका स्पष्ट संकेत पंचवटी में लक्ष्मण द्वारा बनाये गये पर्णशाला से मिलता है।

(iii)उटज-

आश्रम का अभ्यन्तर भाग उटज कहलता था जो ऋषि/मुनि का व्यक्तिगत निवास स्थान होता था।

(IV)आश्रममण्डल/ तपोवन-

तपस्वियों की बस्ती को आश्रम मण्डल कहते थे [वा0रा0 3·1·1]। यहाँ कई पर्णकुटियाँ बनी रहती थी एवं अनेक तपस्वी निवास करते थे।

(V) तपशालय-

बस्ती के अन्तर्गत तपस्वियों के पृथक-पृथक निवास तपशालय [वा0रा0 2·99·6] कहे जाते थे।

i) अग्निशाला-

इसे अग्निशरण [वा0रा0 3·1·4 और 2·91·11] भी कहते थे यहाँ ऋषिगण अपने अग्निहोत्र संपादित करते थे। इस अग्निशाला में एक वेदी

बनायी जाती थी जिसका मुख पूर्व की ओर होता था। अग्निशाला एक विस्तृत भवन में होती थी जिसमें एक साथ कई लोग प्रवेश कर सकते थे।

(VII) अतिथिशाला-

आश्रमों में अभ्यागतों के निवास हेतु अतिथिशाला भी बनायी जाती थी (वा0रा0 3·1·15 और 2·54·18)।

(VIII) अजिर -

आश्रम में कुटी, अग्निशरण आदि भवनों के शेष मध्यभाग अजिर या प्रांगण कहलाते थे। अरण्यकाण्ड में राम ऐसे अनेक आश्रम देखते हैं जिनके प्रांगण में शिष्यों द्वारा लायी गयी कुश समिधा तथा लकड़ी इत्यादि के ढेर रखे हुए थे।

(X) कुलपति-

सम्पूर्ण आश्रम मण्डल का एक मुख्य अधिपति होता था जिसे कुलपति कहते थे (वा0रा0 2·116·4)। वह वयोवृद्ध, ज्ञानी ,तपस्वी,नियतात्मा और दया दाक्षिण्यादि सद्गुणों से युक्त होता था। इसके अधीन अनेक शिष्यगण,मुनि एवं तपस्वी दूर-दूर से आकर निवास करते थे। भरद्वाज, अगस्त्य, वाल्मीकि, अत्रि आदि रामायणयुग के प्रख्यात कुलपति थे। इनका समस्त जीवन धार्मिक अनुष्ठानों विशेषकर यज्ञादि के सम्पादन में व्यतीत होता था।

1- आश्रम निर्माण में सहायक कारक-

रामायण युग के आश्रमों के निर्माण के लिए निम्न सुविधाएं आवश्यक थीं।

(i) जल की सुविधा-

आश्रम, प्राय: नदी या जलाशयों के समीप ही पाये जाते थे क्योंकि इनके किनारे आश्रम वासियों को स्नान, पूजा एवं नित्यक्रिया हेतु आसानी से जल उपलब्ध हो जाता था।

(ii) वनप्रान्त-

आश्रमवासी कृषि या अन्य कोई व्यवसाय नहीं करते थे जंगलों से प्राप्त फलमूल ही उनकी जीविका के मुख्य साधन थे। गायें भी इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती थीं। अत: गोपालन एवं फल फूल के लिए वनप्रान्त का होना आवश्यक था। रामायणकाल में वनों की अधिकता एवं जनसंख्या की विरलता भी इस संस्कृति के विकास में सहायक थी।

2- आश्रमों का वितरण-

रामायण काल के सभी आश्रम वन प्रान्त एवं नदियों के किनारे फैले हुए थे जिनकी मुख्य पेटी उत्तर में सरयू नदी के लेकर दक्षिण में गोदावरी नदी तक फैली हुई थी। इसमें दण्डकारण्य (वा0रा0 3·1·1) नर्मदा ,तट (वा0रा0 7·32·1), गंगातट (वा0रा0 7·47·15) चित्रकूट (वा0रा0 2·56·15), अगस्त्य आश्रम (वा0रा0 3·11·79), वशिष्ठ आश्रम (वा0रा01·51·23-28), अत्रि आश्रम (वा0रा0 2·117·5), शरभंग आश्रम, (वा0रा0 3·5·3),वाल्मीकि आश्रम (वा0रा0 7·47·15-17), भरद्वाज आश्रम (वा0रा02·90·1) गौतम

आश्रम (वा०रा० 1·48·15), सुतीक्ष्ण आश्रम (वा०रा० 3·7·1),शबरी आश्रम (वा०रा० 3·74·4) ,सिद्धाश्रम (वा०रा० 1·29·4-5),कामाश्रम (वा०रा० 1·23·15-22) आदि प्रमुख हैं।

(I) भरद्वाज आश्रम-

प्रयाग में गंगा यमुना के पवित्र संगम पर यह आश्रम विद्यमान था। इस आश्रम का अवशेष आज भी इसी नाम से इलाहाबाद में आनन्दभवन के समीप स्थित है।

(II) वाल्मीकि आश्रम-

यह आश्रम गंगा जी एवं तमसा नदी के संगम स्थल के बीच तमसा नदी के तट पर गंगा जी से दक्षिण स्थित था। वर्तमान संदर्भ में यह प्रयाग से लगभग 35 कि·मी· दक्षिण सीतामढ़ी के समीप स्थित था। कुछ लोगो के अनुसार इसकी स्थिति कानपुर से 20 कि·मी· दूर बिठूर में बतायी जाती है।

(III) गौतम आश्रम-

(वा०रा० 1·45·15) गौतम ऋषि के नाम पर इस आश्रम का नाम गौतम आश्रम पड़ा। रामायण के अनुसार यह स्थान मिथिला के समीप स्थित था। आधुनिक तिरहुत में जनकपुर से लगभग 40कि·मी· दक्षिण पश्चिम जरैल परगने के अहियारी गांव का अहल्या स्थान रामायणकाल में गौतम आश्रम कहलाता था।

(V) कामाश्रम-

(वा०रा० 1·23·15-22) रामायण में कामाश्रम का अर्थ है कामदेव का आश्रम। इसी आश्रम पर कामदेव का शरीर भगवान शंकर के हुंकार

द्वारा नष्ट किया गया था जिससे यह आश्रम कामाश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी स्थिति वर्तमान समय में बलिया जिले में थी जो रामायणकाल में सरयू एवं गंगा के संगम पर स्थित था।

(V) विश्वामित्र आश्रम-

रामायण युग का यह एक प्रसिद्ध आश्रम था जो कौशिकी (कोसी) नदी के तट पर आधुनिक बक्सर के समीप स्थित था।

(Vi) सिद्धाश्रम-

रामायक काल में यह आश्रम के पूर्व से ही विद्यमान था। रामायण के अनुसार इसी स्थान पर विष्णु ने देवों के कल्याण के लिए वामन रूप धारण करके बलि को बांधि लिया था (वा०रा० 1·29·4-5)। आधुनिक शाहाबाद जिले में बक्सर के पश्चिमी भाग में इस आश्रम की स्थिति बतायी जाती है।

(Vii) ऋष्यश्रृंग आश्रम-

यह आश्रम भागलपुर से 43 कि·मी· परस्थित ऋषिकुण्ड स्थान पर स्थित था।

(Viii) अत्रि आश्रम -

अत्रि आश्रम चित्रकूट के समीप ही है। सतना से चित्रकूट जाने वाली बस की सड़क से प्राय: 3 मील हटकर चित्रकूट धाम क्षेत्र में स्थित सती

अनुसूया का स्थान रामायणकालीन अत्रि आश्रम था।

(IX) शरभंग आश्रम-

शरभंग आश्रम चित्रकूट से सतना जाने वाली बस की सड़क पर ही है विराध कुण्ड टिकरिया रेलवे स्टेशन के समीप है[41]- जहाँ से होकर राम शरभंग मुनि के आश्रम पर गये थे। अतः शरभंग आश्रम, टिकरिया रेलवे स्टेशन के समीप ही स्थित है।

(X) सुतीक्ष्ण- आश्रम-

यह आश्रम मन्दाकिनी नदी के स्त्रोत के समीप बुन्देलखण्ड के पन्ना जिले में है। आजकल इसे "सारंग" नाम से जानते हैं।[42] रामायण काल में यह आश्रम सर्वगुण सम्पन्न ,फलफूल जल तथा हरिकुण्ड से परिपूर्ण था।

(XI) अगस्त्याश्रम-

रामायण में इस ऋषि को दक्षिण दिशा {विन्ध्य पर्वत} से दक्षिण} का विजेता कहा गया है तथा इनके कई आश्रमों का उल्लेख है। अगस्त्य ऋषि का एक आश्रम पन्ना जिले के वर्तमान लखुराबाग के स्थान पर था।[43] इनका दूसरा आश्रम नासिक से द०पू० 40 कि०मी० के दूर स्थित है। इनका तीसरा आश्रम मलय पर्वत{कर्नाटक} पर भी बताया गया है {चित्र 6·3}

(XII) मतंगाश्रम-

यह आश्रम दक्षिण दिशा में पम्पासर {किष्किन्धापुरी के समीप {वर्तमान बेलारी के पास} के तट पर स्थित था। मतंग ऋषि की मृत्यु

के बाद शबरी ही इस आश्रम की स्वामिनी थी। श्री के वसु के अनुसार गजेन्द्र गढ़, एवं तुंगभद्रा के संगम पर मतंग मुनि का आश्रम स्थित था।

3- आश्रम की सामग्रियां-

वृसी-उदुम्बर काष्ठ का बना आसन।

विष्टर- दर्भ का बना आसन "विष्टर" कहलाता था।

चीर - घास का बना अति साधारण कोटि का वस्त्र।

जटाबंधन- जटाएँ बांधने की डोरी।

वल्कलवस्त्र- वृक्ष की छाल जो वस्त्र का कार्य करता था।

कृष्णाजिन- काला मृग चर्म।

कोपीन - लंगोट को कोपीन कहते थे।

कुठार - कुल्हाड़ी जो लकड़ी आदि काटने के काम आती थी।

कषायवस्त्र- गेरुआ वस्त्र।

काष्ठ रज्जु-लकड़ी आदि बांधने की रस्सी।

यज्ञभांड - यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले बर्तन।

यज्ञ सूत्र - पवित्र सूत्र ।

मौंजी - मूंज ।

4- आश्रम संस्कृति एवं मानव जीवन-

रामायण काल के आश्रमों का तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक एवं जीवन में महत्वपूर्ण योगदान था। इन आश्रमों के पवित्र एवं शान्त वातावरण

के प्रभाव में आकर लोग बाह्य एवं अन्दर के सभी दुर्गुणों को त्याग देते थे (वा0रा03·17·14)। अगस्त्याश्रम में महर्षि अगस्त्य के प्रभाव से कोई भी झूठ बोलने वाला, क्रूर, शठ एवं नृशंस पापाचारी व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता था (वा0रा0 3·11·90)। इन आश्रमों में व्यक्ति, असत्य, हिंसा आदि वेद विरुद्ध दुर्गुणों को त्यागकर आध्यात्मिक एवं पवित्र जीवन व्यतीत करता था। इस प्रकार रामायणकाल में ये आश्रम केन्द्र मानवमूल्यों की स्थापना, आध्यात्मिक चिन्तन एवं शोधों आदि के प्रमुख आधार थे।

5-आश्रम जीवन के अन्य कार्यकलाप -

आश्रम में वनवासियों का जीवन अधिकांशतः आध्यात्मिक साधना और धार्मिक कर्मकाण्ड के सम्पादन में व्यतीत होता था। वे दिन में तीन बार स्नान करते थे एवं तीनों संध्याओं का वन्दन करते थे (वा0रा0 2·28·15)। देवताओं, पितृगणों का पूजन अभ्यागतों का समुचित आदर, यज्ञवेदि में पुष्पार्पण ,वेदोपदेश हवन, अग्निहोत्र आदि तपस्वियों के नित्य कर्म थे। सभी ऋषियों के आश्रम वेदमंत्रों के स्वर से गुंजते रहते थे। ये ऋषिगण प्रतिदिन स्वाध्याय और शिष्यों को शिक्षा देने का कार्य भी करते थे।

6-जीविकोपार्जन सम्बन्धी कार्य -

आश्रम वासी, भैंस, हिरण आदि पशुओं का गोबर (वा0रा0 2·99·7) एवं वनों से जलाऊ लकड़ी का प्रयोग (वा0रा0 2·54·7) ठण्डक से रक्षा के लिए एवं भोजन पकाने के लिए करते थे। आश्रमवासी ऋषियों

का खान-पान सादा, संयत एवं नियमित होता था {वा०रा० 7·9·39}। वे इन खाद्य पदार्थों को बहुधा वनों से ही प्राप्त कर लिया करते थे {वा०रा० 2·37·2}। उपवास व्रत इनकी तपस्या का मुख्य अंग था {वा०रा०2·28·13}। वे प्रायः फलफूल एवं वनस्पतियों के जड़ों आदि पर जीवन निर्वाह करते थे। आश्रमों में मांसाहार वर्जित था {वा०रा० 2·20·29}। ये बहुधा वृक्षों से फल भी नहीं तोड़ते थे बल्कि पके हुए फल जो भूमि पर गिर जाते थे उसी को इकट्ठा करके उपयोग करते थ। {वा०रा० 2·28·12} ये दिन में केवल दो बार {सुबह एवं शाम} भोजन करते थे {वा०रा० 2·28·12}। कुछ ऋषिगण खेतों में पड़े अनाज के दानों को इकट्ठा कर अपना जीवन यापन करते थे, जिसे उच्छवृत्ति कहते थे {वा०रा० 2·24·2}। आश्रमवासियों के वस्त्र भी साधारण एवं तापस जीवन के अनुकूल थे। कुशचीर, कृष्णमृग चर्म एवं वृक्षों की छाल ही इनके प्रधान वस्त्र थे {वा०रा० 2·50·44,2·99·26·2·28·13}। वल्कल उनका उत्तरीय वस्त्र {वा०रा० 2·95·6} और मृगचर्म अधोवस्त्र {वा०रा० 2·12·98} था। सिर पर केशों को इकट्ठा करके जटा धारण करने की प्रथा भी इन लोगों में प्रचलित थी {वा०रा० 2·28·13}। रामायणकालीन इन आश्रमों में स्त्रियां भी निवास करती थीं {वा०रा० 2·117·11}। आश्रम की मर्यादा भंग करने वाले को, ऋषि द्वारा दिये गये घोर शाप एवं तीव्र यातना का सामना करना पड़ता था {वा०रा० 3·11·64,66,1·48·27,29·59}।

आश्रमवासी ऋषियों को तत्कालीन समाज में बड़ा ही आदर एवं सम्मान था। नगरवासी लोगों से इनका निरन्तर संपर्क होता रहता था।

अतः इनके उच्च, उदात्त एवं सात्विक जीवन का प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ता रहता था। राजा लोग ऋषियों के आश्रमों में तथा ऋषिगण राजाओं के राजदरबार में आते जाते रहते थे। राजा का आश्रमवासी ऋषियों की रक्षा करना प्रधान धर्म था और ऋषिगण भी राष्ट्र एवं राजा के कल्याण एवं मंगल हेतु अनुष्ठान करते रहते थे। नीति एवं धर्म विषयक विवादों में इन ऋषियों के विचार सर्वोपरि स्थान रखते थे। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि रामायणकालीन आश्रम तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान करते थे। मानव के अन्दर उदात्त गुणों का विकास इन्हीं आश्रमों द्वारा सम्भव हो पाता था। भौतिक सुविधाओं से विपन्न होते हुए भी ये आश्रम आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत आगे थे। कुछ आश्रमों में तो धर्म,नीति आदि विषयों के अतिरिक्त राजनीतिक सामाजिक ,आर्थिक परिस्थितियों, ज्ञान"-विज्ञान आदि विषयों पर मीमांसित होता था। राम की राक्षसराज रावण को पराजित करने की रणनीति एवं दक्षिणी भारत के अनार्य बहुल क्षेत्र में आर्य संस्कृति के प्रसार सम्बन्धी नीति इन्हीं आश्रमों में तैयार की गयी थी। आश्रम वासी तपस्वियों का निकटवर्ती लोगों से मित्रतापूर्वक सम्बन्ध रहता था एवं इनका सेवा कार्य वर्तमान ईसाई मिशनरियों से मिलता जुलता कहा जा सकता है।

8.5 वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक प्रगति-

रामायणकालीन लोग ज्योतिष शास्त्र आदि के बारे में विस्तृत ज्ञान रखते थे। इन लोगों ने समय का वैज्ञानिक विभाजन कर रखा था- जैसे रात-दिन ,पक्ष-मास तथा वर्ष इत्यादि। रामायण में मानव जीवन पर ग्रहों एवं नक्षत्रों

के प्रभाव का भी वर्णन मिलता है। ये लोग चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। जिसके अन्तर्गत विभिन्न रोगों की पहचान तथा निदान की इन्हे सम्यक जानकारी थी। धन्वन्तरि आयुर्वेद चिकित्सक के रूप में प्रख्यात थे । इस युग के वैद्य लोग राज्याश्रित होते थे। रामायण में सुषेण नामक एक कुशल वैद्य की चर्चा भी आयी है जो किष्किन्धा में रहते थे और अपनी चिकित्सा के द्वारा वानरों का रोग दूर करते थे। सुषेण कई बार राम और लक्ष्मण के घावों की दवा करते हैं। रामायण कालीन वैद्य अधिकांशतः प्राकृतिक जड़ी,बूटियों का ही प्रयोग जानते थे कि कतिपय असाध्य रोग बिना चीर फाड़ के ही ठीक हो जाते थे। इस समय के लोग कुब्ज, भग्न ﴾हड्डी टूटना﴿, उन्माद ﴾ पागलपन﴿, चित्तमोह, गर्भपरिस्त्रवण, वातरोग, व्रण ﴾फोड़ा﴿, मूर्च्छा, महोदर ﴾वर्तमान जलोदर﴿, नेत्रातुर ﴾नेत्र सम्बन्धी रोग﴿ आदि रोगों एवं उनकी चिकित्सा प्रणाली से परिचित थे। रामायणकालीन कुछ प्रमुख औषधियों में विसल्यकारिणी, मृतसंजीवनी, संधानी,सुवर्ण कारणी सलिल﴾ मूर्च्छा﴿ के समय प्रयोग किये जाने वाला जल आदि का उल्लेख किया जा सकता है। शल्य चिकित्सकों को रामायणकाल में शल्यकृत कहा जाता था। लंका में सीता हनुमान से कहती हैं कि राम समय पर आकर मेरी रक्षा नहीं करते तो अनार्य रावण मेरे अंगों को उसी तरह काट डालेगा जैसे शल्य चिकित्सक गर्भस्य बालक को निकालने के लिए गर्भ को तेज औजारों से काट डालते हैं। इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि कठिन प्रसवावस्था में शल्य चिकित्सक गर्भाशय की शल्य क्रिया करते थे ﴾ वा0रा0 5·26·6﴿। इसीप्रकार नेत्र शल्य चिकित्सा का विवरण भी महाकाव्य में मिलता है एवं पुरुषों के अण्डकोश की शल्य चिकित्सा एवं आरोपण रामायण में गौतम अहिल्या आख्यान के माध्यम से दी गयी है।

मनुष्यों की ही भाँति इन्हे पशुओं के उपचार की भी सम्यक जानकारी थी। साथ ही शव संरक्षण क्रिया विधि से भी इस काल के लोग परिचित थे। अतः स्पष्ट है कि रामायणकालीन लोग चिकित्सा शास्त्र की वैज्ञानिक विधियों से भली भाँति परिचित थे। चूँकि रामायणकाल में परिस्थैतिक संतुलन बना हुआ था। अतः विभिन्न जड़ी बूटियां अपने नैसर्गिक रूप में उपलब्ध थीं। तथा लोक उनके लाभकारी गुणों से सुपरिचित थे।

रामायणकालीन लोग युद्ध यंत्र बनाते थे जो प्रायः धातुओं से बने होते थे। इनमें परिघ [लोह दण्ड], इषुपाल यंत्र [तीरों एवं पत्थरों को बरसाने वाला यंत्र] शतघ्नी [तोपें] आदि प्रमुख थे। राम-रावण युद्ध के अवसर पर छोड़ गये बाणों से यह संकेत मिलता है कि रामायणकाल में एक से एक घातक अस्त्रों का प्रयोग होता था परन्तु इन शस्त्रों को नष्ट करने अथवा इनकी संहार क्षमता को कम करने की जानकारी भी इन लोगों को दी जाती थी। रामायण में ऐसे बाणों का उल्लेख मिलता है जो वर्षा, अग्निज्वाला, मूर्च्छा आदि उत्पन्न कर सकते थे। ये आज के एटम बम, हाईड्रोजन बम आदि से मिलते जुलते थे। सबसे अधिक चौंकाने वाली बात तो यह है कि इन घातक अस्त्रों की काट भी इन लोगों को ज्ञात थी। तत्कालीन आश्रमों के कुलपति विश्वामित्र, वशिष्ठ, अगस्त्य आदि आज के वैज्ञानिकों के समान ही थे जो निरन्तर अनेक शोध कार्यों में लगे रहते थे जिन्हे वे उपयुक्त पात्रों को ही प्रदान करते थे। ये ऋषि, महर्षि इन अस्त्रों के प्रयोग हेतु कुछ मंत्रों की रचना करते थे जो आज के निर्माणक सूत्र [Farmulae] के समान ही थे।

रावण के पास पुष्पक विमान की उपलब्धता से रामायण काल में वायुयान के निर्माण की ओर भी संकेत मिलता है। इसी प्रकार हनुमान जी के सागर लाँघने की घटना आजकल की ग्लाईडिंग अथवा विस्तृत योगभ्यास की जानकारी प्रदान करती है। कुछ अन्य उपकरणों से रामायण काल में नगर निर्माण कला के विकास की भी संभावना पायी जाती है। उपर्युक्त तथ्यों से रामायण काल में पर्याप्त वैज्ञानिक विकास की ओर संकेत मिलता है।

सांस्कृतिक दृष्टि से रामायणकालीन लोग काफी आगे बढ़ गये थे। उस समय के कृषि, पशुपालन ,व्यापार एवं संचार साधनों की विवेचना से स्पष्ट होता है कि ये लोग सुसंस्कृत एवं विकसित सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत जीवन व्यतीत करते थे। इस काल में संगीत के सभी रूपों- स्वर संगीत, वर्णसंगीत, ताल संगीत, मार्गी संगीत का विकास हुआ था। वे गायन के तत्वों जैसे सप्त जाति, स्थान , मूर्च्छना, त्रिप्रमाण रस आदि से परिचित थे। संगीत गोष्ठियों का आयोजन न केवल राजाओं के यहाँ होता था बल्कि विभिन्न नागरिक सभाओं में भी इसके विकास को प्रोत्साहन मिलता था। नगर तो गीतों एवं वाद्यो के मधुर ध्वनियों से गुंजायमान रहते थे। वनवासी तपस्वियों का जीवन भी संगीत की लहरियों से परिपूर्ण था। पुरूष एवं स्त्रियां सभी संगीत एवं नृत्य में पर्याप्त रूचि लेते थे । संगीत कार्यक्रमों का आयोजन धार्मिक पूजापाठ,उत्सवों आदि के समय भी किया जाता था। इसी प्रकार रामायणकाल में तत(तांत के आंदोलन के द्वारा स्वरोत्पत्ति) सुषिर (फूंक के द्वारा स्वरोत्पत्ति), घन (आघात से ध्वनिउत्पत्ति) तथा तंत्र (जैसे वीणा एवं विपंची (सितार) नामक चार प्रकार के वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता था। वीणा,विपंची, बल्लकी, मृदंग ,मुरज (मृदंग से मिलता जुलता

वाद्य यंत्र),पटह (चर्म निर्मित यंत्र) मड्डुक (ढोलकी) पणव (युद्ध के अवसर पर बजाया जाने वाला नगाड़ा आदि) दुन्दुभी ,डिंडिम (डमरू) भेरी, शंख, वेणु, तूर्य (तुरही) आदि इस काल के प्रमुख वाद्य यंत्र थे।

नगरों में सुन्दर वाटिकाओं का निर्माण किया जाता था। जहाँ नगरवासी स्वास्थ्य लाभ एवं मनोविनोद हेतु जाते थे जहाँ मनोरंजन के समस्त साधन उपलब्ध रहते थे।

रामायण काल में भवनों के निर्माण में कलात्मक अभिरूचियों को ही विशेष महत्व दिया जाता था। रामायण के अनुसार मय शुक्राचार्य से शिल्पशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करता है (वा0रा0 5·40·13)। रामायण के टीकाकार तारापद महाचार्य केअनुसार इन दिनों मय दक्षिण भारत तथा विश्वकर्मा उत्तरी भारत का शिल्पी था।

भवन निर्माण सामग्री में ईंटों और पत्थरों का प्रयोग होता था। यद्यपि रामायण में कहीं भी काष्ठ का उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु विद्वानों का ऐसा विचार है कि लंका के अधिकांश भवन काष्ठ निर्मित थे तभी हनुमान उसमें आसानी से आग लगाने में सफल हो सके।[45] रामायणकालीन भवन सजाये जाते थे। उन पर ध्वजारोहड़ तथासुरक्षा काकड़ा प्रबन्ध किया जाता था। इन महलों में सजावट हेतु मणि- मूंगा एवं प्रवालों का उपयोग किया जाता था।

रामायणकाल में पाषाण शिल्प, तक्षण शिल्प आदि का विकास हुआ था। चित्रकूट जाते समयभरत के मार्ग में पत्थर की मूर्तियां लगी हुई थीं।[57] रावण का शयनागार हाथी- दाँत, स्वर्ण, चाँदी, मणि, मुक्ता,प्रवाल आदि

मूर्तियों से सुशोभित था। अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर सीता की सुवर्ण मूर्ति का उल्लेख किया गया है।

रामायण काल में चित्रकला के क्षेत्र में भी विकास का संकेत मिलता है। दीवारों, कक्षों ,विमानों एवं भवनों में पर्याप्त रूप से चित्रकारी की जाती थी जो आर्यों एवं अनार्यों की उत्कृष्ट कलात्मक अभिरूचियों का परिचय देती थीं इसी प्रकार रामयणयुगीन वाहनों में भी व्यापक रूप से चित्रकारी की जाती थी। रामायण में चित्रशाला गृहों के निर्माण का भी संकेत मिलता है। राजमहलों के निवास समूहों तथा नगर के मध्य नागरिकों के लिए चित्रशालाएं बनायी जाती थी।

रामाणकालीन लोग सर्वेक्षण एवं मानचित्र निर्माण की कला से पूर्णतः अनभिज्ञ नहीं थे परन्तु आधुनिक काल की तरह इनमें यत्रों का प्रयोग नही किया जाता था। रामायण काल में गणक शब्द काप्रयोग "सर्वेक्षक" के संदर्भ में किया गया है।

रामायण में वेदी निर्माण के समय गरूड़ आदि आकारों का प्रयोग करते थे और वेदी निर्माण के स्थान चयन के लिए भी सर्वेक्षण किया जाता था। इसी प्रकार का सर्वेक्षण राजा सागर एवं राजा दशरथ के अश्वमेध यज्ञों में किया गया था।

रामायण में युद्व के समय व्यूह रचना [वा0रा0 2·100·70] की प्रणाली का संकेत मिलता है। इससे क्षेत्र परिनिरीक्षण तथा मानचित्रनिर्माणकला

के बारे में जानकारी मिलती है क्योंकि क्षेत्रीय अवस्थित के परीक्षण एवं मानचित्र कला के ज्ञान बिना सैन्य व्यूह रचना सम्भव नहीं है रामायण में पृथ्वी के नापने का भी संकेत है और भगवान नारायण द्वारा तीन पगों में सम्पूर्ण पृथ्वी के मापन {सर्वेक्षण} का आख्यान इसी ओर संकेत करता है लेकिन यह राम द्वारा समुद्र पर सेतु निर्माण अथवा भरत द्वारा अयोध्या से श्रृंगवेरपुर तक राजपथ का निर्माण विस्तृत सर्वेक्षण पर आधारित थे इसी तरह 1300 कि॰मी॰ पुल बनाते समय कुछ बन्दर सूत पकड़े हुए थे और वे इस सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वेक्षण कर रहे थे {वा॰रा॰ 6·22·62}।

**1300 कि॰मी॰ {100 योजन} पुल की बात, पुल की विशालता की ओर संकेत करती है न कि भारत एवं लंका की वास्तविक दूरी की ओर।

संदर्भ

1. Dubey, B(1967): Geographical Concepts in Ancient India, N.G.S.I. B.H.U., Varanasi p.102-103

2. Vaidya, C.V. (1906): The Riddle of the Ramayan, Bombay, p.94.

3. जायसवाल, मंजुला (1983) : वाल्मीकि युगीन भारत, महामति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 98.

4. Ibid, p.98

5. Ibid, p.98

6. Das, N.C. (1971): A note on the Ancient Geography of Asia, compiled from Valmiki Ramayan, Bharat Bharti, Varanasi p.65.

7. Ibid, p.66

8. Ibid, p.60

9. Majumdar, R.C.: History of Bengal Vol II p.557

10. Das, A.C. (1927): Regvedec India, R.Cambary and Co, Calcutta, IInd edition p.148.

11. Op.cit.fn.3, p.108.

12. महाभारत, 5,99.6-8

13. Op.cit.fn.10, p.65 & 148.

14· Vishwanath, S.V.(1928) : Racial Synthesis of Hindu Culture, London p.86.

15· Pikshitar, VRR (1933): South India in the Ramayan, Proceeding of VII Oriental confrence,

16· Vyas, S.N. (1967): India in the Ramayan Age, Atma Ram & Sons, Delhi, P.25.

17· Op.cit.fn 3, p.106

18· Vyas, S.N. (1958): Ramayan Kalina Samaj & Ramayan Kalina Sanskriti (Hindi), Satsahity Prakashan P.25.

19· Op.cit. fn 3, p.60

20· मानव धर्म सूत्र- 10·44·

21· op.cit.fn 3,p.109

22· Saxena, D.P. (1976): Regional Geography of Vedic India, Granthan, Rambag, Kanpur, P.70

23· अथर्ववेद -----2·15·4

24· ऋग्वेद ------10·90

25· ऐतरेय ब्राह्मण--7·15·8-9 शतपथ ब्राह्मण 5·44·15, 13·137-38

26· Op.cit.fn.16, p.62.

27· Op.cit. fn,3,p.14

28· ऋग्वेद, 4·2·3

29· Ibid. 10.90

30· वायुपुराण --8·37·96

31· Singh,R.L.(1935):Evolution of Settlements in the Middle Ganga Valley,Nat,Geog. Journal of India,Vol.1p.70

32· भागवत पुराण -- 6·4·4-9

33· वायुपुराण -- 8·86-87,8·125-128

34· विष्णुपुराण -- 1·5·52

35· Ibid--1.5.53

36· अध्याय 8 का वानजाति शीर्षक

37· Op.cit.fn.2, p.94

38· Mode,P.M. (1933):Development of the Ashramas,Proceeding of VII.Oriental conference.

39· Valavalker,P.H.(1939):Hindu Social Institution,Bombay p.71

40· Op.cit. fn.23,6.108.2, शतपथ ब्राह्मण 11·3·3·1

41· ManKan,D.R. (1965):Introduction,Valmiki Ramayana,Kis Kendha Kand,Vol IV,Oriental Institute Baroda, p. LIV.

42. Ibid, p. LIV

43. Ibid, P. LIV

44. Op.cit.fn. 6,p.49

45. Op.cit.fn.18,p.25

*

सारांश एवं निष्कर्ष

भूगोल, पृथ्वी से सम्बद्ध होने के कारण, विज्ञानों के मूलभूत वर्गीकरण - क्रमबद्ध, समय प्रधान एवं स्थानिक-- में से, स्थानिक वर्ग के अन्तर्गत -सम्मिलित किया जाता है। मूलतः घटनाओं के परिवर्तनों से सम्बन्धित होने के कारण इसमें काल सम्बन्ध बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। जब किसी क्षेत्र के भौगोलिक तत्वों का अध्ययन कालिक परिप्रेक्ष्य में करते हैं तो इसे ऐतिहासिक भूगोल कहते हैं। यह भूगोल और इतिहास का मिलन विन्दु है। विशेष रूप से पूर्वकालीन भूगोल के सभी आयामों का अध्ययन ऐतिहासिक भूगोल है। मानव- विकास के क्रमबद्ध अध्ययन के लिए विद्वानों ने काल को कई खण्डों में बाँटा है, जब स्थान का अध्ययन इन कालिक खण्डों के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है तो स्थान [Space] के सभी तत्व स्वमेव ऐतिहासिक भूगोल के तत्व हो जाते हैं।

ऐतिहासिक भूगोल में हम वर्तमान के आधार पर भूत की पुनर्रचना करते हैं अतः इसमें भूतकालीन स्त्रोतों की आवश्यकता होती है। यद्यपि अतीत में भारत में वर्तमान पद्धति पर भूगोल लेखन की परम्परा का अभाव था किन्तु सांस्कृतिक विरासत में धनी होने के कारण भारत में ऐतिहासिक भूगोल के अध्ययन स्त्रोतों का अभाव नहीं है। इन स्त्रोतों में शिलालेख एवं सिक्के, वेद एवं उपनिषद, महाकाव्य, पुराण एवं साहित्य, यात्राएं एवं खोज विवरण, प्राचीन भौगोलिक ग्रन्थ, शास्त्रीय इतिहास, राजवंशो के पुराभिलेखागार एवं वृतान्त, मालगुजारी सम्बन्धी आँकड़े, सैनिक अभियान, मन्दिरों के अभिलेख, प्राचीन मानचित्र इत्यादि हैं जिनसे भारत के ऐतिहासिक भूगोल पर प्रकाश पड़ता है।

भारत में ऐतिहासिक भूगोल की नींव ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा डाली गयी। इसके विकास को मुख्यतः तीन चरणों में बांटा जा सकता है। प्रारम्भिक चरण (1800- 1931 तक) जिसमें ऐतिहासिक भूगोल, इतिहासकारों द्वारा लिखा गया तथा इसमें भौगोलिक तत्वों की अपेक्षा ऐतिहासिक तत्वों की प्रधानता थी। द्वितीय चरण (1932- 1968) जिसमें अतीत के भूगोल का अध्ययन वर्तमान पद्धति पर किया गया तथा इसमें भौगोलिक तत्वों की प्रधानता पाई गई। इस काल में ऐतिहासिक भूगोल पर कुछ उच्चकोटि के ग्रन्थ प्रकाश में आये। तृतीय चरण (1969- अब तक) इस काल में भूगोलवेत्ताओं की अहं भूमिका पाई जाती है किन्तु ऐतिहासिक भूगोल के अधिकांश लेख ऐतिहासिक विवरण मात्र है जिनमें भौगोलिक व्याख्या दृष्टिकोण का अभाव पाया जाता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्ययन का उद्देश्य रामायण में वर्णित भौगोलिक ज्ञान का दिग्दर्शन कराना है । इस शोध प्रबन्ध में ब्रह्माण्ड, सौरमण्डल एवं पृथ्वी की संकल्पना के बारे में रामायणकालीन विचारधारा के साथ-साथ रामायण काल में ज्ञात संसार एवं तत्कालीन भारत के भौतिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तंत्रों पर प्रकाश डाला गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध को 8 अध्यायों में बांटा गया है। प्रथम अध्याय जहां ऐतिहासिक भूगोल एवं वाल्मीकि रामायण के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय देता है वहीं द्वितीय एवं तृतीय अध्याय

रामायणकालीन लोगों के क्रमशः ब्रह्माण्ड तथा सौरमण्डल एवं भूतल के बारे में ज्ञान का विस्तृत परिचय कराते हैं। चतुर्थ अध्याय में भारतीयों के रामायणकालीन संसार के ज्ञान की जानकारी दी गयी है। पंचम अध्याय में भारत एवं उसके भौतिक स्वरूप का वर्णन किया गया। षष्ठम अध्याय रामायणकालीन भारत के आर्थिक तंत्र से सम्बन्धित है। सप्तम अध्याय में रामायणकालीन भारत के प्रमुख जनपदों एवं रामायण कालीन राजनैतिक स्थिति पर डाला गया है। अंतिम अध्याय में रामायणकालीन भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक तंत्र का विवरण है।

आँकड़ों के एकत्रीकरण में लिखित प्रमाणों यथा संस्कृत के वैदिक एवं लौकिक साहित्य, उत्खनन के प्रमाण, कहानियाँ एवं किंवदन्तियाँ, क्षेत्रीय सर्वेक्षण एवं विभिन्न प्रकाशित मानचित्रों का सहारा लिया गया है। आँकड़ों एवं तथ्यों के विश्लेषण हेतु आगमनिक एवं निगमनिक दोनों ही उपागमों का सहारा लिया गया है। चूंकि "वर्तमान अतीत की कुंजी" कहा जाता है अतएव शोध प्रबन्ध में वर्तमान के आधार पर रामायणकालीन भौतिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के आकलन का प्रयास किया गया है। निष्कर्षों के परीक्षण हेतु "अतीत से वर्तमान की ओर" की पद्धति का भी आश्रय लिया गया है।

आदि कवि वाल्मीकि एवं उनके महाकाव्य रामायण के समय निर्धारण में मतविभिन्नता होते हुए भी इतना तो सर्वमान्य है कि यह छठी शताब्दी ईसा पूर्व के पहले की रचना है। इसमें कुछ प्रक्षिप्त अंश अवश्य है किन्तु

सम्पूर्ण काण्ड 1 एवं काण्ड 7 को प्रक्षिप्त कहना औचित्य पूर्ण नहीं है। रामायण के भौगोलिक तथ्य तत्कालीन महर्षियों एवं राजाओं के यात्रा विवरणों से सम्बद्ध है।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में ब्रह्माण्ड एवं सौरमण्डल से सम्बन्धित संकल्पनाओं का विवरण दिया गया है। वैदिक काल से पुराण काल तक ब्रह्माण्ड के निर्माण से सम्बन्धित संकल्पनाओं को चार वर्गों में बांटा जा सकता है जो कलात्मक, यांत्रिक, दार्शनिक एवं उपकरण विधि के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। रामायणकालीन संकल्पना को दार्शनिक विधि के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। रामायण में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से सम्बन्धित विवरण मुख्यतः दो स्थलों पर दिये गये हैं जिनसे मुख्यतः निम्न निष्कर्ष निकलते हैं।

1- सृष्टि का निर्माण एवं विकास क्रमिक है।

2- सृष्टि के आदि में केवल जल था।

3- सृष्टि का आदि स्त्रोत ब्रह्मा है जिससे लोक की उत्पत्ति हुई है।

4- समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक साथ हुई है।

5- पृथ्वी का निर्माण कठोर पदार्थ से हुआ है।

6- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परमतेजमय पदार्थ (Energy) से परिव्याप्त है।

रामायण में ब्रह्माण्ड में अनन्त लोकों के स्थिति की परिकल्पना की गयी है जिनमे अन्तरिक्षलोक, देवलोक, पाताललोक आदि मुख्य हैं परन्तु इनकी स्थिति विस्तार आदि के बारे मे कोई संकेत नहीं मिलता है।

रामायणकालीन लोग तारामण्डल,नक्षत्रमण्डल एवं सौरमण्डल के बारे में भी ज्ञान रखते थे। रामायण में विशाखा, पुनर्वसु, फाल्गुनी एवं हस्त नक्षत्र का संकेत है। इस में ध्रुव एवं उसके आसपास घूमने वाले तारामण्डलों की चर्चा की गयी है। आज से 5000 वर्ष पूर्व ध्रुवन- जो ध्रुवतारा के स्थान पर था - का परिचय महाकाव्य में प्रतीकों के माध्यम से दिया गया है। उल्कापात एवं अन्य आकाशीय घटनाओं का भी संकेत है।

सूर्य एवं उसके परिवार की चर्चा करते हुए ,पुच्छलतारा,ग्रहों एवं उपग्रहों का विवरण दिया गया है। ग्रहों में बुध ,मंगल ,शनि, बृहस्पति,शुक्र मुख्य हैं। प्रकारान्तर से चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से मानकर,इसको पृथ्वी का उपग्रह सिद्ध किया गया है।

सूर्य की प्रकृति का बहुत विस्तृत एवं वैज्ञानिक विवेचन रामायण में मिलता है। सूर्य को उर्जा का अक्षय स्त्रोत बताकर उसे समस्त प्राणियों का पालनकर्ता भी बताया गया है। उसे सर्वव्यापक प्रकाशक, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का बीज, रात्रि एवं दिन को बनाने वाला आदि कहा गया है। सूर्य समस्त परिवर्तनों का मूल है। रामायणकालीन लोग सूर्य को अस्थिर तथा पृथ्वी को स्थिर मानते थे। पृथ्वी को केन्द्र में मानकर अन्य ग्रहों को उसका चक्कर लगाने वाला बताया गया है जो अवैज्ञानिक है। रामायण में चन्द्रमा की जो विशेषतायें बतायी गयी है वह भी अवैज्ञानिक लगती है क्योंकि उसमें दिखायी पड़ने वाले धब्बों को (जो ज्वालामुखी के अवशेष हैं) - मृग चर्म के मारने से उत्पन्न हुए घाव का रूप बताया गया है।

वाल्मीकि रामायण में सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण की चर्चा करते हुए उनको क्रमशः अमावस्या एवं पूर्णिमा को ही लगना बताया गया है किन्तु ग्रहण के मूल कारण को राहु एवं केतु राक्षस द्वारा सूर्य एवं चन्द्रमा को ग्रसना बताया गया है। यह कोरी कल्पना नहीं है क्योंकि चन्द्रमा एवं पृथ्वी के अक्ष के झुकाव के भिन्न होने के कारण प्रत्येक पूर्णिमा एवं अमावस्या को ग्रहण की परिस्थियाँ उत्पन्न नहीं हो पाती हैं अतः राहु एवं केतु उन्हीं सूक्ष्म बिन्दुओं के सूचक हैं जिन पर स्थित होने के कारण ही ग्रहण की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो पाती हैं।

रामायण में पृथ्वी उत्पत्ति सम्बन्धी संकल्पना ब्रह्माण्ड उत्पत्ति सम्बन्धी संकल्पनाओं में ही समाहित है। इसकी उत्पत्ति तप्त निहारिका से बतायी गयी है। पृथ्वी आकार में गोल है पृथ्वी की आन्तरिक संरचना में ऊपर से नीचे क्रमशः अधिक घनत्व के खनिजों की स्थिति दर्शायी गयी है जो पृथ्वी की संरचना सम्बन्धी वर्तमान सिद्धान्तों- सिआल, सीमा एवं नीफे- की ओर संकेत करता है।

शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में रामायण के आधार पर भूतल की संकल्पना (वायुमण्डल, जलमण्डल, स्थलमण्डल, जैवमण्डल) के बारे में जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

वाल्मीकि रामायण में पृथ्वी एवं चन्द्रमा के बीच की दूरी को 9 स्तरों में विभाजित किया गया है जिससे पृथ्वी के वायुमण्डल के स्तरीकरण का बोध होता है इसमें प्रत्येक विभाग की दूरी प्रायः 120 कि०मी० बतायी

गयी है। प्रत्येक स्तर की कुछ विशेषताएं हैं जो तत्कालीन मानवज्ञान पर आधारित हैं किन्तु इनमें वैज्ञानिकता का अभाव मिलता है। अन्यत्र वायुमण्डल को पाँच विभागों में बांटा गया है। रामायण में सात वात स्कन्धों की चर्चा तो की गयी है लेकिन वायुमण्डल के संघटन के सम्बन्ध में महाकाव्य मौन है।

वायुमण्डल की उष्मा प्रणाली पर प्रकाश डालते हुए सूर्य को ही उर्जा का स्रोत बताया गया है। ऋतु परिवर्तन भी सूर्य के कारण ही होता है। रामायण में बसन्त,ग्रीष्म,वर्षा ,शरद, हेमन्त एवं शिशिर ऋतुओं की चर्चा करते हुए उनकी विशेषताओं का उल्लेख मिलता है। यद्यपि इनके लक्षणों में अधुनातन गणितीय साधनों का उल्लेख नहीं है फिर भी इनके सामान्य लक्षण तो प्रकट हो ही जाते हैं।

वाल्मीकि रामायण में तीन प्रकार के मेघों ‡आग्नेय, ब्रह्मज एवं पक्षज ‡ का परिचय दिया गया है। इनमें पहले की उत्पत्ति ताप एवं वाष्पीकरण के कारण दूसरे की उत्पत्ति ब्रह्मा के स्वांस के कारण बताई गयी है। लेकिन तीसरे की उत्पत्ति के बारे में कोई संकेत नहीं है। द्वितीय प्रकार के मेघों के साथ बिजली एवं झंझावात आते हैं, जबकि तीसरे प्रकार के मेघों के साथ घनघोर गर्जन से युक्त भारी वृष्टि होती है।

अन्य वायुमण्डलीय घटनाओं में हवाओं एवं ओस की परिचर्चा करते हुए हवाओं को दो भागों में-स्थाई एवं अस्थायी --- बांटा गया है।

स्थाई हवाओं को "मरूत" ,नाम से सम्बोधित किया गया है। स्थानीय हवाओं में पर्वतीय समीर एवं तीव्र वेग वाले बवंडर मुख्य है। नदियों एवं जलाशयों के तट पर ओस बिन्दुओं के गिरने का संकेत भी मिलता है।

रामायण में जलमण्डल की चर्चा करते हुए पृथ्वी [स्थल] को परितः समुद्र से घिरा बताया गया है। कहीं पर चार तथा कहीं पर सात महासागर बताये गये हैं। समुद्र का लक्षण बताते हुए उसके सामान्य जलस्तर में कभी भी परिवर्तन होना बताया गया है जिसका कारण समुद्र में बड़वामुख [ज्वालामुखी] का पाया जाना है। समुद्र खनिज सम्पत्ति से परिपूर्ण है। इसका जल अस्थिर एवं चलायमान रहता है। रामायण के अनुसार चन्द्रमा का ज्वार उत्पत्ति में मुख्य योगदान है।

स्थलमण्डल में पर्वत,पठार,मरूस्थल आदि तथा नदियों, झीलों, हिमनदों एवं उनके द्वारा उत्पन्न भूदृश्यों का विवरण दिया गया है। रामायण में विभिन्न प्रकार के चट्टानों का विवरण देते हुए कायान्तरित एवं आग्नेय चट्टानों के निर्माण का संकेत एक पौराणिक आख्यान के माध्यम से किया गया है। चट्टानों के प्रारम्भिक रूप [आग्नेय]की उत्पत्ति में भूगर्भ की उष्णता को कारण बताते हुए ताप के स्पर्श से चट्टानों केकायान्तरण विधि पर प्रकाश डाला गया है। आग्नेय शिलाओं में ही खनिजों के पाये जाने की सम्भावना व्यक्त की गयी है।

भूकम्प एवं उनके आने के दोनों कारणों ---- प्राकृतिक एवं मानवीय -कास्पष्ट संकेत किया गया है। यदि दिग्गजों का अपने मस्तकों

को इधर-उधर हिलाना प्राकृतिक कारण माना गया है तो तीव्र गति से चलने वाली वृहत सेनाओं को मानवीय कारणों के अन्तर्गत रखा गया है। भूकम्पों के विनाशकारी प्रभावों का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। ज्वालामुखियों में विशेषकर जागृत ज्वालामुखी तथा उनसे उत्पन्न भूदृश्यों का विवरण दिया गया है। बड़वामुख के माध्यम से समुद्र गर्भ में विद्यमान ज्वालामुखियों का उल्लेख मिलता है परन्तु इन ज्वालामुखियों की उत्पत्ति सम्बन्धी तर्क पूर्ण सिद्धान्त का महाकाव्य में अभाव मिलता है।

रामायण में पर्वतों एवं विस्तृत पर्वतीकरण के माध्यम से पृथ्वी की प्रारम्भिक अवस्था में इसके अधः स्तर की अस्थिरता का संकेत दिया गया है। इन्द्र (वर्षा) के द्वारा पृथ्वी के अधः स्तर को स्थिर होना बताकर विस्तृत पर्वतीकरण की समाप्ति की सूचना भी महाकाव्य में दी गयी है।

रामायण में पठार को गिरिप्रस्थ एवं शैलप्रस्थ कहा गया है। मैदान का केवल संकेत है जबकि मरूस्थल एवं उसकी उत्पत्ति तथा उसकी विशेषताओं के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी है।

प्रमुख नदियों को पर्वतों से निकलने वाली तथा समुद्र में गिरने वाली बताया गया है। इन्हे स्थाई एवं अस्थाई नदियों में बाँटा गया है। नदियों के घाटी विस्तार जल प्रपात निर्माण के साथ-साथ अपरदन, परिवहन एवं निक्षेपण सम्बन्धी प्रक्रियाओं का विस्तृत विवेचन रामायण में मिलता है। निक्षेपण द्वारा निर्मित भाँवर प्रदेश के जलोढ़ कुण्डों एवं जलोढ़

पेड़ों का विवरण एवं उसके विस्तृतीकरण की भी चर्चा की गयी है।

रामायण में हिम एवं हिमानी का विवरण देते हुए हिमालय पर्वत को हिमनदों का उत्पत्ति स्थल बताया गया है। सूर्य के दक्षिणायन होने से हिमालय पर्वत पर अत्यधिक हिमपात होने एवं ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के ताप से पिघले हुए हिमखण्डों द्वारा हिमनदों के उत्पत्ति के बारे में महाकाव्य में संकेत मिलता है।

महाकाव्य में अनेक स्थलों पर वनस्पतियों तथा जीव जन्तुओं-- की परिचर्चा करते हुए उनके सम्बन्धों से संरचित पारिस्थैतिक संतुलन का विवरण दिया गया है। रामायण काल में अधुनातन औद्योगीकरण के अभाव में सुव्यवस्थित पारिस्थैतिक संतुलन विद्यमान था इससे तत्कालीन लोगों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का आभास मिल जाता है।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में रामायण काल में ज्ञात विश्व का विवरण रावण की दिग्विजय यात्रा एवं वानरराज सुग्रीव के भूमण्डल भ्रमण के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इसमें विश्व के विभिन्न अंचलों के उच्चावच्च, भूआकृतियों, वनस्पतियों, जीवजन्तुओं नागरिक जीवन एवं अधिवासों आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

रामायण काल में सात द्वीपों [महाद्वीपों] का संकेत मिलता है। जिनमें जम्बूद्वीप [भारतीय उपमहाद्वीप मध्य एशिया चीन एवं एशियाई रूस का पश्चिमी भाग] यवद्वीप [पूर्वी द्वीप समूह], कूटशाल्मली द्वीप [कोरिया,

मँचूरिया, इसका पूर्वी भाग एवं जापान द्वीप समूह), क्रौन्चद्वीप (हिमालय पर्वतीय क्षेत्र), किरात द्वीप (वर्मा) , सुदर्शन द्वीप (अलास्का) एवं श्वेत द्वीप आदि प्रमुख है।

सागरों में इक्षु सागर (चीन सागर) , लोहित सागर (पीतसागर), क्षीरोदसागर (ओखोटस्क सागर), जलोदसागर (बेरिंग सागर), स्वादु सागर (साइबेरिया एवं अलास्का के बीच का समुद्री क्षेत्र), दक्षिण सागर (भारत के दक्षिण मन्नार की खाड़ी का समीपवर्ती समुद्र क्षेत्र, पश्चिमी सागर (अरब सागर) पूर्वीसागर (बंगाल की खाड़ी) आदि की चर्चा की गयी है।

महाकाव्य में रावण की दिग्विजय यात्रा के माध्यम से विश्व के स्थूल रूप का परिचय दिया गया है। इस समय के ज्ञात संसार को देवलोक (सोवियत रूस, पश्चिमी चीन एवं मंगोलिया), मृत्य लोक (सम्पूर्ण भारतीय उप महाद्वीप एवं द०पू० एवं द० प० एशिया) एवं पाताल लोक (हिन्द महासभा क्षेत्र) में बांटा गया था। इसी प्रकार सुग्रीव ने सीता के अन्वेषण हेतु चारो दिशाओं में वानरसेनाओं को भेजते हुए पूरब दिशा के विवरण में सर्वप्रथम भारतीय प्रदेश में प्रवाहित भागीरथी (गंगा), सरयू (घाघरा), कौसिकी (कोसी), कालिन्दी (यमुना), सरस्वती (विलुप्त नदी) सिन्धु (काली सिन्धु), महनदी (महानदी), दामोदर (कालमही) आदि, नदियाँ एवं ब्रह्ममाल (पूर्वी छोटानागपुर एवं पश्चिमी बंगाल का पश्चिमी क्षेत्र) विदेह (बिहार एवं नेपाल का मिथिला प्रदेश), मालव (सतलज नदी के द०पू०का भाग), काशी (गंगा , गोमती, दाब का दक्षिणी तथा मिर्जापुर पठार का उत्तरीभाग), कोशल (अवध रियासत का क्षेत्र), मगध (सोन के पूर्व तथा गंगा के दक्षिण का

भाग॥; पुण्ड्र ॥ उत्तरी बंगाल एवं बंगला देश के गंगा-यमुना दोआब का वारेन्द्र क्षेत्र॥,बंग ॥यमुना/ब्रह्मपुत्र के पूर्व बंगाल का क्षेत्र ॥ महाग्राम ॥विभिन्न जनपदों के नगर एवं रेशम उत्पन्न करने वाले क्षेत्र ॥असम॥ का वर्णन किया गया है। तदपरान्त चांदी की खानों को देश ॥ बर्मा का शान प्रदेश॥, मन्दराचल ॥अराकान योमा श्रेणी॥, यवद्वीप, शिशिर पर्वत ॥न्यूगिनिका एक पर्वत ॥, शोण नदी ॥रेडरीवर॥ लोहित सागर, क्षीरोद सागर, ऋषभ पर्वत ॥क्रीडन्नो ढेबेट॥, सुदर्शन सरोवर ॥कोना टोस्कय लेक॥ जलोद सागर, स्वादु उदयाचल आर्कटिक वृत्त एवं उसके ऊपर के आकाश में विद्यमान नक्षत्र-मण्डल का उल्लेख किया गया है।

रामायण कालीन दक्षिणी संसार में भारतीय प्रदेश के विन्ध्य ॥विन्ध्याचल ॥ अयोमुख ॥मलय॥ महेन्द्र गिरि आदि पर्वतों ,नर्मदा,महानदी गोदावरी, कृष्णवेणी ॥कृष्णा॥ महाभागा ॥तुंगभद्रा॥ वरदा ॥वर्धा॥ कावेरी ताम्रपर्णी ॥बिगाई॥ आदि नदियों, दण्डकारण्य ॥गोदावरी का सम्पूर्ण अपवाह क्षेत्र ॥,मेकल ॥मैकाल श्रेणी के इर्द गिर्द छत्तीसगढ़ का क्षेत्र॥,उत्कल ॥उड़ीसा॥, दशार्ण ॥धसान नदी के समीप का बुन्देलखण्ड क्षेत्र॥,अवन्ती ॥उज्जैन॥,विदर्भ ॥सतपुड़ा पहाड़ियों के दक्षिण बरार का प्रदेश ,ऋष्टिक ॥मध्य प्रदेश के खान देश के चतुर्दिक का क्षेत्र॥,माहिषक ॥मध्यप्रदेश का द०प० भाग॥, बंग ॥पूर्वी बंगाल ॥ पुण्ड्र कलिंग ॥महानदी डेल्टा से गोदावरी डेल्टा तक का क्षेत्र॥,आंध्र ॥गोदावरी एवं कृष्णानदी के मध्य क्षेत्र ॥,चोल ॥कावेरी ॥ बेसिन क्षेत्र,पाण्ड्य ॥तमिलनाडु का द०पू० क्षेत्र॥ एवं केरल आदि जनपदों का

उल्लेख किया गया है ।

भारत से बाहर के क्षेत्रों में लंका (श्री लंका) पुष्पितक पर्वत (मिनीकोय द्वीप), सूर्यवान एवं वैद्युत पर्वत (मालद्वीप समूह), कुंजर पर्वत (चैगोस द्वीप समूह), ऋषभ पर्वत (मारीशस द्वीप समूह), पितृलोक या यमराज की राजधानी (मेडागास्कर) का वर्णन किया गया है ।

पश्चिमी संसार में प्रस्रवण गिरि (बेलारी के समीप) से टर्की तक के प्रदेश का वर्णन समाहित है । भारतीय प्रदेश में चन्द्रचित्र (उत्तरी, महाराष्ट्र), सुराष्ट्र (गुजरात), अवन्ती (मालवा पठार), कुक्षि (थार क्षेत्र), वाह्लीक (रावी एवं सतलज के मध्यवर्ती प्रदेश का उत्तरी भाग), अंगलोपा (मकरान क्षेत्र आदि जनपदों, मुर्वी पत्तन (मुजारिस या क्रैंगनूर), जटीपुर (जेटपुर) गुजरात) आदि नगरों एवं पश्चिमी घाट क्षेत्र नर्मदा, ताप्ती नदियों तथा सिन्धु डेल्टा क्षेत्र का उल्लेख किया गया है ।

भारतीय प्रदेश से बाहर सोमगिरि (किरथर पर्वत) सिंह नामक पक्षी का क्षेत्र (सिन्धु एवं समुद्र के संगम), पारियात्र पर्वत (सुलेमान पर्वत), वज्र पर्वत (मकरान पहाड़ी), चक्रवान पर्वत (होरमुज जलसंधि), वराह पर्वत (जैग्रोस पर्वत की कुहई दीनार श्रेणी), प्राग्ज्योतिष नगर (नक्श -ए- रुस्तम), मेघ पर्वत (एलबुर्ज पर्वत), सोने के साठ हजार पर्वत (आरमीनियाँ गाँठ), मेरु पर्वत (माउण्ट अरारात) एवं माउण्ट अरारात के आकाश के नक्षत्रों का वर्णन अस्ताचल पर्वत (अनातोलिया पठार का पश्चिमी भाग) का वर्णन किया गया है ।

रामायण कालीन उत्तरी संसार के भारतीय प्रदेश के वर्णन में पुलिंद (जबलपुर के पास का विन्ध्य क्षेत्र), परिव्राज (निचला गंगा- यमुना दोआब), सूरसेन (मथुरा के पश्चिम का क्षेत्र), प्रस्थल (सिन्ध डेल्टा क्षेत्र), भरत (सरस्वती दृषद्वती के बीच का क्षेत्र), कुरु (पश्चिमी उत्तर प्रदेश), अरट्ट (पंचनद का क्षेत्र), मद्र (झेलम से रावी के बीच का क्षेत्र), एवं दरद (गिलगिट हुंजा के बीच का क्षेत्र), हिमालय प्रदेश के सोमाश्रम (बद्री नाथ के पास का सोमकुण्ड एवं सोमतीर्थ क्षेत्र), काल पर्वत (बद्रीनाथ एवं मानादर्रा के बीच का क्षेत्र सुदर्शन पर्वत (लक्ष्मीवान), देवसख पर्वत (मानादर्रा के समीप का क्षेत्र) एवं कैलाश पर्वत की चर्चा की गयी है।

भारत से बाहर निर्जन मैदान (तिब्बत) कैलाश पर्वत (कैलाश मानसरोवर प्रदेश), क्रौन्चगिरि कामशैल एवं मानसरोवर (कामेट शिखर एवं मानादर्रा), मैनाक पर्वत (पूर्व हिमाचल प्रदेश के शिवालिक श्रेणी का प्रदेश), यवन (उत्तरी अफगानिस्तान) कम्बोज (पामीर क्षेत्र) (शक (सिनक्यांग) तुंगन (कोकोनार झील क्षेत्र) चीन एवं परम चीन (चीन), शकदेश (मंगोलिया), मध्य एशिया के प्रदेश, वैखानस सर (बालकश झील), ध्रुव ज्योति (साइबेरिया प्रदेश की ध्रुवज्योति), शैलोदा नदी (वोल्गा), उत्तर कुरु (सोवियत रूस का यूराल एवं मध्य यूरोपीय क्षेत्र) पैसामीनीध एवं सोमगिरि (श्वेतसागर एवं सोमोको वस्कामा श्रेणी) एवं ध्रुवीयतारा मण्डल तथा ध्रुवीय रात्रि का संकेत है।

शोध प्रबन्ध का पंचम अध्याय भारत के प्राकृतिक तंत्र से सम्बन्धित है जिसमें भारत के नाम, क्षेत्र विस्तार, आकार एवं सीमा, भौतिक विभाग, अपवाह तंत्र मिट्टी, जलवायु एवं वनस्पति तथा प्रमुख द्वीप समूहों की चर्चा की

गयी है ।

रामायण कालीन भारत की पश्चिमी सीमा अफगानिस्तान एवं सौराष्ट्र तक पूर्वी सीमा किरात देश { वर्मा } तक दक्षिणी सीमा लंका के दक्षिण का समुद्री क्षेत्र एवं उत्तरी सीमा हिमवान प्रदेश {हिमालय पर्वत} तक फैली थी ।

रामायणकालीन भारत को मुख्यतः तीन भौतिक भागों -उत्तरी पर्वतीय प्रदेश, मध्यवर्ती आर्यावर्त प्रदेश एवं दक्षिण का विन्ध्य सह्य पठारी क्षेत्र ----------में बाँटा गया है । उत्तरी पर्वतीय प्रदेश जो सदा वर्फ से ढँका रहता था जिस को पार करना कठिन था अतः इस क्षेत्र के कैलाश शिखर क्रौन्च गिरि, मैनाक पर्वत, देवसख पर्वत, काल पर्वत एवं सुदर्शन पर्वतों आदि का उल्लेख किया गया है ।

आर्यावर्त भूमि पश्चिम सागर { अरब सागर से पूर्व सागर } बंगाल की खाड़ी } तक फैले सिन्धु गंगा का मैदानी भाग है । इसमें कोशल, विदेह आदि प्रमुख जनपद तथा घनी जनसंख्या निवास करती थी । यह समतल तथा उच्च अधोभौमिक जलस्तर के कारण घना बसा तथा भारत के आर्थिक क्रियाकलाप का प्रमुख केन्द्र था ।

तीसरा भाग विन्ध्य सह्य का पठारी प्रदेश है जिसमें अवशिष्ट पर्वत श्रेणियाँ पायी जाती हैं । इनमें विन्ध्य, चित्रकूट पर्वत { बाँदा जनपद का कामतानाथ गिरि}, सह्य पर्वत {पश्चिमी घाट पर्वत} प्रस्रवण गिरि {बेलारी के समीप की पहाड़ी} ऋष्यमूक पर्वत {अहमद नगर से बेनल दुर्ग और कल्यानी तक फैली श्रेणी } माल्यवान पर्वत { प्रस्रवण गिरि का एक शिखर },

मलय पर्वत (पश्चिमी घाट की द्रावन कोर टिला), महेन्द्र पर्वत (कन्याकुमारी का महेन्द्र गिरि), दर्दुर पर्वत (नीलगिरि पहाड़ी), मन्दराचल (अराकान योमा श्रेणी), यामुन पर्वत (यमुना के दक्षिण तट का पहाड़ी भाग) की चर्चा की गयी है।

हिमालय एवं विन्ध्य पठारी क्षेत्र के आधार पर रामायण कालीन अपवाह तंत्र को तीन भागों में बांटा गया है --- पूर्व वाहिनी नदियों में गंगा, यमुना के अतिरिक्त सरयू (घाघरा) कौशिकी, गोमती, सदानीरा (राप्ती) वेदश्रुत नदी (बेईनदी) स्यन्दिका (सईनदी), तमसा नदी (पूर्वी एवं द0 टोंस) मन्दाकिनी नदी (पयस्विनी नदी) की चर्चा की गयी है।

पश्चिमी वाहिनी नदियों में सिन्धु एवं सतलज की सहायक नदियां आती हैं जिनमें सिन्धु, विपाशा (व्यास) सतद्रु (सतलज) सरस्वती (घग्घर की शुष्क घाटी) आदि मुख्य नदियाँ हैं।

दक्षिणी वाहिनी नदियों में प्रायद्वीपीय भारत की प्रमुख नदियां आती हैं जिनमें महानदी नर्मदा, गोदावरी, कृष्ण वेणी, कावेरी ताम्रपर्णी आदि प्रमुख हैं।

मिट्टियों में जलोढ मिट्टी, पठारी मिट्टी एवं मरूस्थली मिट्टियों की उल्लेख की गयी है जो क्रमशः सिन्धु गंगा के मैदानी भाग, दक्षिणी भारत के प्रायद्वीपीय पठार एवं थार के मरूस्थली क्षेत्रों में पायी जाती है। जलोढ़ मिट्टी को उपजाऊ जबकि पठारी एवं मरूस्थली मिट्टी को अनुपजाऊ बताया गया है ।

रामायणकालीन जलवायु की दशाएं आज की ही भाँति थी। वनस्पतियों के घने आवरण से सम्पूर्ण भारतीय प्रदेश के भरे रहने के कारण उस समय वर्षा की मात्रा आज की अपेक्षा अधिक थी। रामायण के विवरण के अनुसार वनस्पतियों को मैदानी, पठारी एवं मरुस्थली वनों में विभक्त किया गया है।

मैदानी एवं पठारी वन सिन्धु गंगा मैदान एवं दक्षिण के प्रायद्वीपीय प्रदेश पर फैले हुए थे जबकि मरुस्थली वन थार मरुस्थल एवं पर्वतीय वन हिमालय पर्वत पर पाये जाते थे। मैदानी वनों में मुख्य वृक्ष --- आम, जामुन, कटहल, पाकड़, करवीर, अशोक, प्रियाल, लाल चंदन नागकेसर आदि थे। मरुस्थलीय वनों में कटीली झाड़ियाँ ही प्राप्य होती थीं जबकि पर्वतीय वनों में देवदारु एवं चीड़ के वृक्ष पाये जाते थे। प्रमुख द्वीप समूहों में मिनीकोय, मालद्वीप, अण्डमान निकोबार एवं मारीशस आदि का उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकि कालीन भारत के आर्थिक तंत्र (अध्याय -6) में प्रमुख व्यवसायों, यातायात एवं संचार के साधनों एवं अधिवासों आदि की चर्चा की गयी है। इस काल में कम जनसंख्या एवं विस्तृत चारागाहों के कारण उत्तर के सम्पूर्ण मैदानी भाग पर पशुपालन व्यवसाय प्रचलित था आर्यों के भोजन में पशु उत्पाद पदार्थों की अधिकता थी एवं कृषि में पशुओं का उपयोग किया जाता था। गायों का पालन दूध, दही आदि भोज्य पदार्थों एवं कृषि के लिए किया जाता था। जबकि अश्व एवं गज का पालन युद्ध कार्यों के लिए किया जाता था। ऊँट, खर आदि सवारी एवं बोझा ढोने के काम में आते थे। श्वान घर की

रखवाली किया करते थे। गायें गंगा यमुना के मैदानी क्षेत्र में, अश्व केकेय एवं सिन्धु प्रदेश में, गज विन्ध्य प्रदेश एवं पूर्वी भारत में, ऊँट मरुस्थली प्रदेश में, खर लंकापुरी एवं कोसल पुरी में तथा उत्तम किस्म के कुत्ते केकेय प्रदेश में पाये जाते थे।

कृषि कार्य का प्रमुख स्थल गंगा यमुना मैदान का मध्यवर्ती क्षेत्र था। इन दिनों कृषि बहुत विकसित रूप में नहीं थी। खेत जोतने के लिए बैलों एवं हल कुदाल आदि का ही प्रयोग किया जाता था। कृषि मुख्यतः वर्षा पर ही आधारित थी परन्तु कहीं-कहीं सिंचाई के साधनों का भी प्रयोग होता था। चावल, गेहूँ, चना, तिल ,यव आदि प्रमुख कृषि उपजे उत्पादन थीं। अभिजात वर्ग के लोक बागवानी भी किया करते थे। सुग्रीव का मधुवन, रावणकी अशोक वाटिका एवं कोशल का अशोक वन राज्य द्वारा संरक्षित थीं।

खनिज एवं धातुओं के संग्रह एवं उनके उपयोग के बारे में भी रामायण कालीन लोग ज्ञान रखते थे। सोना, चांदी, ताँबा, लोहा आदि खनिजों से वे परिचित थे। सम्पूर्ण भारतीय पठारी प्रदेश एवं हिमालय पर्वत के इर्द गिर्द खनिजों के भण्डार पाये जाते थे। उन्हें समुद्र में भी खनिजों के पाये जाने की जानकारी थी।

रामायण काल में गृहशिल्पों एवं लघु कुटिर उद्योगों की प्रधानता थी। वस्त्र उद्योग उस समय का प्रमुख उद्योग था तथा सूती, रेशमी, ऊनी एवं पेड़ों की छालों के वस्त्र बनाए जाते थे। वस्त्रों की रंगाई, सिलाई तथा उनको सजाने का कार्य भी प्रचलित था। राजकीय संरक्षण के कारण इन दिनों वस्त्र उद्योग काफी

विकसित रूप में प्राप्त था।

धातुओं के शोधन एवं परिष्करण से सम्बन्धित कार्यों का ज्ञान भी तत्कालीन लोगों को था। लोहे से वज्र जैसे अस्त्र शस्त्र एवं धनुष में प्रयोग होने वाले बाण बनाये जाते थे। लोहे से चौकियाँ एवं तीखी कीलें भी बनायी जाती थी। सोने एवं चाँदी का उपयोग मुद्राओं एवं आभूषणों को बनाने एवं ताँबे का प्रयोग पूजा एवं दैनिक जीवन में व्यवहार के लिए किया जाता था।

रामायण काल में राजकीय संरक्षण के कारण व्यापार एवं वाणिज्य विकसित रूप में पाये जाते थे। नगर मुख्यतः व्यापार एवं वाणिज्य के केन्द्र थे। थल एवं समुद्री मार्गों के द्वारा तीनों प्रकार के व्यापार किये जाते थे।

यातायात के साधनों में स्थल मार्ग ,जलमार्ग एवं वायुमार्ग का महत्व था किन्तु वायुमार्ग का विशिष्ट संदर्भ में ही मिलता है। रामायणकालीन स्थल मार्गों में -दो मार्ग मुख्य थे -- 1- गिरिव्रज से जनकपुरी [पश्चिम से पूरब एवं 2- अयोध्या से लंका [उत्तर से दक्षिण तक। प्रथम मार्ग फैजाबाद ,लखनऊ दिल्ली होकर ग्रैण्ड ट्रंक रोड का अनुसरण करता था। अयोध्या एवं जनकपुरी [नेपाल]के बीच का मार्ग घाघरा एवं गोमती के दाब के बीच से गुजरता था जो नेपाल की सीमा तक फैला था। अयोध्या से लंका के मार्गों के प्रमुख स्थल प्रयाग, चित्रकूट, अत्रिआश्रम ,शरभंग आश्रम सुतीक्ष्णआश्रम एवं अगस्त्य आश्रम आदि प्रमुख थे। यह मार्ग अयोध्या,इलाहाबाद ,चित्रकूट ,कटनी,जबलपुर,नागपुर , अकोल, नासिक, पुणे, बेलगाम, बंगलोर, मदुराई, रामनाथपुरम एवं धनुषकोटि को जोड़ता था। जलमार्गों में गंगा, यमुना, राप्ती, गोमती ,घाघरा आदि

नदियों के मैदानी मार्ग थे जिनमें गंगा जल मार्ग सर्वप्रमुख था जो पश्चिम से पूरब के व्यापार केन्द्रों को जोड़ता था।

रामायणकालीन अधिवासों को तीन वर्गों में बाँटा गया है- ग्रामीण, नगरीय एवं आश्रम। ग्रामीण अधिवास कृषकों के निवास स्थल थे जिन्हें ग्राम कहा जाता था।

रामायणकालीन नगर या तो जनपदों की राजधानी थे अथवा सुरक्षा केन्द्र इनमें प्रशासनिक एवं व्यापारिक कार्यों की प्रधानता थी। रामायणकालीन बड़े नगरों को "पुरी" कहते थे। अयोध्यापुरी (अयोध्या) जनकपुरी (नेपाल में जनकपुर) किष्किन्धापुरी (बेलारी के समीप), लंकापुरी, मधुपुरी (मथुरा) गिरिव्रज आदि इनके उदाहरण हैं। पुरी से छोटे अधिवासों को नगर कहतेथे। इन नगरों के चारो ओर सुरक्षा के लिए खाइयाँ एवं प्राकार निर्मित किये जाते थे जिनसे नगर की रक्षा की जा सके। नगरों में उपयुक्त संचार व्यवस्था एवं मनोरंजन, धार्मिकव्यवसायिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र भी अलग-अलग पाये जाते थे।

रामायणकाल में आश्रम केन्द्रों का विकास शिक्षा केन्द्रों के रूप में हुआ था। ये रामायणकालीन पर्यटक केन्द्र तथा तीर्थस्थल भी थे। ये अधिवास प्रायः ग्रामों एवं नगरों से दूर अध्ययन, आध्यात्मिक चिन्तन एवं स्वास्थ्य लाभ हेतु बने हुए थे। कम जनसंख्या, आश्रम संस्कृति का प्रभाव, प्रकृति एवं मानव का सह सम्बन्ध, आर्यों का विशिष्ट जीवन दर्शन शिक्षा के मुख्य स्थल एवं धार्मिक पृष्ठभूमि इन अधिवासों के विकास के लिए उत्तरदायी थे। इन अधिवासों की मुख्य समस्या सुरक्षा, नीरव वातावरण, अव्यवस्थित संचार के साधन तथा राजाओं की

तटस्थ प्रकृति आदि थी।

सप्तम अध्याय में रामायण में वर्णित जनपदों के आधार पर तत्कालीन भारत के राजनैतिक तंत्र का परिचय दिया गया है। रामायणकालीन जनपद आज के राज्यों (States) की भाँति थे जिनमें प्रत्येक का एक निश्चित क्षेत्र विस्तार, एक मानव समुदाय एवं एक निजी विचारधारा होती थी। ~~रामायण कालीन, एक मानव समुदाय एवं एक निजी विचारधारा होती थी~~। रामायण कालीन साक्ष्यों के आधार पर इन जनपदों को चार वर्गों में बाँटा जाता था।

पूर्वी क्षेत्र के जनपद गंगा, यमुना तथा उनकी सहायक नदियों के अपवाह क्षेत्र पर विस्तृत थे। इनमें बंग, मगध, अंग, काशी, पुण्ड्र, मालव, ब्रह्ममाल, महाग्राम, मलद, करूष, वत्सदेश, मत्स्य एवं सुहम आदि प्रमुख थे।

पश्चिम दिशा के जनपदों का विस्तार सिन्धु सरस्वती एवं उनकी सहायक नदियों के अपवाह क्षेत्र पर फैला था। इनमें बाह्लीक, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, कुक्षि, पांचाल, कुरुजांगल, चन्द्रचित्र, केकय, पान्चाल आदि प्रमुख थे।

उत्तर दिशा के जनपद पश्चिम हिमालय प्रदेश में स्थित थे जिनमें मद्र, शूरसेन, दरद, आरट्ट, मद्र, पुलिंद, भरत, प्रस्थल आदि प्रमुख थे।

दक्षिण दिशा के जनपद प्रायद्वीपीय भारत पर फैले थे जिनमें मेखल, उत्कल, दशार्ण, अवन्ती, विदर्भ, ऋष्टिक, माहिषक, कलिंग, अश्ववन्ती, आन्ध्र, चोल, पाण्ड्य, केरल आदि प्रमुख थे।

रामायणकाल के पूर्व वैदिक काल में आर्यों का प्रसार केवल आर्यावर्त प्रदेश तक सीमित था। यह स्थिति श्री राम के पिता दशरथ के शासन काल तक चली आई। राम के शासन काल के अन्तर्गत उत्तर में कोशल से दक्षिण में लंका तक, उत्तर पश्चिम में गिरिव्रज एवं पश्चिम में सौराष्ट्र से लेकर पूर्व में मिथिला तक का समस्त क्षेत्र एक शासन के अन्तर्गत आ गयाथा। उस समय राष्ट्रीय एकता के प्रमुख सूत्र, प्रशासनिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक थे जबकि बाधक तत्वों में पर्वतीय एवं बनीय बाधाओं का उल्लेख किया जा सकता है जिनके कारण आवागमन एवं संचार के साधनों का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। आर्यों के आर्यीकरण की मिशनरियाँ [आश्रम केन्द्र] राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान करती थी।

शोध प्रबन्ध के अष्टम अध्याय में रामायणकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक तंत्र का विवरण दिया गया है जिसमें जनसंख्या वितरण, रामायण कालीन प्रजातियाँ, प्रमुख जनजातियाँ, सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक विकास तथा वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक प्रगति आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

रामायणकाल में जनसंख्या वितरण की दृष्टि से भारत के क्षेत्र को 1-सघन, 2-विरल, एवं 3- निर्जन क्षेत्रों में बांटा गया है। इस काल में नदी के ताजे जल, कृषि संसाधनों एवं आवागमन की सुलभता आदि के कारण सिन्धु-गंगा का मैदान एक सघन बसा हुआ अंचल था। इसके विपरीत बनों के आच्छादन तथा संचार के माध्यमों की कमी आदि के कारण, दक्षिण के पठारी भाग का अधिकांश क्षेत्र एक विरल बसा हुआ क्षेत्र था। यहाँ उत्तर के मैदान से प्रव्रजित अनार्य लोग, यहाँ के मूल निवासी एवं आर्य संस्कृति के प्रचारक

ऋषि महर्षि बसे हुए थे। हिमालय का दुर्गम भूमि, दक्षिण भारत के सघन वन क्षेत्र, उबड़-खाबड़ भूमि, सिन्धु गंगा एवं ब्रह्मपुत्र नदियों के डेल्टाई प्रदेश एवं राजस्थान का मरुक्षेत्र रामायण काल में निर्जन क्षेत्र थे जहाँ अनुपयुक्त जलवायु, यातायात की असुविधा एवं ताजे जल का अभाव था।

रामायण काल में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में दो प्रमुख प्रजातियाँ पायी जाती थीं जिनमें आर्य सुन्दर शरीर वाले, गोरे, अनाज एवं पशु उत्पाद पदार्थों का भोजन करने वाले तथा यज्ञकर्ता थे जबकि अनार्य बेडौल शरीर वाले काले रंग के मांस मदिरा का सेवन करने वाले एवं यज्ञ के विरोधी थे।

इस समय सम्पूर्ण भारत पर विभिन्न जनजातियाँ बसी हुई थीं जिनमें राक्षस, दानव, दैत्य, पिशाच, असुर, वानर, यक्ष नाग, गृद्ध, उरग, गन्धर्व, अप्सरा, किरात एवं निषाद आदि प्रमुख थीं। राक्षसों का मुख्य निवास स्थान लंका था किन्तु वे दण्डकारण्य प्रदेश (गोदावरी अपवाह क्षेत्र) में भी घुसपैठ किया करते थे। राक्षस काले रंग वाले मजबूत, युद्ध निपुण, शराब एवं मांस का भोजन करने वाले तथा विभिन्न प्रकार के वस्त्रों एवं सोने चाँदी के आभूषणों आदि से अलंकृत रहते थे। इनमें वर्णव्यवस्था का अभाव था तथा सामाजिक संगठन ढीला था। राक्षसों से मिलती जुलती जातियों में असुर, दानव, दैत्य एवं पिशाच भी थे।

किष्किन्धा पर्वतीय क्षेत्र (कर्नाटक प्रदेश) में निवास करने वाली वानर जाति एक अनार्य जनजाति थी। इनकी अनेक उप जातियाँ थी जो प्रायः पर्वतीय भागों एवं जंगलों में निवास करती थीं। वानर विशाल शरीर वाले एवं बलशाली होते थे। वे वन्य वस्तु संग्रह करके जीवन यापन करते थे। इस जाति

के अभिजात्य वर्ग के लोग सोने एवं चांदी के आभूषण धारण करते थे। वानरों की सामाजिक व्यवस्था ढीली ढाली थी। वन्य उपजों पर निर्भर होने के कारण इनमें आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास का अभाव था। आदिम युद्ध प्रणाली वानर जाति की अपनी एक प्रमुख विशेषता थी।

नूतन पाषाण काल की संस्कृति के सम्बन्धित एवं कोशल राज्य दक्षिणी सीमा पर निवास करने वाली निषाद भी एक जनजाति थी। श्रृंगवेरपुर इनकी राजधानी थी। ये कुशल सैनिक थे। मत्स्य आखेट एवं मत्स्य पालन इनका प्रमुख व्यवसाय था। भारत के पश्चिमी घाट के समुद्र तटों ,पर्वतों एवं वनों में निवास करने वाले गृद्ध एक घुमक्कड़ी जनजाति थी। आर्यों से इनका अच्छा सम्बन्ध था। इसी प्रकार किष्किन्धा पर्वत के समीप निवास करने वाली शबर भी रामायणकालीन एक प्रमुख जनजाति थी। आर्यों से इनका अच्छा सम्बन्ध था। तपस्विनी शबरी इसी जनजाति से सम्बन्धित थी। सुगठित शरीर एवं शारीरिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध यक्ष एक अनार्य जनजाति थी जो अपने मूलनिवास-स्थान लंका को छोड़कर हिमालय के पर्वतीय प्रदेश में जा बसे थे। मलाबारतट पर निवास करने वाली, सर्प चिह्न धारण करने वाली नाग एक आर्येतर जनजाति थी। उरग भी इनसे मिलती जुलती एक अन्य जनजाति थी ये दोनों जनजातियां पर्यटनशील स्वभाव की थीं। देव,किन्नर गन्धर्व एवं अप्सराएं रामायणकालीन अन्य प्रजातियां थीं। देव हिमालय के उत्तरी क्षेत्र के निवासी थे। यायावरी प्रवृत्ति वाली किन्नर एक अन्य जन जाति थी जो मालिनी नदी के तट पर निवास करती थी। संगीत कला में दक्ष गन्धर्व एवं अप्सरायें भी अन्य जनजातियां थी। शारीरिक सौन्दर्य वाली अप्सराएँ उन्मुक्त विचरण करने वाली स्त्री समूह की द्योतक थी जो नृत्यगान

आदि में निपुण एवं सामान्य चरित्र की होती थीं। देवता असुर आदि सभी इनका प्रयोग भोग-विलास के लिए किया करते थे।

आर्यों का सामाजिक संगठन बहुत ही चुस्त था जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नामक चार वर्ण पाये जाते थे जिनकी उत्पत्ति गुणकर्म के आधार पर की जाती थी। रामायण काल तक आर्य समाज छुआछूत से परे था।

ब्राह्मण बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतीक था जिसका मुख्य कार्य पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना आदि था। सत्य एवं स्पष्टवादिता, सच्चरित्रता, इन्द्रिय निग्रह, धर्मपरायणता आदि ब्राह्मणों के प्रधान गुण थे। इनका भोजन सात्विक होता था जिनमें घी, दूध आदि पदार्थों की अधिकता थी। क्षत्रियों का प्रधान कर्म, धर्म-स्थापना प्रशासन तथा जनता का बाहरी एवं आन्तरिक संकट से रक्षा करना था। ये बड़े, वीर, पराक्रमी, शक्तिशाली, निर्भीक एवं दृढ़ होते थे।

क्षत्रिय राजा प्रजा की आय का छठा भाग कर रूप में प्राप्त करता था। ये निरामिष एवं सामिष भोजन करने वाले, रजोगुण सम्पन्न तथा वस्त्र आभूषण एवं सजावट के शौकीन थे। कृषि, पशुपालन, एवं व्यापार द्वारा धनोपार्जन करने वाले वर्ग को वैश्य कहते थे। देश की अर्थव्यवस्था के मूल स्तम्भ होने के कारण समाज में इनका महत्वपूर्ण स्थान था। शूद्र श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। ये प्राय: अशिक्षित होते थे। समाज द्वारा बहिष्कृत एवं सामाजिक अपराधियों की तरह जीवन व्यतीत करने वाले चाण्डाल एवं मुष्टिक

सबसे निम्न वर्ण में शामिल किये जाते थे। इनका आचरण इतना निन्दनीय था कि आर्य इन्हें अपनी वर्णव्यवस्था का अंग नहीं मानते थे।

रामायणकालीन आर्य समाज में तीव्र असमानताएं थीं। ब्राह्मण एवं क्षत्रिय ही समाज के मुख्य संचालक थे। समाज में सामाजिक न्याय का लम्बवत विवरण ऊपर से नीचे [ब्राह्मण से शूद्र तक] घटती दर में पाया जाता था। यही कारण है कि जहाँ ब्राह्मणों को गंभीर अपराध करने पर भी मृत्युदण्ड नहीं दिया जाताथा वहीं वैश्यों एवं शूद्रों को प्राण दण्ड देने में राजा लेश मात्र संकोच नहीं करता था। इस प्रकार ब्राह्मण एवं क्षत्रिय शोषक वर्ग के प्रतीक थे जबकि वैश्य एवं शूद्र शोषित वर्ग के।

रामायण काल में भारत के क्षेत्र पर तीन संस्कृतियों का प्रसार था। विन्ध्याचल से दक्षिण किष्किन्धापर्वत के इर्द गिर्द वानरसंस्कृति, लंका द्वीप पर राक्षस संस्कृति, उत्तर के मैदानी क्षेत्र पर आर्य संस्कृति का प्रसार था। आर्य संस्कृति के ही अंग, के रूप में आश्रम संस्कृति के केन्द्र देश के विभिन्न भागों में फैले थे जो आदि संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे।

वानर संस्कृति एक अनार्य संस्कृति थी। वेशभूषा, खान पान आदि को देखते हुए इन्हे हम "प्रोटो इंडिक" अथवा "प्रोटो आस्ट्रेलायड" प्रजाति के अन्तर्गत सम्मिलित कर सकते हैं जिनके वंशज नवप्रस्तर काल [Neolithic Period] में भारत के अधिकांश क्षेत्र पर फैले हुए थे। ये वनों में जलाशयों के किनारे रहते थे तथा वन्य वस्तुओं के संग्रह से ही अपना

जीवन व्यतीत करते थे। ये भोजन में अन्न का भी प्रयोग करते थे । इनके समाज में एक तंत्रात्मक आनुवंशिक शासन था। राजा एवं अभिजात्य वर्ग का जीवन बड़ा ही विलास पूर्ण होता था जबकि सामान्य वर्ग में अभाव एवं गरीबी थी।

राक्षस संस्कृति का केन्द्र स्थल लंका द्वीप था। किन्तु विन्ध्य-से दक्षिण प्रायद्वीपीय भाग का सुदूर दक्षिणी भाग भी इनके प्रभाव के अन्तर्गत समाहित था। ये मांस भक्षण करते थे। शराब इनका मुख्य पेय पदार्थ था। ये यज्ञ भी करते थे किन्तु इनके यज्ञ तमोगुण से सम्पन्न होते थे। ये कुत्सित आचरण करने वाले एवं शिथिल यौन सम्बन्ध वाले थे। ये गायन, वादन एवं नृत्यकला के प्रेमी थे। भौतिक एवं वैज्ञानिक प्रगति में तो ये आर्यों से भी आगे थे परन्तु इनमें मानवीय गुणों का अभाव था।

सिन्धु गंगा मैदान के समस्त प्रदेश पर आर्य संस्कृति का प्रसार था। ब्राह्मण ,क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र आर्य समाज के प्रमुख अंग थे। मानव जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु इनका सम्पूर्ण जीवन चार आश्रमों ---- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास-- में बँटा हुआ था। ब्रह्मचर्य आश्रम मुख्यतः विद्याध्ययन, चरित्र निर्माण एवं गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों को वहन करने की योग्यता के विकास से सम्बन्धित था। ब्रह्मचर्य आश्रम को पूर्ण करने के बाद लोग गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते थे। धनोपार्जन, वंश वर्धन, पत्नी एवं परिवार के अन्य सदस्यों की देखरेख, पंचयज्ञ इस आश्रम के मुख्य कर्म थे। अग्निहोत्र एवं आतिथ्य सत्कार वानप्रस्थों का प्रधान कर्तव्य था। सन्यास आश्रम में भौतिक सुखों को त्याग कर एकान्तवास करते हुए ईश्वरोपासना करने का विधान था। जीवन में

कृषि एवं पशुपालन आर्य समाज की अर्थव्यवस्था के मूलाधार थे जिसके कारण इनके भोजन में अन्न एवं पशु उत्पाद पदार्थों की ही प्रधानता थी। लोग सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्रों एवं सोने चाँदी के बने आभूषणों का प्रयोग करते थे। ये भवन निर्माण कला; लौह उद्योग आदि क्षेत्रों में भी पर्याप्त उन्नति कर चुके थे। ये आध्यात्मिक चिन्तन में तो काफी प्रगति कर चुके थे।

रामायण काल में आश्रम संस्कृति, नागर संस्कृति के समान ही महत्वपूर्ण थी। इस काल के आश्रम नगरों के कोलाहल से दूर वनों के एकान्त क्षेत्र में स्थित थे। ये आश्रम केन्द्र मानव मूल्यों की स्थापना, आध्यात्मिक चिन्तन एवं शोध आदि के प्रमुख आधार थे। इन आश्रमों में रहने वाले ऋषिगण गहन चिन्तन और शिष्यों को शिक्षा देने का कार्य भी करते थे। आश्रमवासी फल-फूल एवं वनस्पतियों की जड़ों आदि को खाकर ही अपना जीवन निर्वाह करते थे। उपवास व्रत इनकी तपस्या का मुख्य अंग था। आश्रमवासियों के वस्त्र अतिसाधारण एवं इनका जीवन सादा होता था।

रामायणकाल ज्योतिषशास्त्र खगोल विज्ञान एवं चिकित्साशास्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका था। इन्हें विभिन्न रोगों की पहचान एवं इनके निदान की जानकारी थी। दवाओं में नैसर्गिक रूप में उपलब्ध जड़ी-बूटियों का ही प्रयोग होता था। ये युद्धयन्त्रों एवं उनके काट के यन्त्रों का भी निर्माण करना जानते थे। ये ग्लाइडिंग प्रक्रिया से भी अवगत थे जिससे पुष्पक आदि यानों का विकास हो पाया था। संगीत के तीनों रूपों— गायन, वादन एवं नृत्य रामायणकालीन सभ्य समाज के अंग थे। नगर निर्माण एवं

नगर नियोजन के अतिरिक्त चित्रकला एवं मानचित्र निर्माण करना आदि का भी समुचित बोध लोगों को था।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं जिससे प्रस्तावना में वर्णित संकल्पनाओं की पुष्टि होती है।

1- रामायणकाल में लोगों को ब्रह्माण्ड, इसकी उत्पत्ति एवं सौर परिवार के विभिन्न ग्रहों उप ग्रहों के बारे में जानकारी थी। पृथ्वी के ठोस, तरल एवं वायव्य रूप से भी वे पूर्णत: परिचित थे।

2- इस काल तक लोगों को न केवल भारत के विभिन्न अंचलों के बारे में जानकारी थी वरन् विश्व के बड़े भाग से भी वे पूर्णत अपरिचित नहीं थे।

3- भारत के प्राकृतिक भूदृश्यों के बारे में रामायणकालीन लोगों की समुचित जानकारी थी जिससे लोगों के भ्रमणशील प्रकृति का बोध होता है।

4- रामायण काल में भारत मुख्यत: तीन संस्कृतियों-- आर्य,अनार्य, (राक्षस) में बँटा था जिनमें परस्पर स्पर्धा एवं संघर्ष होते रहते थे।

5- देश के समूचे क्षेत्र पर अनेक जनजातियाँ निवास करती थी जिनके खान-पान, रीतिरिवाजों आदि में भिन्नता होने के कारण आपसी संघर्ष भी होता रहता था।

6- रामायणकालीन भारत विभिन्न जनपदों में विभाजित था जिनके शासक राजा कहलाते थे।

7- रामायण काल में लोगों का मुख्य व्यवसाय, कृषि, वाणिज्य, आखेट एवं वन्य वस्तुओं का संग्रह करना था।

8- अधिकांश जनसंख्या का बसाव उत्तरी भारत के मैदानी भागों में था जबकि दक्षिण भारत के विशाल क्षेत्र पर घने वनों का आवरण था जिसके

जनसंख्या का वितरण विरल था एवं जहाँ अनेक अनार्य जातियाँ निवास करती थीं।

9- देश में अनेक छोटे बड़े नगरों का विकास हुआ था जो नगर नियोजन एवं पारिस्थितिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर बसाये गये थे।

10- रामायणकालीन समाज वर्णों एवं सम्प्रदायों में विभक्त था जिनमें ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था।

11- रामायण काल में भारत के कुछ क्षेत्रों में आदिम-व्यवस्था के प्रभाव मिलते हैं तो अन्य स्थानों पर उच्चस्तर की सांस्कृतिक, आर्थिक, एवं वैज्ञानिक प्रगति के भी साक्ष्यों का अभाव नहीं है।

इसप्रकार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध से यह ज्ञात होता है वाल्मीकि रामायण मात्र एक घटना प्रधान महाकाव्य न होकर भारत की एक सांस्कृतिक धरोहर है जिसके भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं के सम्यक अध्ययन की आवश्यकता है। इससे अनेक ऐसे तथ्यों पर प्रकाश पड़ने की संभावना है जो वैदिक काल के उपरान्त प्रमाणों के अभाव में लुप्त से हो गए हैं।

xxx

B I B L I O G R A P H Y

(A) PRIMARY SOURCES

Aitaveya Brahman - Nirney Saggar, Press, Bombay.

Anguttara Nikaya - P.T.S, Ed. London, 5 Vol 1886-1900

Arthasastra - Text and Hindi Translation by
by Kautilya Udaivira, Sastri, Lahore, 1925,
Text, and Hindi Translation
by Ganga Prasad, Mahabharat office,
Delhi, Samvat 2010.

Astadhyayi Nirnaya Sagar Press, Bombay, 1954.
by Panini

Atharvavedi - Ed., with Sayana's Commentary by
S.P. Pandit, Bombay, 1895, Vaidika
Yantralaya, Ajmer, Samvat, 1957.

Bhagavata Purana - Gita Press, Gorakhpur, Samvat 2010.

Brahma Purana - Gurumandal Series, No. XI, Calcutta,
1354, Anandasrama Sanskrit Series,
Poona, 1895.

Chhandogya Upanisad - Text and Hindi Translation by Bihari Lal and Yamuna Shankar Lucknow, 1913.

Digha Nikaya - Hindi Translation by Rahula Sankrityayana and Jagdish Kasyapa, Mahabodhi Society, Sarnath,1936.

Mahabharata - Chitrasala Press, Poona, 6 Vols. with Nilkantha's Commentary,1929.

Majjhima Nikaya - Hindi Translation by Rahula Sankrityayana, Mahabodhi Society, Sarnath, 1933.

Manusmriti - Ed. Ganganath Jha, RASB, (with Madhatithi's commentary) 2 Vols. 1932 and 1939.

Milindapanho - Devanagari Texts, Bombay, University Publication, 1940.

Raghuvamsa (Kalidasa) - Nirnaya Sagar Press, Bombay,1932.

Ramayana (Valmiki) - Gita Press, Gorakhpur, 2 Vols., Samvat, 2040.

Ramayana (Valmiki) - Rama Narayana L. l, Allahabad, 10 Vols.

Ramayana (Valmiki) - Pandita Pustakalaya Kasi (Varanasi) Ed. Text and Hindi Translation, 1951, with Tilaka.Siromani and Bhusana Commentaries, New Printing Press, Bombay, 1920.

Rajatarangini - By Kalhana.

Rigveda - Ed.,with Pada Text, and Sayana's Commentary by Maxmuler, 2nd Ed., 1190-2; Vaidika Yantralaya, Ajmer, Samvat 1958.

Satapatha Brahmana - Vaidika Yantralaya, Ajmer, Samvat 1959.

Taittiriya Aranyaka - 2 Vols., Anandasrama Sanskrit Series, Poona, 1897-98.

Vayu Purana - Mumbai Press.

Vrihatsamhita — Varaha Mihir English Translation and notes By Subrahmanya, Sastri and Ravi Krishna Bhatt, Banglore-1947.

(B) Secondary Sources-

(i) Books,

Achaya P.K. Architecture of the Manasara(Eng.Trans.) London,Oxford University Press ,1933.

Agnihotri,P.D. Patanjalikalina Bharat ,Bihar Rastrabhasa Parishad Patna, 1963.

Agrawala ,V.S. Bharati Ki Maulika Ekata(Hindi) Allahabad,1954

------------ India as known to Panine,University of Lucknow 1953.

------------ Panini Kalina Bharatiya Bhoogol(Hindi)Samvat 2009 (1952-53).

Al-Biruni, Annotations,by E.C.Sachau, London,1910 2 vols.

---------- Biruni's Picture of the world,ed. A.Zeki validi Togan, Memoirs of the Archaeological Survey of India,No. 53

Altekar,A.S. State & Government in Ancient India, from Earliest times to 1200 A.D.,MotilalBanarasi Das, Varanasi, 1949 & 1958.

Anderson,J.D. Peoples of India (1913).

Ali,S.M. Arab Geography, Institute of Isalamic studies Aligarh, 1959.

Bandyopadhyaya, N.C. Economic life and progress in Ancient India (IInd Edition) University of Calcutta, 1945.

Beni Prasad — The state in Ancient India, Indian Press, Allahabad 1928.

Besant Annie — The Pedigree of Man 1904.

Bhandarkar, R.G. — Early History of the Deccan 1884, Varanasi, 1975 (Reprinted).

Bhandarkar D.R. — Some Aspects of Ancient Hindu Policy charmical Lectures 1918.

Bhargava, M.L. — The Geography of Regvedic India, The upper India Publishing House Ltd., 1964.

BHattacharya, P.K. — Historical Geography of Madhya Pradesh from Early Records: Motilal Banarsidas, Delhi 1977.

Bhattacharya, Tarapada -A study on Vastuvidya, Calcutta-, 1928.

Chatterjee — Indian Cultural Influence in Combodia, Culcutta 1928.

Chaudhari, S.B. — Ethnic Settlements in Ancient India-A study on the Puranic Lists of the peoples of Bharatvarsa, Pt. 1 Northern India, Calcutta, General Printers & Publishers Ltd. 1955.

Childe, V.G. — The Aryans, 1926.

Cunningham, A — Ancient Geography of India, Trubner & comp. London 1971 : Indian Reprint, Varanasi 1963.

Das. A.C. — Rigvedic India, University of Calcutta, 1921.

Davids,Rys.T.W. Buddist India, T. Fisher Unvin,London,1911.

Dey, Nandlal Geographical Dictonary of Ancient & Medieval India,IInd Edition London Huza crco.1927.

Dikhitar,V.R.R. The Puranic Index (3 vols) University of Madras 1952 .

Dutt,R.C. A History of Civilization in India London 1893.

Dutt,B.B. Town Planning in Ancient India, Calcutta and Simla, Thacker, Spink & Co.,1925.

Dutt,N.K. Origin and Development of caste in India, 1931.

Gerini Rxxxxxk Rescarches on Ptolemy's Geography of Eastern Asia,London, Asiatic Society, 1909.

Havell,E.B. Ancient and Medieval Archituctur London,1915.

Ibn. Battuta, Travels in Asia and Afric H.A.R.Gibb,London, 1929.

------ Ibn Battuta on Sumatra and Java Dulaurier, Paris.

Iyer,T. Parameshiva- Ramayana and Lanka,Bangalore, 1940.

Law,B.C. Ancient Indian Tribes (Vol.II) London, Luzac & Com., 1934.

Law.B.C. Geographical Essays& Vol I ,London,Luzac& Co.,1937.

Law, B.C. — Geography of Early Buddhism, London 1932.

------- Historical Geography of Ancient India, Paris, Society Asiateque de, Paris, 1954 .

Mountains of India, Series of the Calcutta Geographical society, No.5, Calcuttar University -, 1942.

-------- Tribes in Ancient India, Bhandarkar Oriental series, No.4, Poona, 1943.

Macdonnell, A.A. — History of Sanskrit Literature, 1900.

Macdonnell, A.A & Keith A.B. — Vedic Index (2 vols) Motilal Banarasi Das, 1958.

Majumdar, R.C. — 'Ancient India', Motilal Banarasidas, Varanasi, 1952.

------------ Ancient Indian colonies in the far east (Suvarnadip), 1927.

Majumdar, R.C. & Pusakar, A.D. — History and culture of the Indian people vols. I-II, The vedic age & the classical age, aftem and unwin, London, 1951.

Majumdar, S.N. (Ed) — Cunningham's Ancient Geography of India, Calcutta 1924.

Marshall, John. (editor) — Mohanjadaro and the Indus civilization, 30 vols.

Mahta, Ratilal- Pre-Buddhist India, Bombay, Examiner Press, 1939.

Mc Crindle, J.W. Ancient India as described by Megasthenes and Arrean, Calcutta, 1926.

----- The commerce and Havigation of the Erythraean sea, calcutta, 1879.

----- Ancient India as described by Plolemy Calcutta, 1885.

----- Ancient India asdescribed by Kteseas and Knidean, Calcutta, 1882.

----- Ancient India as described in classical literature, calcutta, 1901.

Mitchel J.B. Historical Geography, English University Press, 1939, Ltd. St. Paul's House warrick Square London., 1954.

Mookerji, R.K. Fundamental Unity of India Bharatiya Vidya Bhavan Bombay, 1960.

Moore, W.G. A Dictionary of Geographic, Penghin Reference, Books, 3rd, Edn., 1963.

Mukerji, A.B. Rural settlements in the Jataks, Geographical Review of India, Vol.31, No.2, 1969.

XVI, II, 1943mp.7-62, XVII, I, 1944 p-13-79.

Nehru, J.L. The discovery of India, 4th Edn, (1956).

Nainar, M.H., Arab Geographer's knowledge of Southern India, Madras, 1942.

Panniker, K.M. Geographical factors in Indian History, Bombay, 1959.

Pathak, V. History of Kosala, Motilal, Banarasi Das, Varanasi 1963.

Rai, U.N. Prachin Bharat me Nagar our Nagar Tiwari, Hindustan Academy, Allahabad, 1965.

Rishey, H.H. The people of India, 2nd Edn. Thacker & co. calcutta 1915.

Sarkar, B.K. Hindu Achievements in Exact Science, Longmans, calcutta, 1918.

Sidi Ali KIis The Travels and Adventures of the Turkish Admiralsidi Ali Ra, is in India, Afghanistan, Central Asia and Persia during 1553-56, fr. by A. Vambery, London, 1899.

Sircar, D.C. Studies in the Geography of Ancient and Medieval India Motilal Banarasidas, Delhi, Patna, Varanasi, 1960.

Seal, B.K. Positive Sciences of the Ancient Hindus, Longmans calcutta, 1915.

Sircar, D.C. Stdues in theGeography of Ancient and Medievel India, Delhi, Motilal Banarsidas, 1971.

Sore Sen, S — An Index to the Names in the Mahabharat, welliams and Norgati, London, 1904.

Trivedi, H.V. — Studies in Ancient Geography, (Topographical contents of Agni Purana) Indian Historical Quartely Vol. IX. 1933.

------- — Studies in Ancient Geography (Topographical Contents of Markendeya Purana, Vol X, 1934.

Tozer, H.F. — A history of ancient Geography Cambridge, 1935.

Upadhyaya, B.S. — BudhaKalina Bharatiya Bhoogol, Hindi Sahaiya Sammelana, Prayaga, Sammat 2018.

Vaidya, C.V. — Epic India, The Bombay Book Depttt Bombay, 1933

-------- — The Riddle of Ramayana, Bombay, 1956.

Vyas, S.N. — Ramayana Kalin Samaj & Ramayana Kalin Sanskrite (Hindi) Satsahitya Prakashan, 1958.

Walkey, O.R. & Aiyyer, H. Subramania — Concise General Astromony Shridhara, Printing House Trivendrum, 1940.

Wegner, P.L. & Mikesll, M.W. (Ed) — Reading in cultural Geography, University of Chicago Press, 1962.

II- JOURNALS

ASIATIC RESEARCH ,LONDON -

Vol.XIV.

Hodgson,J. and Hurberd, J.D. : The Principal Peaks of Himalays.

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL,JOURNAL OF CALCUTTA-

Altekar,A.S.(1924) : History of important Ancient Towns and cities of Gujerat and Kathiawad.

Vol.I

Csoma de Keros : Geographical Notice on Tibet

Vol 1V

Ouseley The Course of the Narmada.

Whitehead,R.B.(1932) The River course of the Punjab and Sind.

Vol xx

Wilford,F. :Acomparative Essary on the Ancient Geography of India.

------ (1923)Geographical Position of certain places in India.

BHANDARKAR ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE?POONA

Acharya,P.K. (1947) :Village and Towns in Ancient India, B.C.Law volume Pt.II,P. 276 -284.

Vol.XXIX

Chaudhuri,S.B. (1948)Regional Division of Ancient India P. 123-146.

BULLETIN OF DECCAN COLLEGE ,POONA

Vol XIV

Patkar,M.M.(1956) Studies in Sanskrit Lexicography
1.Geographical Data in Sanskrit Lexicans, No.4 p.249- 305.

Shijwalkar,T.S. The Mahabhart Data for Aryan Expansion in India.,I.

INDIAN CULTURE

Vol I

Dikshitar,V.R.R. Geographical Data of the Deccan and south India has gathered from the Ramayana.

Vol XVI

Law,B.C.(1947) On the source of Early Indian Geography ...p.59-68

INDIAN HISTORICAL QUARTERLY

Vol.XXIX

Agrawala,V.S.(1953)Geographical Data in Panin,p.34.

Vol IV

Chaudhri,H.C. Ray The study of Ancient Indian Geography
Chackladar,H.C.:

Chackladar,H.C. Eastern India andAryavarta.

Trivedi,H.V. The study of Ancient Geography.

Vo.X

Trivedi,H.V. The study in Ancient Geography.

JOURNAL OF GEOGRAPHICAL SOCIETY CALCUTTA

Law. B.C.,(1940) :Mountains and Rivers of India.

JOURNAL OF U.P. HISTORICAL SOCIETY

Vol XVIII,N.2.

Upadhyaya,B.S.(1944) On some Ancient place Names in Kalidasa,works
Page 4-26.

JOURNAL OF THE AMERICAN ORIENTAL SOCIETY

Bargess,J.(1885) :On the Identification of places .in Sanskrit Geography of India.

VolXXXIX

Clark,W.E. :(1919)Saka Dwipa and Sveta Dwipa.

Day,N.L. :(1921)The Early course of the Ganges.

Majumdar,S.N. :(1919) :Contributions to the study of the Ancient Geography of India.

NATIONAL GEOGRAPHICAL JOURNAL OF INDIA, VARANASI

Vol.IX

Gupta,S.L. (1963):Meghaduta,A, Geographical Analysis
page. 211-217.

Vol I

Singh,R.L. (1955):Evolution of settlements in the middle
Ganga valley. p.69-114.

Vol II

Tamaskar,B.G.(1956) : Geographical knowledge in Upanishads,p.106-114

Vol X

Tripathi,M.P.(1966) : Was Geography a seperate systematic Science in Ancient India? ,p.82-83.

ROYAL ASIATIC SOCIETY,JOURNAL OF THE LONDON

Grierson(1912) :The Kambojas

Pargiter,F.E.(1894) : Geography of Rama's Exile

Pargiter,F.E.(1918) : Magadha and videha

Steem,M.A. (1917) : Some River names in the Rigveda

Vogel,J.PH. (1929) : Two notes on the Ancient Geography of India.

परिशिष्ट

(अ) महाद्वीप

	रामायणकालीन नाम	वर्तमान नाम
1.	किरात द्वीप	बर्मा
2.	कूट शाल्मली द्वीप	कोरिया
3.	क्रौन्च द्वीप	हिमालय पर्वतीय क्षेत्र
4.	जम्बू द्वीप	एशिया महाद्वीप (दक्षिणी पूर्वी एशिया को छोड़कर)
	यव द्वीप	पूर्वी द्वीप समूह
	सुदर्शन द्वीप	अलास्का

(ब) सागर

रामायणकालीन नाम	वर्तमान नाम
इक्षुसागर	चीन सागर
जलोद सागर	बेरिंग सागर
दक्षिण सागर	मन्नार की खाड़ी एवं समीपवर्ती, समुद्री क्षेत्र
पश्चिमी सागर	अरब सागर
पूर्वी सागर	बंगाल की खाड़ी
लोहित सागर	येलो सागर
स्वादुसागर-	अलास्का की खाड़ी
क्षीरोद सागर	आर्कटिक सागर

(स) पर्वत

अस्ताचल पर्वत	अनातोलिया पठार का पश्चिमी भाग
ऋषभपर्वत	श्रीड़न्नी स्ट्रेट
वृषभ पर्वत	मारिशस द्वीप
ऋष्यमूक	अहमद नगर से नलदुर्ग तक फैली पहाड़ी
कामशैल	कामेट शिखर
काल पर्वत	काराकोरम
कुंजर पर्वत	फैरोस द्वीप समूह
कैलाश पर्वत	कैलाश पर्वत
क्रौन्च गिरि	माना दर्रा
चक्रवानपर्वत	होरमुज जल सन्धि
चित्रकूट	कामता नाथ गिरि
दर्दुर पर्वत-	नीलगिरि पहाड़ी
देवसख पर्वत पर्वत	माना दर्रे के पास की पहाड़ी
पारियात्र पर्वत-	सुलेमान पर्वत
प्रस्रवण गिरि	एर्रामाला पहाड़ी
पुष्पतक पर्वत	मिनिकोय द्वीप
वराहपर्वत	कुह-ई-दीनार श्रेणी (जिग्रोस पर्वत)

मन्दराचल पर्वत	अराकान योमा श्रेणी
मलय पर्वत	ट्रावन कोर हिल
महेन्द्र पर्वत	महेन्द्र गिरि
माल्यवान पर्वत.	एर्रमाला पहाड़ी का एक शिखर
मेघ पर्वत	एलबुर्ज पर्वत
मेरुपर्वत	माउण्ट अरारात
मैनाक पर्वत	हिमाचल प्रदेश की शिवालिक श्रेणी
यामुन पर्वत	यमुना के तट तक विस्तृत बुंदेलखण्ड एवं मध्यभारत का पहाड़ी भाग
वज्र पर्वत	मकरान पहाड़ी
विन्ध्य पर्वत	विन्ध्याचल पर्वत
वैद्युत पर्वत	मालदिव द्वीप समूह
शिशिर पर्वत	न्यूगिनी द्वीप का एक पर्वत
सह्यपर्वत	पश्चिमी घाट पर्वत
सुदर्शन पर्वत	लक्ष्मीवान श्रेणी
सूर्यवान पर्वत	मालदिव द्वीप समूह
सोने के साठ हजार पर्वत	अरमीनिया पठार
सोमगिरि (उत्तरका)	सोमोकोप्सक्या पहाड़ी

सोमगिरि (पश्चिम का)	किरथिर श्रेणी
हिमवान पर्वत	हिमालय पर्वत

(द) नदियाँ

रामायणकालीन नाम	वर्तमान नाम
कालमही	दामोदर
कावेरी नदी	~~हेमारी नदी~~ कावेरी नदी
कौशिकी नदी	कोसी नदी
कृष्णवेणी नदी	कृष्णा नदी
गोदावरी नदी	गोदावरी नदी
गोमती नदी	गोमती नदी
गंगा नदी	गंगा नदी
चर्मण्वती नदी	चम्बल
तमसा नदी-1	पूर्वी टौंस
तमसा नदी-2	दक्षिणी टौंस
ताम्रपर्णी नदी	बैगाई नदी
नर्मदा नदी	नर्मदा नदी
मन्दाकिनी नदी	पयस्विनी नदी
महानदी	महानदी
महाभागा	तुंगभद्रा
यमुना नदी	यमुना नदी
वरदा नदी	हेमारी नदी
विपाशा नदी	व्यास नदी

वेदश्रुति नदी	बसुई नदी
शतद्रु नदी	सतलज नदी
शोण नदी	रेडीरवर [पुवानीक्याम]
शैलोदा नदी	केल्गा नदी
सदानीरा	राप्ती नदी
सरयू नदी	घाघरा नदी
स्यन्दिकानदी	सई नदी
सरस्वती नदी	घग्घर नदी [विलुप्त]
सिन्धु	काली सिन्धु
सिन्धु नदी	सिन्धु नदी
सुमागधी	सोन नदी

[य] सरोवर

वैखानस सर	बालखश झील
मानस सर	मानसरोवर

[र] जनपद

रामायणकालीन नाम	वर्तमान स्थिति
अवन्ती	पश्चिमी मालवा पठार
अरट्ट	पंचनद के चतुर्दिक फैला क्षेत्र
आन्ध्र	गोदावरी एवं कृष्णा के मध्य का डेल्टा
अंगलोप	मकरान क्षेत्र

उत्कल	उड़ीसा
कलिंग	महानदी डेल्टा से गोदावरी डेल्टा तक का क्षेत्र
काशी	गंगा,गोमती दाब का दक्षिणी भाग और मिर्जापुर पठार
कुक्षि	थार मरुस्थल क्षेत्र
कुरु	पश्चिमी उत्तर प्रदेश
कोशल	अवध रियासत का क्षेत्र.
केकय	चिनाब एवं झेलम नदियों का मध्यवर्ती क्षेत्र
केरल	केरल
चन्द्रीपत्र	उत्तरी महाराष्ट्र
दण्डकारण्य	गोदावरी अपवाह का क्षेत्र
दशार्ण	धसान नदी के समीप का बुन्देल खण्ड का क्षेत्र
दरद	गिलगित हुन्जा क्षेत्र
पाण्ड्य	तमिलनाडु का दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र
प्रस्थल	शतुद्रु एवं सरस्वती के बीच क्षेत्र
पुण्ड्र	उत्तरी बंगाल एवं बंगला देश के गंगा जमुना दाब का वीरन्द क्षेत्र
पुलिंद	जबलपुर के पास का

पौरवाज	निचला गंगा यमुना दोआब
ब्रह्माल	पूर्वी छोटा नागपुर एवं पश्चिमी बंगाल का पश्चिमी क्षेत्र
वंग	जमुना ब्रह्मपुत्र के पूर्व पूर्वी बंगाल का क्षेत्र
भरत	सरस्वती एवं दृषद्वती के मध्य का क्षेत्र
मद्र	चिनाब एवं रावी के मध्य का क्षेत्र
मगध	सोन के पूर्व तथा गंगा के दक्षिण का भाग
[illegible] माहिषक	मध्य प्रदेश का दक्षिणी पश्चिमी भाग
मालव	सतलज नदी के दक्षिण पूर्व का भाग
मेकल	मैकाल श्रेणी के इर्द-गिर्द छत्तीसगढ़ का क्षेत्र
रेशम का देश	असम प्रदेश
वृष्टक	मध्य प्रदेश के खान देश के चतुर्दिक का क्षेत्र
वाल्हीक	ऊपरी सतलज एवं रावी नदियों के मध्य का भू- भाग
विदेह	बिहार एवं नेपाल का मिथिला प्रदेश
विदर्भ	सतपुड़ा पहाड़ियों के दक्षिण का बरार प्रदेश
शूरसेन	मथुरा के पश्चिम का क्षेत्र

सुराष्ट्र	गुजरात प्रदेश
(ख) नगर एवं आश्रम केन्द्र	वर्तमान नाम
रामायण कालीन नाम	
अगस्त्याश्रम	लखुरा बाग (पन्ना जिला)
अत्रि आश्रम	सती अनुसुइया का आश्रम (चित्रकूट धाम)
अवन्ती	मालवा की प्राचीन राजधानी
अयोध्यापुरी	अयोध्या
इन्द्रप्रस्थ	पुरानी दिल्ली
कामाश्रम	सरयू एवं गंगा के संगम पर स्थित (बलिया जिला)
काशी	वाराणसी
काञ्ची	कान्जीवरम
कान्यकुब्ज	कन्नौज
काम्पिल्या	काम्पिल
किष्किन्धापुरी	बेलारी के समीप
कौशाम्बी	कौशाम्बी
गिरिव्रज (पूर्व का)	राजगृह
गिरिव्रज (पश्चिम का)	पाकिस्तान में स्थित
गौतम आश्रम	अहियारी गाँव (तिरहुत क्षेत्र)
चम्पा	भागलपुर के समीप

जनकपुरी	जनकपुर [नेपाल]
तक्षशिला	तक्षशिला
नन्दीग्राम	नन्दगाँव [अवध]
पंचवटी	नासिक
प्रयाग	इलाहाबाद
पुष्कलावती	चरसद्दा
भरद्वाज आश्रम	इलाहाबाद [आनन्द भवन के समीप]
मतंगाश्रम	गजेन्द्र गढ़ एवं तुंग भद्रा नदियों के संगम पर स्थित
मधुपुरी	मथुरा
महोदय	कन्नौज
लवपुर	लाहौर
लंकापुरी	श्री लंका का एक नगर
विदिशा	भिल्सा [मालवा]
वाल्मीकि आश्रम	सीतामढ़ी [प्रयाग से 35 किलोमीटर दूर दक्षिण में स्थित
विश्वामित्र आश्रम	बक्सर के समीप
विशाला	वैशाली
शरभंग आश्रम	विकरिया रेलवे स्टेशन के समीप
संकाश्या	संकिसा
सुतीक्ष्ण आश्रम	सरिम [पन्ना जिला]
हस्तिनापुर	दिल्ली का उत्तरी पूर्वी भाग